कौशिक

भिखारिणी
विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

भिखारिणी

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–2
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–3

तेरहवाँ संस्करण : 1991

मूल्य : 15.00

कम्पोजिंग : जयभारत कं० हाउस, आगरा–2
मुद्रक : रवि मुद्रणालय, आगरा–2

भिखारिणी

"हरद्वारी ! ओ हरद्वारी !!"

"हजूर !"

"दरवाजे पर यह कैसा शोर मचा है ?"

"हजूर ! एक भिखारी बड़ा शोर मचा रहा है, कई बार कहा, पर जाता ही नहीं ।"

'नहीं जाता ! क्या कहता है ?"

"कहता कुछ नहीं, कुछ माँगता है ।"

बाबू साहब ने चार पैसे जेब से निकालकर नौकर की ओर फैंक दिये और बोले—जाओ, यह उसे दे दो ।

नौकर पैसे लेकर बाहर की ओर चला गया, परन्तु कुछ ही क्षणों पश्चात् पुन: लौट आया और बोला—सरकार वह चार पैसे नहीं लेता ।

बाबू साहब—चार पैसे नहीं तो फिर क्या चार रुपये लेगा ?

नौकर—हुजूर ! वह कहता है कि भोजन करा दिया जाय, मैं पैसे नहीं लेता ।

बाबू साहब—अकेला है ?

नौकर—नहीं सरकार, साथ में एक लड़की भी है ।

बाबू साहब—लड़की किननी बड़ी है ?

नौकर—होगी कोई चौदह-पन्द्रह बरस की ।

बाबू साहब—तब तो पूरे दो आदमी समझो ।

नौकर—जी हुजूर ।

बाबू साहब कुछ क्षणों तक सोचकर बोले—अच्छा चलो देखें, क्या खायगा।

यह कहकर बाबू साहब बाहर की ओर चले।

बाहर जाकर उन्होंने देखा कि एक भिखारी, जिसकी वयस पैंतालीस वर्ष की होगी, फटे-पुराने कपड़े पहने खड़ा है। पास ही एक लड़की मलिन तथा जीर्ण-शीर्ण धोती पहने सिकुड़ी हुई खड़ी है। बाबू साहब ने भिखारी से पूछा—क्या चाहते हो ?

भिखारी हाथ जोड़कर क्षीण स्वर में बोला—बाबूजी, और कुछ नहीं, खाली पेट-भर भोजन।

बाबू साहब—क्या खाओगे ?

भिखारी—जो बाबू साहब की मर्जी हो।

बाबू साहब ने एक क्षण सोचकर पूछा—बाजार का बना हुआ खा सकते हो ?

भिखारी—हाँ, खा लूँगा।

बाबू साहब ने जेब से एक रुपया निकालकर नौकर को दिया और बोले—जाओ, बाहर आने की पूड़ियाँ और चार आने का मीठा ले आओ।

भिखारी बोल उठा—बाहर आने की बहुत होंगी, इतनी हम दोनों नहीं खा सकेंगे, आठ आने की बहुत हैं।

बाबू साहब ने नौकर से कहा—अच्छा, आठ ही आने की ले आना।

नौकर बाजार की ओर चल दिया। बाबू साहब ने भिक्षुक से कहा—यहाँ पत्थर पर बैठ जाओ, वह अभी ले आयेगा—खा लेना।

यह कहकर बाबू साहब घर के भीतर जाने को उद्यत हुए। उसी समय भिक्षुक हाथ जोड़कर बोला—बाबूजी, भगवान आपका भला करें, आपने इस समय बड़ी दया की। जहाँ इतना किया वहाँ एक काम और कीजिए।

बाबू साहब ठिठक गये और बोले—वह क्या ?

भिखारी—इस कन्या के लिए फटी-पुरानी धोती मिल जाती तो बड़ी दया होती।

इस बार बाबू साहब ने लड़की को दृष्टि भर के देखा। लड़की के शरीर पर जो धोती थी वह कई स्थान पर फटी हुई थी, जिसमें से उसका शरीर

दिखाई पड़ रहा था। लड़की अपना अंग छिपाने के लिए बहुत ही सिकुड़ी हुई खड़ी थी।

बाबू साहब कुछ क्षणों तक तो सोचते रहे। उन्होंने देखा कि लड़की के शरीर पर यौवन के चिह्न प्रस्फुटित होने लगे हैं। उन्होंने सोचा—'सत्य ही इसे वस्त्र की आवश्यकता है। जवान कन्या का ऐसा वस्त्र पहने रहना, जिसमें से उसका अंग दिखाई पड़े, अनुचित है। यह सोचकर वह चुपचाप भीतर गए और अपने सन्दूक से एक धुली हुई नई धोती निकाल कर ले आये। धोती भिखारी को देकर बोले—यह इसे अभी पहना दो।

भिक्षुक ने बाबू साहब को अनेक आशीर्वाद दिये और कन्या से कहा—ले बिटिया, इसे पहन ले।

लड़की धोती लेकर पहनने को उद्यत हुई परन्तु फिर कुछ सोचकर बोली—बाबा, नहा लूँ तब पहनूँ तो अच्छा है।

भिखारी—हाँ-हाँ, नहा डाल। वह सामने पम्प लगा है, वहाँ नहा ले।

लड़की सड़क पर लगे हुए पम्प की ओर चली, इधर बाबू साहब धीरे-धीरे भीतर चले आये।

थोड़ी देर बाद हरद्वारी कुछ कार्यवश उनके कमरे में पहुँचा। बाबू साहब ने उससे पूछा—क्यों हरद्वारी, खाना ले आए।

हरद्वारी—हाँ सरकार ले आया, दोनों बैठे खा रहे हैं।

बाबू साहब पुनः उठे और बाहर पहुँचे। बाहर जाकर उन्होंने देखा—पिता-पुत्री दोनों भोजन कर रहे हैं। बाबू साहब चुपचाप खड़े होकर उनकी ओर देखने लगे।

लड़की बाबू साहब की दी हुई धोती पहने थी। बाबू साहब ने कन्या को गौर से देखा। उसका रंग गोरा था—मुखमण्डल गोल, आँखें बड़ी-बड़ी तथा अत्यन्त काली थीं। इस समय श्वेत धोती पहने हुए वह बाबू साहब को अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ी। बाबू साहब सोचने लगे—'ऐसी सुन्दर कन्या—और भिखारिणी। ईश्वर की लीला समझ में नहीं आती। यह तो इस योग्य थी कि किसी सद्गृहस्थ की अर्द्धाङ्गिनी होती; सुख से जीवन के दिन व्यतीत करती। इसकी तो वयस खेलने-खाने और यौवन का सुख लूटने की है—न कि गली-गली ठोकरें खाने की।' बाबू साहब के हृदय से एक दीर्घ निःश्वास निकली।

बाबू साहब खड़े इसी प्रकार की बातें सोचते रहे । थोड़ी देर में वे दोन
भोजन कर चुके ।

हरद्वारी ने आकर दोनों को पानी पिला दिया । इसके पश्चात् भिखारी
चलने को उद्यत हुआ । उसने बाबू साहब को सैंकड़ों आशीर्वाद दिए । बाबू
साहब इस समय अत्यन्त दयार्द्र हो रहे थे । अतएव वह भिखारी से बोले—
जब तुम्हें कहीं भोजन न मिले तो तुम यहाँ आ जाया करो ।

भिखारी पुनः बाबू साहब पर आशीर्वाद की वर्षा करने लगा । बाबू साह
घर के भीतर चलने को उद्यत हुए—उन्होंने एक दृष्टि कन्या पर डाली
उन्होंने देखा कि कन्या उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देख रही है । बाबू साह
की आँखें कन्या की आँखों से जा मिलीं । एक क्षण के लिए चारों आँखें एक
हो गईं, परन्तु तुरन्त ही कन्या ने लजाकर अपनी आँखें नीची कर लीं
बाबू साहब के हृदय में एक धक्का-सा लगा, उन्होंने अपने नेत्र बंद क
लिये । कुछ क्षणों पश्चात् जब उन्होंने पुनः नेत्र खोले, तो देखा कि भिखारी
कन्या का हाथ पकड़े धीरे-धीरे एक ओर जा रहा है । बाबू साहब ख
देखते रहे । थोड़ी दूर पहुँचकर कन्या ने पुनः घूमकर बाबू साहब को देख
और बाबू साहब को अपनी ओर देखते हुए देख जल्दी से मुँह घुम
लिया ।

बाबू साहब मन-ही-मन कुछ सोचते हुए धीरे-धीरे घर के भीतर क
ओर चले ।

२

बाबू रामनाथ घर के रईस हैं । इनकी वयस बाईस-तेईस वर्ष के लगभ
है । बाबू रामनाथ अभी अविवाहित हैं । बी० ए० पास कर लेने पर इनक
विवाह होगा । इनके पिता वकालत करते हैं । वकालत से इन्हें बहुत अच्छ
आमदनी है । इनकी एक छोटी भगिनी है, और माता-पिता; इनके अतिरि
परिवार में अन्य कोई नहीं ।

बाबू रामनाथ को भिक्षुक की कन्या का ध्यान रह-रह कर आ जात
था । उस घटना को अत्यन्त साधारण समझकर वह उसे भूल जाने की चेष्ट
करते थे, परन्तु नहीं भूलते थे । जब तक अन्य किसी काम में लगे रहते, त
तक तो ध्यान नहीं आता था, परन्तु जहाँ कार्य से छुट्टी पाकर अकेले बैठते—

बस, मस्तिष्क में उसी की बातें घूमने लगतीं। वह सोचते—'ऐसी सुकुमार कन्या भीख माँगने योग्य तो है नहीं। चलते समय उसने कैसी स्थिर दृष्टि से मेरी ओर देखा था। वह दृष्टि विचित्र थी। इच्छा होती है कि उसे उसी प्रकार अपनी ओर देखते हुए एक बार और देखूँ। और जब सड़क पर जा रही थी तब पीछे घूमकर भी तो देखा था। श्वेत धोती में वह कितनी सुन्दर मालूम होती थी! है कोई उच्च जाति की, नीच जाति की कन्या इतनी सुन्दर नहीं हो सकती। बड़ी गलती हुई—जाति पूछना भूल गया। अब दुबारा आवेगी तो अवश्य पूछूँगा। परन्तु क्या अब वह भिक्षुक और उसकी कन्या पुनः आयेंगे? कौन कह सकता है—आयें, न आयें। इन भिखारियों का कौन ठीक, आज यहाँ हैं, कल वहाँ—ऊँह! होगा भी, जाने दो, अपने से क्या मतलब। भोजन खिला दिया, वस्त्र दे दिया, इतना काफी है। भिखारियों से अधिक घनिष्ठता बढ़ाने से क्या प्रयोजन।' यह सोचकर बाबू रामनाथ अपनी समझ में एक प्रकार से भिक्षुक और उसकी कन्या से सारा नाता तोड़कर बैठते, परन्तु जहाँ कुछ देर हो जाती, पुनः अपने-आप ही बिना बाबू साहब की आज्ञा लिए हुए, भिखारी की कन्या उनके मस्तिष्क में घुस आती। बाबू साहब पुनः उसकी काल्पनिक मूर्ति देखते और उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सोचने में मग्न हो जाते। कभी-कभी बाबू साहब अपनी इस दुर्बलता पर झुँझला उठते थे। अपने मस्तिष्क को दूसरी ओर लगाने के लिए कोई पुस्तक लेकर बैठ जाते। दो-चार पृष्ठ पढ़ने के पश्चात् ही पृष्ठों के ऊपर से अक्षर लुप्त हो जाते और उनके स्थान पर भिखारी-कन्या की मूर्ति प्रस्फुटित हो जाती। थोड़ी देर तक तो बाबू साहब उस मूर्ति को देखते और उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सोचने में लीन रहते, परन्तु जहाँ उन्हें अपनी इस दुर्बलता का ध्यान आता, वहीं तुरन्त पुस्तक पटक देते और आप ही आप कहते—'आखिर वह मेरी कौन है? वह भिखारिणी, मैं एक रईस का लड़का—आकाश-पाताल का अन्तर है। न जाने मुझे क्या हो गया है। राम! राम! कोई मेरी यह दशा जाने तो क्या कहे? बड़े शर्म की बात है।'

इस प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन बाबू रामनाथ बैठे एक अँगरेजी समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उसी समय उनका नौकर हरद्वारी उनके पास आकर बोला—"बाबूजी, आज वह भिखारी फिर आया है।"

यह शब्द कान में पड़ते ही रामनाथ ने एकदम से चौंककर कहा—वह भिखारी फिर आया है ?

हरद्वारी—हाँ ।

यह सुनते ही रामनाथ ने तुरन्त पत्र एक ओर फेंक दिया और उठ खड़े हुए । एक साधारण भिखारी और उसकी कन्या से मिलने के लिए बाबू साहब को इतना उत्सुक देखकर हरद्वारी को कुछ आश्चर्य हुआ । परन्तु अपने आश्चर्य को मन-ही-मन दबाकर हरद्वारी बाबू साहब के पीछे-पीछे चला ।

बाहर आकर बाबू साहब ने देखा कि वही भिखारी पत्थर पर बैठा है, पास ही उसकी कन्या पत्थर के सहारे टिकी हुई खड़ी है । बाबू साहब की ओर कन्या ने देखा, बाबू साहब ने भी देखा । दोनों की आँखें एक क्षण के लिए चार हो गईं—उसके उपरान्त कन्या ने लजाकर अपनी आँखें नीची कर लीं । कन्या बाबू साहब की दी हुई धोती पहने थी । परन्तु वह अब मैली हो गई थी । इस मैली धोती में कन्या बाबू रामनाथ को और भी अधिक सुन्दर दिखाई पड़ी । उनके हृदय में कवित्व का सागर हिलोरें मारने लगा । सोचने लगे—'कीच में कमल इसी को कहते हैं । वह धोती कीच है और मुख कमल । कितनी सुन्दर उपमा है । श्याम घन के मध्य चन्द्रमा की उपमा भी दी जा सकती है ।' बाबू रामनाथ न जाने कब तक खड़े-खड़े उपमाएँ सोचते, परन्तु उसी समय भिक्षुक ने कहा—बाबूजी आपने कहा था, जब कहीं भोजन न मिले तब यहाँ आ जाया करना—तो आज दिन-भर हो गया, कुछ नहीं मिला, थोड़ा भोजन ।

बाबू साहब बीच ही में बोल उठे—हाँ-हाँ, तुमने बड़ा अच्छा किया जो चले आए । हरद्वारी !

हरद्वारी तो बाबू साहब की खोपड़ी पर ही खड़ा था । उसने कहा—कहिए क्या हुक्म है ।'

बाबू साहब ने कहा—जाओ एक रुपये की पूड़ी और दो-तीन तरह की मिठाई ले आओ । हरद्वारी किंचित मुस्करा कर बाबू साहब की आज्ञा पालन करने के लिए चल दिया ।

इधर बाबू साहब ने उस भिक्षुक से कहा—तुम आराम से बैठो । अभी भोजन आता है ।

भिक्षुक बाबू साहब को आशीर्वाद देने लगा । कुछ क्षण तक बाबू रामनाथ

खड़े कुछ सोचते रहे। तत्पश्चात् घर के भीतर गये और ट्रंक से एक श्वेत धोती निकाली। उसे लिए हुए भिक्षुक के पास आये। धोती उसकी ओर फेंक-कर उन्होंने कहा—लो, अपनी लड़की से कहो इसे पहन ले, उसे उतार दे, मैली हो गई है। दो धोती रहने से सफाई रहेगी।

भिक्षुक ने धोती लेकर कन्या को दे दी। कन्या उसे लेकर पम्प की ओर चल दी। इधर बाबू साहब पुनः घर के भीतर चले आये। थोड़ी देर उधर उधर घूम-घाम कर बाहर पहुँचे, कन्या ने स्नान करके धोती बदल ली थी। उसे श्वेत धोती पहने देखकर बाबू साहब ने सोचा—'अब चन्द्रमा मेघ मुक्त हुआ। मेघाच्छादित तथा मेघ-मुक्त दोनों प्रकार के चन्द्रमा में अपने-अपने ढंग का खास सौन्दर्य है। उस मैली धोती में यह सुन्दर प्रतीत होती थी और अब भी सुन्दर दिखाई पड़ती है। सुन्दर वस्तु प्रत्येक दशा में सुन्दर ही दिखाई देती है—यदि ऐसा न हो तो सौन्दर्य ही क्या।'

उसी समय हरद्वारी भोजन ले आया। दोनों पिता-पुत्री ने बैठकर भोजन किया। भोजन कर चुकने पर दोनों चलने को उद्यत हुए। बाबू साहब ने भिक्षुक से पूछा—तुम कौन जात हो?

भिक्षुक—बाबूजी हम ठाकुर हैं।

बाबू साहब ने मन में सोचा—'मैं तो पहले ही समझ गया था कि ऊँची जात है।'

बाबू साहब के हृदय में अनेक प्रश्न उठे, पर पूछने का साहस न पड़ा। भिखारी चल दिया। चलते समय उनकी और कन्या की आँखें पुनः चार हुईं। बाबू साहब खड़े उसकी ओर ताकते रहे। आज कन्या ने बाबू साहब को कई बार घूम-घूम कर देखा। बाबू साहब भी, जब तक वे दोनों दृष्टि से ओझल नहीं हो गये, बराबर ताकते रहे। इसके पश्चात् एक दीर्घ निःश्वास लेकर धीरे-धीरे घर के भीतर चले गये।

३

रात के आठ बज चुके। हमारा पूर्व-परिचित भिक्षुक और उसकी कन्या एक वृक्ष के तले अपना डेरा जमाये बैठे हैं। कन्या पिता से कह रही है—

बू साहब तो बड़े दयावान् हैं—ऐसा आदमी तो आज तक नहीं

—हाँ बेटी, हैं तो बड़े दयावान् ।
-एक धोती उस दिन दी थी और एक आज दे दी, ऐसा कोई दे

—ऐसा देना बड़ा कठिन है ।
छ क्षणों तक नीरव रही, तत्पश्चात् पुनः बोली—बाबा, वह बड़े

—अमीर तो हैं ही, मकान कितना अच्छा बना है । ऐसे पुण्यात्मा
गवान् रुपया दे तो स्वारथ है । हम गरीबों का भला होता है ।
तने दुष्ट हैं कि देना-दिलाना तो कुछ नहीं, उल्टे गाली देते हैं,

बड़े अच्छे आदमी हैं—ऐसा आदमी होना कठिन है ।
कर कन्या ने एक दीर्घ निःश्वास ली ।
—हरद्वार चलेंगे तो किराया इन्हीं से ले लेंगे ।
बाबा, जब तक यहाँ रहो, एक बेर रोज उनके यहाँ चला

—रोज जाना ठीक नहीं । रोज जाने से वह गुस्से हो जायेंगे ।
-गुस्से नहीं होंगे ।
ा कन्या ने बड़े विश्वासपूर्वक कही । भिक्षुक ने कन्या को बड़े गौर
हा—तू क्या जाने कि गुस्से नहीं होंगे ।
ुछ सिटपिटा गई, परन्तु सम्भल कर बोली—ऐसे दयावान आदमी
ीं आता ।
—धुत् पगली ! जब रोज जायेंगे तो कहाँ तक गुस्सा न आवेगा ।
ों को रोज-रोज तंग करो तो गुस्सा आ ही जाएगा ।
-गुस्सा तो तब आवेगा जब हम कुछ माँगेंगे ।
—जब माँगना नहीं, तो जाने से प्रयोजन ?
सका उत्तर कुछ न दे सकी । थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात्
उनकी हम पर इतनी दया है, तो कभी-कभी ऐसे ही उनकी खोज-
ाहिए ।

भिक्षुक—तू तो पागलों की-सी बातें करती है। कौन हमारी-उनकी मित्रता है, कौन रिश्तेदारी है जो हम उनकी खोज-खबर लेने जायँ। हम तो भिखारी हैं, जब जायेंगे तब भिक्षा के लिए जायेंगे।

कन्या को पिता की यह बात अच्छी नहीं लगी। उसने सोचा—बाबा बड़े मतलबी हैं, अपना मतलब हो तो जायँ, नहीं तो चाहे कोई मरे या जिये, इनसे कोई मतलब नहीं।

थोड़ी देर तक कन्या मौन बैठी रही। इसके उपरान्त बोली—बाबा, तुम कहीं नौकरी क्यों नहीं कर लेते। भीख माँगने से तो नौकरी अच्छी। भिक्षुक ने कहा—नौकरी कर तो लूँ, पर मिले कहाँ?

कन्या—उन्हीं बाबू से कहो, वह दिला देंगे।

भिक्षुक—नौकरी में बड़े झंझट हैं, काम बहुत करना पड़ना है, रात-दिन मालिक की बातें सुननी पड़ती हैं। इसमें तो खाने भर को माँग लाये, फिर मस्त पड़े हैं।

कन्या—भीख माँगने में भी तो सैकड़ों बातें सुननी पड़ती हैं। मैं जब उन बाबू जी के सामने जाती हूँ तो बड़ी शरम लगती है।

भिक्षुक—हमारा तो यह धन्धा ही है। इसमें शरम काहे की?

कन्या—बाबा, तुम यह धन्धा छोड़ दो, कहीं नौकरी कर लो। उन बाबू जी से कहो, वह नौकरी दिलवा देंगे। मेरा मन बोलता है कि वह जरूर दिलवा देंगे।

भिक्षुक—अबकी चलेंगे तो उनसे कहेंगे। अच्छा, अब मैं तो सोता हूँ—नींद लगी है।

यह कहकर भिक्षुक ने वहीं लोट लगाई। कन्या बैठी रही। अब वह बाबू साहब की बातें सोचने लगी—'बाबू साहब बड़े दयावान हैं, बड़े अच्छे हैं। सुन्दर भी बड़े हैं। ऐसे आदमी संसार में बिरले ही होते हैं। मुझसे उनकी बड़ी मुहब्बत है—उनकी आँखें कहती हैं कि वह मुझसे मुहब्बत करते हैं। मेरे कारण तो बाबा की इतनी खातिर करते हैं। मुझे मैली धोती पहने देखा, झट से सफेद ले आये। बाबा को आज तक कोई कपड़ा नहीं दिया। जो बाबा उनके यहाँ नौकरी कर लें तो बड़ा अच्छा हो—दिन-रात उन्हीं के सामने रहूँ। उनको देखने को मन न जाने कैसा हुआ करता है। मेरा बस चले तो एक बेर रोज देखूँ।'

यह सोचते-सोचते उसे ध्यान आता—मेरा उनका क्या सम्बन्ध, वह राजा, मैं भिखारिणी ! मुझसे वह क्यों स्नेह करेंगे ? बाजे आदमी दयावान होते ही हैं, उन्होंने मुझे जो कपड़ा दिया, सो जवान स्त्री समझकर दिया। उन्होंने उस दिन कहा था—'जवान लड़की का ऐसी फटी धोती पहने रहना ठीक नहीं।' बस इसलिए दिया, इसमें मुहब्बत की कौन-सी बात है ?

यह ध्यान आते ही उसके मुख-मण्डल पर उदासी दौड़ जाती, नेत्रों में आँसू भर आते। वह पुनः सोचती—'जो मुहब्बत नहीं तो वह मेरी ओर इस प्रकार क्यों ताकते हैं; और कोई आदमी तो इस प्रकार ताकता नहीं। संसार में अनेक दयावान हैं। उन्होंने कभी इस बात की परवाह नहीं की कि मेरा फटी धोती पहने रहना ठीक नहीं, जरूर कोई बात है। जब मेरी आँखें उनकी आँखों से मिलती हैं, तो मेरा मन जाने कैसा होने लगता है। और किसी से आँखें मिलने पर तो ऐसा नहीं होता। मुझे उनके सामने ऊपर सिर उठाते शरम लगती है और किसी के सामने इतनी शरम नहीं लगती। बाबा जब जाते हैं तो पहले बात करते ही भोजन माँगने लगते हैं। बाबा की आदत बड़ी खराब है। चाहे सारे संसार से माँगें, पर उनसे न माँगा करें तो अच्छा है। उनसे जब वह माँगते हैं तो मुझे बड़ी शरम लगती है। मैं तो चाहे मर जाऊँ, पर उनसे कभी कुछ न माँगू। वह विचारे तो अपने-आप बिना माँगे ही सब कुछ दे देते हैं—और न भी दें तो क्या जरूरत है। माँगने को सारा संसार भरा है, एक उनसे न माँगा तो क्या हरज। बाबा अब नौकरी करलें तो अच्छा है। मैं अब उन्हें भीख न माँगने दूँगी। यह बाबू अपने जी में भिखारिन ही समझते होंगे। राम ! राम !! जी चाहता है कि धरती फट जाय और मैं समा जाऊँ। बाबा न कहेंगे तो मैं ही उनसे कहूँगी, मेरी बात वह कभी न टालेंगे और जो मेरी यह बात उन्होंने न मानी तो फिर कभी उनके दरवाजे न जाऊँगी, वह भी क्या याद करेंगे।'

भिखारिणी इसी प्रकार की बातें सोचते-सोचते जब नींद से व्याकुल हुई तो अपने पिता से थोड़ी दूर सिमटकर लेट गई और थोड़ी देर में सो गई।

४

प्रातःकाल जब कन्या की आँख खुलीं तो उसने देखा कि उसका पिता अभी पड़ा सो ही रहा है। उसने अपने पिता का कंधा पकड़ कर हिलाया।

कंधा पकड़ते ही उसे ज्ञात हुआ कि उसके पिता का शरीर आवश्यकता से अधिक गर्म है। भिक्षुक ने अपने नेत्र किंचित् खोलकर कहा—जी नहीं अच्छा है बिटिया, पड़ा रहने दे।

कन्या ने कहा—बाबा तुम्हें बुखार चढ़ा है।

भिक्षुक—हाँ बेटा बुखार है, रात भर बुखार रहा।

कन्या—तो बाबा, यहाँ कहाँ पड़े रहोगे ?

भिक्षुक—यहाँ न पड़ेंगे तो जायेंगे कहाँ ?

कन्या—किसी धरमशाले में चलो ?

भिक्षुक—बीमार को धरमशाले में कौन पड़ने देगा।

यह सुनकर कन्या बड़ी चिन्तित हुई। चिन्ता केवल पिता की अस्वस्थता की ही नहीं, अनेक बातों की हुई। यहाँ खुली हवा में पड़े रहने से बाबा अधिक बीमार न हो जायँ। दवा-दारू कहाँ से मिलेगी और भोजन कौन देगा इत्यादि चिन्ताओं ने मस्तिष्क पर अधिकार जमा लिया।

उसको चिन्तित देखकर भिक्षुक ने कहा—बेटा, मैं यहीं पड़ा हूँ, तुम उन बाबू के पास जाओ। उनसे मेरा हाल कह देना। वह तुम्हें भोजन करा देंगे। मैं आज कुछ नहीं खाऊँगा। भोजन करके तुम यहीं चली आना। लोटे में पानी भरकर मेरे पास धरे जा।

कन्या बोली—बाबा तुम्हें अकेला छोड़कर मैं नहीं जाऊँगी।

भिक्षुक—कोई डर की बात नहीं है। बिटिया, दिन है, कुछ रात थोड़ा ही है। वहाँ भोजन करके जल्दी चली आना।

कन्या—मैं आज भोजन नहीं करूँगी।

भिक्षुक—नहीं बेटा, भोजन कर आ। बिना भोजन किये कैसे बनेगा ?

कन्या—एक दिन न खाऊँगी तो क्या होगा ?

भिक्षुक—एक दिन की बात नहीं है। अभी मेरा जी न जाने कितने दिनों खराब रहे। तू न खाएगी तो कमजोर हो जायगी, फिर मेरी सेवा कौन करेगा ?

कन्या—खैर, कल देखा जायगा, एक दिन न खाने से इतनी कमजोरी नहीं आवेगी।

भिक्षुक—एक बात और है। उन बाबू साहब के पास जाकर मेरा हाल कहेगी, तो शायद वह मेरी बीमारी का हाल जानकर मेरे लिए कुछ दवा-दारू

का प्रबन्ध कर दें, कहीं कोई कोठरी रहने को दे दें। ऐसा हो जाय तो बड़ा अच्छा है।

यह बात लड़की की समझ में आ गई। उसने सोचा—'बात तो ठीक है। पर मैं कहूँगी तो वह कुछ-न-कुछ जरूर करेंगे।' इस विचार के साथ ही साथ बाबू साहब से स्वतन्त्रतापूर्वक खुलकर बातचीत करने का सुअवसर प्राप्त होने के विचार ने कन्या के हृदय में गुदगुदी पैदा कर दी।

भिक्षुक ने कन्या का मौन देखकर कहा—मैंने कैसी अच्छी बात सोची। बस, अब तू वहाँ जा।

कन्या—तो अभी तो बड़ा सबेरा है; जरा दिन चढ़े तब जाऊँगी।

भिक्षुक—हाँ-हाँ, जरा और ठहर जा।

कन्या नित्यक्रिया से निवृत्त हुई। इसके पश्चात् उसने पानी का एक लोटा भर के पिता के पास रख दिया। इतने समय में काफी दिन चढ़ गया था, अतएव भिक्षुक ने उससे कहा—अब जाओ, दिन बहुत चढ़ आया।

कन्या चली। उसके हृदय में इस समय अनेक प्रकार की भावनाओं का संघर्षण हो रहा था। बाबू साहब से बातचीत करने की उत्सुकता इसके साथ ही एक प्रकार की झिझक तथा संकोच उसके हृदय में एक विचित्र तूफान मचाये हुए थे। वह सोचती थी—'मैं उनसे क्या कहूँगी? उनके सामने मुझसे बात करते बनेगी? कहीं मेरे मुँह से कोई ऐसी बात न निकल जाय जो उन्हें बुरी लगे। वह पढ़े-लिखे आदमी हैं, मैं अपढ़ गँवार! उनके सामने तो मेरे मुँह से बात भी न निकलेगी। वह मुझे अकेला पाकर मुझसे क्या कहेंगे?' इस प्रकार की बातें सोचती हुई वह धीरे-धीरे बाबू रामनाथ के मकान की ओर चली जा रही थी। वह अपने विचारों में इतनी डूब गयी थी कि उसे इस बात का ज्ञान ही नहीं था कि वह कहाँ जा रही थी। सड़क पर गाड़ी-घोड़ों तथा मनुष्यों का कोलाहल उसके कानों को किंचित्मात्र भी सुनाई न पड़ता था। बाह्यज्ञान न रहते हुए भी मंत्रमुग्ध की भाँति ठीक रास्ते पर जा रही थी।

वह बाबू साहब के मकान के निकट पहुँची। कुछ दूरी पर से उनका भवन दिखाई पड़ने लगा। मकान निकट देखकर उसका हृदय धड़कने लगा, उसकी चाल धीमी पड़ गई। मकान के द्वार के कुछ निकट पहुँचकर वह ठिठक गई और सोचने लगी कि जाऊँ या न जाऊँ। उसका साहस उसका साथ छोड़ने

लगा। वह कई मिनट तक खड़ी सोचती रही। अन्त में हृदय कड़ा कर आगे बढ़ी और द्वार पर पहुँच कर उसने एक आदमी से पूछा—बाबूजी हैं ?

उस आदमी ने पूछा—कौन बाबूजी ?

कन्या सोच में पड़ गई, वह नहीं समझ सकी कि इसका उत्तर क्या दे। अन्त में उसने कहा—छोटे बाबूजी।

मनुष्य ने कहा—हाँ हैं।

कन्या—जरा बुला दो।

वह मनुष्य—क्या काम है ?

ठीक इसी समय हरद्वारी आ गया। उसने कन्या को देखकर कहा—तुम ठहरो, मैं बुलाये देता हूँ।

बाबू रामनाथ स्नान करके वस्त्र बदल रहे थे, उसी समय हरद्वारी ने आकर कहा—बाबूजी वही आई है।

रामनाथ ने चौंककर पूछा—वह कौन ?

हरद्वारी ने किंचित् मुस्कराकर कहा—वही भिखारी की लड़की।

हरद्वारी का मुस्कराना बाबू साहब को बुरा लगा। उनकी भौंहें तन गईं। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—तो इसमें मुस्कराने की कौन-सी बात है। बदतमीज कहीं का।

हरद्वारी चुपचाप वहाँ से खिसक गया। बाबू रामनाथ शीघ्रतापूर्वक बाहर आये। बाहर आकर उन्होंने देखा कि भिखारिणी कन्या उदास भाव से चबूतरे पर हाथ रक्खे खड़ी है। बाबू साहब ने इधर-इधर देखा, परन्तु भिखारी कहीं नहीं दिखाई पड़ा। अतएव उन्होंने लड़की से पहले प्रश्न किया—तुम्हारा पिता कहाँ है ?

लड़की सिर झुकाये हुए चबूतरे के पत्थर पर नख-प्रहार करती हुई बोली—उन्हें बुखार आ गया है।

बाबू साहब के मुख से एकदम निकला—अरे, यह कब ?

कन्या—कल रात को।

बाबू साहब—तो वह है कहाँ ?

कन्या—रास्ते में पेड़ के तले पड़े हैं।

बाबू साहब 'ओ हो !' कहकर चुप हो गये और कुछ सोचने लगे। कुछ क्षणों उपरान्त बोले—तो फिर क्या होना चाहिए ?

कन्या उसी प्रकार मस्तक नत किए बोली—मैं क्या बताऊँ ?

बाबू साहब—वहाँ पड़े रहना तो ठीक न होगा ।

कन्या—और क्या ।

बाबू साहब पुनः चिन्ता-सागर में मग्न हो गये । कुछ देर पश्चात् बोले—अच्छा तुम यहाँ ठहरो, मैं कोई-न-कोई बन्दोबस्त करता हूँ । वहाँ पड़ा रहना तो ठीक न होगा ।

बाबू साहब की यह बात सुनकर कन्या ने एक क्षण के लिए दृष्टि ऊपर उठाई । बाबू साहब ने उस दृष्टि का मर्म समझा । उसे दृष्टि से बाबू साहब के प्रति प्रेम तथा कृतज्ञता के भाव प्रवाहित हो रहे थे । इससे बाबू साहब को और भी अधिक प्रोत्साहन मिला । वह पूर्णतया कन्या के पिता के लिए कोई समुचित प्रबन्ध करने के लिए कटिबद्ध हो गये ।

वह अपने कमरे में पहुँचे और हरद्वारी को बुलाकर बोले—हरद्वारी जिस मकान में तुम रहते हो उसी की बगल में एक कोठरी खाली पड़ी थी न ।

हरद्वारी—खाली तो है, पर उसमें तमाम कूड़ा-कर्कट भरा है ।

बाबू—तो उसे अभी साफ कराओ । किसी मजदूर को लगा दो, समझे

हरद्वारी—बहुत अच्छा ।

बाबू—मजदूर लगाकर तुम मेरे पास लौट आना । 'बहुत अच्छा' कहकर हरद्वारी चला गया । इधर बाबू साहब पुनः धीरे-धीरे बाहर आये । बाहर आकर लड़की से बोले—तुम थोड़ी देर यहीं बैठ जाओ, अभी सब बन्दोबस्त हुआ जाता है । मैं तुम्हारे साथ आदमी कर दूँगा—वह तुम्हारे बाप को यहाँ ले आवेगा ।

लड़की ने इसका कोई उत्तर न दिया—केवल एक कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि बाबू साहब पर डाली ।

बाबू साहब पुनः अपने कमरे में लौट आये । उनके हृदय में इस समय एक विचित्र प्रकार की प्रसन्नता थी । लड़की अब कुछ दिनों यहीं 'रहेगी', यह विचार उनके हृदय को प्रफुल्लित कर रहा था । इस समय किसी एक स्थान पर शांत होकर बैठना उनके लिए कठिन था । वह अपने कमरे में बैचेन इधर-उधर घूम रहे थे ।

थोड़ी देर में हरद्वारी आ गया और बोला—सरकार मजदूर लगा दिया है—आधा घंटे में कोठरी साफ हो जायगी ।

बाबू साहब—बहुत अच्छा हुआ। हाँ, तुम्हें अभी एक काम और करना होगा।

हरद्वारी—कहिए क्या हुक्म है!

बाबू साहब—तुम इस लड़की के साथ जाओ। इसका बाप बीमार है। उसे इक्के पर बिठाकर ले आओ और उसी कोठरी में टिका दो। समझे?

हरद्वारी खूब अच्छी तरह समझ गया सरकार।

इतनी कहकर हरद्वारी बाहर की ओर चला। बाबू साहब भी उसके पीछे-पीछे चले। बाहर आकर हरद्वारी ने लड़की से कहा—तुम्हारा बाप कहाँ पड़ा है? चलो मेरे साथ। सरकार का हुक्म है कि उसे यहाँ ले आओ।

बाबू साहब तो हरद्वारी के पीछे-पीछे ही आये थे, लड़की के कुछ कहने के पूर्व ही बोल उठे—'तुम इसके साथ जाओ, यह तुम्हारे पिता को यहाँ ले आवेगा।' लड़की चुपचाप हरद्वारी के साथ हो ली।

इधर बाबू साहब पुनः कमरे की ओर लौटे। वह अपने मन में कह रहे थे—'यह हरद्वारी बदमाश सब समझता है, कम्बख्त कहता है—खूब अच्छी तरह समझ गया सरकार।' इसका मतलब और क्या हो सकता है? उसने प्रकट किया कि वह सब बातें समझता है। ऊँह—समझने दो। वह कर भी क्या सकता है। आखिर मेरा नौकर ही तो है। कहीं बाबूजी या माताजी से कुछ जड़ न दे—यही भय है। नहीं, ऐसा नहीं करेगा। उसे प्रसन्न रखना चाहिए, ऐसे अवसर पर उसे नाराज करना ठीक नहीं। मैंने उसे डाँटा था, यह बुरा किया—मुस्कराया था तो क्या हर्ज था। खैर, अब उसे यथाशक्ति प्रसन्न ही रखूँगा।' बाबू साहब इसी प्रकार की बातें सोचते रहे।

इसी समय एक दूसरे नौकर ने आकर कहा—बड़े सरकार आपको बुलाते हैं।

बाबू रामनाथ का कलेजा धक् से हुआ। क्यों बुलाते हैं—कहीं उन्हें कुछ मालूम तो नहीं हो गया। अजी नहीं, कोई और काम होगा। यह तो वही कहावत हुई कि 'चोर की दाढ़ी में तिनका'—यह सोचकर स्वयं ही मुस्कराते हुए रामनाथ अपने पिता के कमरे में पहुँचे। उनके पिता उस समय भोजन करने जा रहे थे। उन्होंने रामनाथ से कहा—बेटे, तुमने हरद्वारी को कहीं भेजा है?

रामनाथ का कलेजा धड़कने लगा—मुँह सूख गया; परन्तु तुरन्त ही अपने को सम्हालकर बोले—जी हाँ, एक काम से भेजा है। क्यों?

पिता—कुछ नहीं एक काम था, इसलिए पूछा।

रामनाथ की जान में जान आई। सन्तोष की एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोले—दूसरा आदमी तो है, उसे भेज दीजिये।

पिता—वह तो गधा है, होशियार आदमी की जरूरत है। खैर, जब आ जाय तो मेरे पास भेज देना।

रामनाथ—बहुत अच्छा।

पिता—चलो भोजन कर लो।

रामनाथ—आप भोजन कीजिये, आपको कोर्ट जाना है, मैं जरा ठहर कर भोजन करूँगा, अभी भूख नहीं है।

पिता—अच्छा तो हरद्वारी आवे तो मेरे पास भेज देना।

बाबू रामनाथ पुनः अपने कमरे में लौट आये और बड़ी बेचैनी के साथ हरद्वारी के वापस आने की प्रतीक्षा करने लगे। उनकी इच्छा थी कि पिताजी के भोजन समाप्त करने के पूर्व ही हरद्वारी लौट आवे; क्योंकि भोजन कर उठते ही वे पुनः उसकी याद करेंगे।

बाबू साहब की इच्छा पूर्ण हुई। हरद्वारी पिताजी के भोजन करके बाहर आने के पूर्व ही लौट आया।

बाबू साहब ने पूछा—क्यों ले आये?

हरद्वारी—जी हाँ, दोनों को उसी कोठरी में टिका दिया है।

बाबू साहब—शाबास! अच्छा, पिताजी तुम्हें बुला रहे थे। भोजन कर आते होंगे, तुमसे पूछें तो कुछ और बहाना कर देना, असली बात मत बताना, समझे?

यद्यपि इस बार भी हरद्वारी मुस्कराया, परन्तु इस बार बाबू साहब को बुरा नहीं लगा; इसके प्रतिकूल उन्हें एक प्रकार का ढाढ़स-सा हुआ। उन्होंने समझा—हरद्वारी उनका स्वामिभक्त दास है। हरद्वारी जाने लगा। उसे रोककर बाबू साहब बोले—हाँ, एक बात और करना—दो-एक चटाइयाँ वहाँ दे आना और पानी के घड़े भरवाकर रख देना।

'बहुत अच्छा!' कहकर हरद्वारी वहाँ से चला गया।

५

दोपहर को जब सन्नाटा हुआ तो बाबू रामनाथ धीरे-धीरे टहलते हुए उसी ओर गए, जहाँ वह भिखारी और उसकी कन्या टिकी हुई थी। कोठरी के द्वार पर खड़े होकर उन्होंने झाँका। भिखारी लेटा हुआ था, उसके सिराहने उसकी कन्या बैठी हुई धीरे-धीरे उसके ऊपर पंखा झल रही थी।

भिखारी कह रहा था—अब जरा कुछ बुखार हल्का हुआ है। बेटी, तूने कुछ खाया ?

कन्या—हाँ, बाबा मैं खूब पेट भर के खा चुकी। बाबू ने आज अपने घर का बना भोजन भेजा। अहा बाबा, तुम खाते। कितना स्वाद था, दो-तीन तरह की तरकारी थी। चावल, रोटी, दही न जाने कितनी चीजें थीं !

भिखारी—महाराजा लोग हैं, इन्हें किस बात की कमी है।

कन्या—बाबा, अब तुम कभी भीख न माँगना, इन्हीं बाबू के यहाँ नौकरी कर लो। मुझे भीख माँगते बड़ी शरम लगती है। ये बाबू मुझे बड़े अच्छे लगते हैं। जैसा उन्होंने हमारे साथ किया, ऐसा कोई कर सकता है ?

भिखारी—बड़ा कठिन है बेटा। बाबूजी कहेंगे तो मैं नौकरी कर लूँगा।

कन्या—बाबूजी न कहेंगे तो मैं खुद उनसे कहूँगी।

भिखारी—अरे न बेटी, ऐसा न करना। बड़े आदमी हैं। बड़े आदमी जरा ही में नाराज हो जाते हैं।

कन्या ने बड़ी दृढ़तापूर्वक कहा—मुझसे बाबू नाराज न होंगे।

बाबू साहब खड़े हुए दोनों की बातें सुन रहे थे। कन्या की बात सुनकर वह मुस्कराये।

भिखारी—ऐसा न करना। वह अपने-आप ही कहेंगे।

कन्या—जो अपने-आप न कहा तो ?

भिखारी—तो फिर देखा जायगा, जो अभी तक करते आये हैं, वही करेंगे।

कन्या—क्या भीख ? अरे राम-राम ! बाबा, भीख माँगने का नाम मत लेना ! मैं ऐसा काम कभी नहीं करूँगी और न तुम्हें करने दूँगी !

भिखारी—नहीं करेंगे तो खायेंगे क्या ?

कन्या—मजूरी करके पेट भरेंगे, पर भीख नहीं माँगेंगे ।

भिखारी—तू तो पगली है ।

कन्या—पगली-वगली नहीं हूँ । बाबा, मैं अब भीख नहीं माँगूँगी, नहीं माँगूँगी, चाहे भूखों मर जाऊँ ।

इसी समय बाबू साहब ने, जो खड़े-खड़े थक गये थे, खँखारा । उनकी खँखार सुन कर कन्या ने पूछा—कौन है ?

बाबू साहब बोले—'मैं हूँ, कहो तुम्हारे पिताजी का अब कैसा हाल है ?' यह कहते हुए बाबू साहब कोठरी के अन्दर जाकर खड़े हो गये ।

भिखारी ने उन्हें देखते ही हाथ जोड़े और कहा—आपने मुझ गरीब के प्राण बचा लिये । वहाँ पड़ा-पड़ा अब तक तो मर जाता । भगवान आपको सुखी रखे ।

बाबू साहब—तुम्हारा बुखार उतरा या नहीं ?

भिखारी—अभी बिल्कुल तो उतरा नहीं, हाँ हल्का पड़ा है । ईश्वर आपका भला करें । आपने इस समय बड़ी सहायता की ।

बाबू साहब के जी में आया कि कह दें—'अब तुम कहीं मत जाना, हमारे ही यहाँ रहना ।' परन्तु यह सोचकर कि देखें यह व्यक्ति अपने-आप कुछ कहता है या नहीं, वह चुप रहे ।

बाबू साहब—तुम दो-चार रोज में चंगे हो जाओगे ।

भिखारी—देखिए, आपका नमक-पानी बदा होगा तो अच्छा हो ही जाऊँगा ।

उसी समय कन्या बोल उठी—बाबूजी, तुम अपने यहाँ बाबा को नौकर रख लो ।

बाबू साहब तो बाप-बेटी का कथोपकथन सुनकर पहले ही यह निश्चय कर चुके थे । परन्तु तो भी उन्होंने कहा—तुम्हारे पिता मेरे यहाँ नौकरी काहे को करेंगे ?

कन्या—वाह, करेंगे क्यों नहीं, ऐसे बाबू बाबा को कहाँ मिलेंगे ।

यह बात कहते-कहते कन्या ने कुछ लजाकर अपनी आँखें नीची कर लीं ।

भिखारी बोल उठा—सरकार, अब तो आप मुझे अपनी ही सेवा में रख

लें तो अच्छा है। बुढ़ापे में कहाँ-कहाँ ठोकरें खाता फिरूँगा। सबसे बड़ा विचार मुझे इस लड़की का है। यह अब जवान हो रही है, इसे साथ लिए कहाँ फिरूँगा ?

बाबू साहब—अच्छी बात है। तुमने रहना चाहा तो बड़ी खुशी से रह सकते हो। जो तनख्वाह तुम कहोगे, तुम्हें मिल जाया करेगी।

भिखारी—तनख्वाह ! तनख्वाह काहे की। हम दोनों प्राणियों को पेटभर भोजन और तन ढाँकने को कपड़ा मिलता रहे।—बस यही मेरी तनख्वाह है। कोठरी यह मुझे मिल ही गई है—काफी है।

बाबू साहब—अच्छी बात है। अब तुम आनन्द से यहीं रहो। जब अच्छे हो जाना तब काम करना।

भिखारी बाबू साहब को अनेक आशीर्वाद देने लगा। लड़की सिर झुकाये बैठी थी। उसने एक क्षण के लिए आँखें उठाकर बाबू साहब पर दृष्टि डाली। उस दृष्टि में इस बार प्रेम तथा कृतज्ञता की मात्रा और भी अधिक थी। बाबू साहब तड़प गए। मन-ही-मन बोले—'ओह ! यह दृष्टि। यही दृष्टि तो मुझे मन्त्रमुग्ध की भाँति चकित कर रही है। देखो आगे यह क्या-क्या करती है।'

यह सोचते हुए बाबू साहब धीरे-धीरे कोठरी के बाहर निकल आये।

उपर्युक्त घटना को एक सप्ताह व्यतीत हो गया। भिखारी अब पूर्णतया स्वस्थ हो गया। वह काम भी करने लगा। नया नौकर देखकर रामनाथ के पिता ने उनसे पूछा—यह नया आदमी कौन है ?

रामनाथ ने कहा—यह एक गरीब ब्राह्मण है। भूखों मरता था, इसलिए मैंने इसे नौकर रख लिया।

पिता—आदमी तो काफी थे, फिर इसकी कौन-सी जरूरत थी ?

रामनाथ सिर झुकाकर बोले—जरूरत तो कुछ नहीं थी, मगर गरीब समझ कर रख लिया।

रामनाथ के पिता बा० श्यामनाथ बड़े सरल स्वभाव के मनुष्य थे और अपने इकलौते पुत्र को प्राणों से अधिक समझते थे। अतएव वह चुप हो रहे।

क्रमशः भिखारी की कन्या का प्रवेश बाबू साहब के अन्तःपुर में हो गया और वह उनकी माता तथा भगिनी की सेवा करने लगी।

एक दिन जब रामनाथ शाम को वायु-सेवन करने के पश्चात घर लौटे तो

अपने कमरे में असाधारण स्वच्छता पाई। उनका कमरा सदैव अस्त-व्यस्त पड़ा रहता था। कहीं किताबें पड़ी हैं, कहीं समाचारपत्रों के पृष्ठ फैले पड़े हैं—मेज पर कागज-पत्रों का ढेर इस प्रकार पड़ा रहता था कि उस पर अन्य चीज धरने की जगह ही न रह जाती थी। यद्यपि हरद्वारी यह काम कर सकता था और कुछ अंशों में करता भी रहता था, पर बाबू रामनाथ अपने मुँह से उसे कभी यह न कहते थे कि—'सब चीजें ठीक से लगा दो।' अतएव वह इस ओर अधिक ध्यान नहीं देता था। उसकी यह धारणा हो गई थी कि—'बाबू साहब इसी में प्रसन्न रहते हैं, उनको अधिक सफाई अच्छी नहीं लगती।' वास्तव में यह बात न थी। बाबू साहब सफाई तो पसन्द करते थे पर लापरवाह इतने थे कि सफाई रखना उनके वश की बात नहीं थी। पुस्तक पढ़ने-पढ़ते जहाँ छोड़ दी, बस, वह वहीं पड़ी रहेगी। कोई दूसरा स्वयं अपनी इच्छा से उठाकर भले ही रख दे, परन्तु बाबू साहब स्वयं उठाकर न रक्खेंगे और न किसी दूसरे से उठाकर रखने के लिए कहेंगे।

अतएव आज कमरे को असाधारण रूप से परिष्कृत देखकर उन्हें कुछ आश्चर्य हुआ। बहुधा ऐसा होता था कि उनकी भगिनी जब उनके कमरे में आ जाती थी तो उनकी सब चीजें ढङ्ग से रख देती थी। उनका ध्यान इस समय भी अपनी भगिनी की ओर गया। वह कपड़े उतार कर टहलते हुए घर के भीतर गये और अपनी भगिनी से, जिसकी वयस तेरह-चौदह वर्ष के लगभग थी, बोले—चम्पा, मालूम होता है आज तू मेरे कमरे में गई थी।

चम्पा ने मुस्कराकर पूछा—यह आपने कैसे जाना भइया ?

बाबू साहब—कमरे को देखकर।

चम्पा—हाँ गई तो थी; पर वह काम मेरा नहीं है।

बाबू साहब—चल झूठी, तेरा काम नहीं तो फिर किसका है ? और किसी को क्या पड़ी है कि करे।

चम्पा—सच्ची भइया मैंने कुछ नहीं किया।

बाबू साहब—फिर वही झूठ……।

चम्पा—मुझसे कसम ले लो मैंने आपकी एक चीज भी छुई हो।

बाबू साहब—तो क्या फिर वे अपने-आप ठीक हो गईं ?

चम्पा—मेरे साथ जस्सो गई थी, उसी ने सब किया, मैं तो खाली खड़ी रही थी।

जस्सो भिखारी की कन्या का नाम था। असली नाम यशोदा था; पर सब उसको जस्सो कहते थे। जस्सो का नाम सुनते ही बाबू साहब चुप रह गये; परन्तु फिर कुछ सोच कर बोले—वह क्या जाने कौन चीज कहाँ धरी जानी चाहिए ?

चम्पा—मैं बताती जो गई थी।

यह उत्तर सुनकर बाबू साहब चुपचाप अपने कमरे में लौट आये। लौट कर उन्होंने पुनः एक बार अपने कमरे को ध्यानपूर्वक देखा और यह निष्कर्ष निकाला कि जस्सो ने चीजें रखने में अपनी बुद्धि से भी बहुत काम लिया है। वह केवल चम्पा के आदेश पर ही निर्भर नहीं रही; क्योंकि बहुधा चम्पा ने स्वयं अपने हाथों से भी यह कार्य किया है, परन्तु इतने ढंग से वह कभी नहीं कर सकी। यह सोचकर उ हें प्रसन्नता हुई।

उसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। बाबू रामनाथ का कमरा सदैव ही परिष्कृत रहने लगा। इसका कारण यह था कि जस्सो को बाबू साहब की सेवा करने में अपार आनन्द मिलता था। उसे जब अवसर मिलता, वह झट बाबू साहब के कमरे में पहुँच जाती और जो कुछ थोड़ा-बहुत काम होता, कर आती थी।

एक दिन अपने नियमानुसार जस्सो बाबू साहब के कमरे की चीजें यथा-स्थान रख रही थी कि संयोगवश उसी समय बाबू साहब कमरे में आये। उन्होंने देखा कि जस्सो बड़ी दत्तचित्तता के साथ काम में जुटी हुई है। वह बड़ी खबरदारी के साथ प्रत्येक चीज उठाती है और उसे कपड़े से भली-भाँति पोंछकर उसके स्थान पर रख देती है। बाबू साहब की आँखों को उसका यह कार्य भला लगा। अतएव उन्होंने उसे छेड़ना उचित नहीं समझा। वह चुप-चाप कमरे के द्वार की आड़ में होकर जस्सो का कार्य देखने लगे। पुस्तकें तथा समाचारपत्र ठीक तरह से रखने के पश्चात् जस्सो ने ब्रुश उठाया और बाबू साहब के खूँटी पर टँगे हुए कपड़ों को साफ करना आरम्भ किया। वह एक-एक कपड़ा बड़ी सावधानी से उठाती थी, मानो उसे भय था कि केवल उसका हाथ लगने से मैला हो जायगा—और उसे ब्रुश से भली-भाँति साफ करके खूँटी पर टाँग देती थी। इसी प्रकार उसने सब कपड़े साफ करके टाँग दिये। इस कार्य में उसे पन्द्रह मिनट लगे। इसके पश्चात् उसने एक बार पुनः समस्त कमरे का निरीक्षण किया—कदाचित् इस अभिप्राय से कि कहीं कोई

कमी तो नहीं रह गई। जब उसे सन्तोष हो गया कि सब चीजें ठीक लग गईं, तब वह मेज के पास आई। मेज पर बाबू साहब का एक फोटो फ्रेम में [illegible]
[illegible] उसे बड़ी सावधानी से उठाया और अपने आंचल से उसे खूब पोंछा, परन्तु जान पड़ता था कि फिर भी उससे सन्तोष न हुआ। फ्रेम पर जो शीशा लगा हुआ था उसे मुँह की भाप द्वारा कई बार साफ किया। इस प्रकार उस फोटो को साफ करने में उसने दस मिनट लगाये। जब अन्तिम बार उसने उसे अपने आँचल से पोंछकर मेज पर रखा, तब उसने उस पर एक विचित्र दृष्टि डाली। उस दृष्टि में प्रेम, गर्व, अभिलाषा, मुग्धता के भावों ने मिलकर एक अद्भुत छटा उत्पन्न कर दी थी। कुछ क्षणों तक वह स्थिर दृष्टि से फोटो को देखती रही। तत्पश्चात् एक दीर्घ निःश्वास लेकर धीरे-धीरे वहाँ से चलने लगी।

ठीक उसी [illegible]य बाबू साहब ने कमरे में प्रवेश किया। बाबू साहब को देखकर जस्सो [illegible] चौंक पड़ी। जिस प्रकार चुरा-छिपाकर काम करता हुआ कोई व्यक्ति अकस्मात् किसी के आ जाने से चौंक पड़ता है और घबरा जाता है, उसी प्रकार जस्सो भी घबरा गई और चुपचाप सिर झुकाकर खड़ी हो गई। बाबू साहब ने भी इस प्रकार, जैसे कुछ जानते ही नहीं, कहा—अरे! जस्सो तू यहाँ मौजूद है।

यह कहकर उन्होंने अपने चारों ओर देखा और प्रसन्न-मुख होकर बोले—अब तो मेरा कमरा बहुत साफ रहा करता है। ऐसी सफाई पहले मैंने कभी नहीं देखी। जब से तेरा हाथ लगने लगा तब से तो इसकी काया-पलट हो गई।

जस्सो ने इसका कुछ भी उत्तर न दिया। वह मौन खड़ी रही।

बाबू साहब मेज के पास कुर्सी पर बैठ गये और जस्सो की ओर मुख करके बोले—जान पड़ता है चम्पा ने तुझे इस काम पर तैनात किया है। वह बड़ी चलती हुई है। उसने इस प्रकार अपनी मेहनत बचाई। कभी-कभी जो कुछ करना पड़ता था उससे भी फुर्सत मिल गई। क्यों, है न यही बात?

जस्सो ने धीमे स्वर में कहा—नहीं, यह बात नहीं है। वह तो मुझसे कभी नहीं कहतीं, मैं अपनी खुशी से करती हूँ।

बाबू साहब—अपनी खुशी से करती हो ? अच्छा, तब तो और भी अच्छी बात है।

उसी समय अन्तःपुर से आवाज आई 'जस्सो'। आवाज सुनते ही जस्सो तेजी के साथ वहाँ से चली गई।

६

उपर्युक्त घटना से बाबू साहब यह भली-भाँति समझ गए कि जस्सो उनसे प्रेम करती है। वह स्वयं भी जस्सो की ओर आरम्भ ही से आकृष्ट थे। परन्तु वह अभी तक नहीं समझ सके थे कि जस्सो से वह वास्तव में ही प्रेम करते हैं या नहीं। यह बात अवश्य थी कि जस्सो को सुखी देखने में उन्हें सुख मिलता था। उसको देखकर उनके हृदय में उसके प्रति एक विचित्र भाव उत्पन्न हो जाता था। वह भाव क्या था— यह अभी वह स्वयं न समझ सके। बाबू साहब यह भली-भाँति समझते थे कि जस्सो एक भिखारी की कन्या है और वह कुलीन तथा धनाढ्य परिवार के पुत्र हैं। ऐसी दशा में उनका और जस्सो का प्रेम सफल नहीं हो सकता, इसलिए वह यथा-शक्ति उसे भूलने की चेष्टा करते थे। परन्तु फिर भी न जाने क्यों जस्सो को भूलने में वह सफल नहीं हो पा रहे थे और अब तो, जब कि वह प्रत्येक समय उनके घर ही में उपस्थित रहती थी, उसके भूलने का प्रश्न कोसों दूर था।

वह यह भी सोचते थे कि जस्सो से वह अपने हृदय की बात कहें, क्योंकि उन्हें विश्वास हो ही गया था कि जस्सो उनसे प्रेम करती है, और इसलिए उनकी बात ध्यानपूर्वक सुनी जायगी। परन्तु उनका साहस न पड़ता था। जब कभी जस्सो को अकेला पाकर वह प्रेम-प्रदर्शन की इच्छा करते, तभी उनका साहस टूट जाता था, कलेजा धड़कने लगता और मुँह बन्द हो जाता था। अवसर निकल जाने पर उन्हें अपनी इस दुर्बलता पर बड़ा क्रोध आता था। वह मन-ही-मन लज्जित होकर कहते थे—"मैं तो स्त्रियों से भी गया बीता हूँ, ऐसी लज्जा तो स्त्रियों को शोभा देती है, न कि मुझे।'

एक दिन उन्होंने इस बात की प्रतिज्ञा कर ली कि चाहे जो कुछ हो, इस

बार अवसर आने पर वह अपना प्रेम जस्सो पर अवश्य प्रकट करेंगे। एक घर में रहते हुए ऐसा अवसर प्राप्त होने में अधिक विलम्ब न लगा।

एक दिन जब कि जस्सो उनके कमरे को ठीक-ठाक कर रही थी, बाबू साहब पहुँच गये। जस्सो चुपचाप सिमिटकर एक ओर खड़ी हो गई।

बाबू साहब कुर्सी पर बैठ गये और तीन-चार मिनट तक सोचते रहे कि क्या कहें। अन्त में अपनी 'भीष्म-प्रतिज्ञा' का स्मरण करके उन्होंने कहा—जस्सो, तुम जब देखो मेरा ही काम किया करती हो, यह क्या बात है?

जस्सो ने इसका कोई उत्तर न दिया—मौन खड़ी रही। कुछ क्षणों तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् बाबू साहब पुनः बोले—जस्सो, तुमने मेरी बात का उत्तर न दिया?

जस्सो ने धीमे स्वर में कहा—आपकी नौकर हूँ, इसलिए आपका काम करती हूँ।

बाबू साहब—मेरी नौकर तो तुम नहीं हो। यदि नौकर हो तो मेरी माता की, मेरी बहिन की।

जस्सो मौन रही।

बाबू साहब—क्यों, इसका क्या जवाब है?

जस्सो—मैं तो आपको ही सब-कुछ समझती हूँ।

यह बात कहते हुए जस्सो ने एक क्षण के लिए बाबू साहब पर ऐसी दृष्टि डाली कि उस दृष्टि ने जस्सो की बात का तात्पर्य समझने में शब्दों से कहीं अधिक काम किया।

जस्सो के यह प्रेमपूर्ण वाक्य सुनकर और उसकी भोली सूरत पर प्रेम पूर्ण दृष्टि देखकर बाबू साहब की इच्छा हुई कि वह उठकर जस्सो को हृदय से लगा लें, परन्तु साहस ने पुनः साथ छोड़ना आरम्भ किया। उनके हृदय ने यह स्वीकार न किया कि एक अबला के अकेलेपन से वह इतना अनुचित लाभ उठावें। वह केवल खड़े हो गये और धीरे-धीरे जस्सो की ओर बढ़े और उसके सामने जाकर खड़े हो गये। कुछ क्षण तक मौन खड़े उसकी ओर देखते रहे; तत्पश्चात् बोले—जस्सो, क्या संसार में मैं ही तुम्हारे लिए सब कुछ हूँ?

जस्सो ने लज्जा से गर्दन झुका ली—कोई उत्तर न दिया। बाबू साहब ने बहुत धीरे से उसका हाथ पकड़ कर अपने दोनों हाथों में ले लिया—जस्सो

ने कोई आपत्ति न की। जस्सो का हाथ अपने हाथों में लेकर बाबू साहब ने कहा—मेरी बात का उत्तर न दिया ?

जस्सो ने धीमे स्वर में कहा—क्या उत्तर दूँ !

जस्सो का शरीर काँपने लगा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस समय उसे अपार आनन्द मिल रहा है—ऐसा सुख, ऐसा आनन्द उसे इसके पूर्व कभी भी प्राप्त नहीं हुआ था। वह घबराकर बोली—मुझे जाने दीजिए, ऐसा न हो कोई देख ले !

बाबू साहब—मेरी बात का उत्तर दिये बिना तुम नहीं जा सकोगी।

जस्सो—आपने जो मेरे साथ भलाई की है; वह कोई दूसरा कर सकता है ? इसीलिए तो आप ही सब कुछ हैं।

बाबू साहब—अच्छा तो तुम इसलिए मेरी सेवा करती हो कि मैंने तुम्हारे साथ भलाई की है।

यह कहकर बाबू साहब ने जस्सो का हाथ छोड़ दिया। जिस ढंग से बाबू साहब ने जस्सो का हाथ छोड़ा, उससे जस्सो यह समझ गई कि बाबू साहब को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा और वह रुष्ट हो गये। बाबू साहब उसकी ओर पीठ करके धीरे-धीरे अपनी कुर्सी की ओर बढ़े। जस्सो ने उनकी ओर आँखें उठाकर देखा। उसके नेत्रों में आँसू छलछला रहे थे, मुख पर उदासी छा गयी थी। उसने शीघ्र ही पुनः सिर झुका लिया।

बाबू साहब जाकर कुर्सी पर बैठ गये। कुछ देर तक गम्भीर मुख बनाये बैठे रहे। तत्पश्चात् बोले—जस्सो, मैंने धोखा खाया, मैं कुछ और समझे हुआ था।

जस्सो ने बहुत ही साहस करके—वह साहस जो सर्वनाश होते देखकर मनुष्य के हृदय में उत्पन्न हो जाता है—पूछा 'क्या समझे हुए थे ?' उसके कण्ठ-स्वर में भारीपन था, परन्तु बाबू साहब का ध्यान इस बात पर नहीं गया।

बाबू साहब—क्या बताऊँ क्या समझे हुए था !

जस्सो कुछ देर तक मौन खड़ी रही, तत्पश्चात् बोली—अब समझ-बूझकर भी जो नासमझ बने, उसे कोई क्या समझा सकता है ?

यह कहकर वह तेजी के साथ कमरे से बाहर हो गई।

जस्सो के चले जाने के पश्चात् कुछ क्षणों तक बाबू रामनाथ चिंता सागर में मग्न रहे, तदुपरान्त अपने-ही-आप मुस्कराये और बोले—"यह बात है। मैं तो पहले ही जानता था।" यह कहते हुए वह मेज की कुर्सी पर आ बैठे। कुछ देर तक बैठे कागज-पत्र उलटते रहे, फिर दो पत्र लिखे।

इसके पश्चात् एक अँग्रेजी का उपन्यास लेकर बैठे, दो-चार पृष्ठ पढ़े, परन्तु जी न लगा। अतएव उपन्यास बन्द करके रख दिया और जिस द्वार से जस्सो अन्तःपुर में गई थी उसकी ओर ताकते रहे; फिर एक अँगड़ाई लेकर उठे और टहलते हुए अन्तःपुर की ओर चले। अन्तःपुर के भीतर के द्वार पर जाकर खड़े हुए। उस समय उनकी माता पूजन कर रही थीं। उन्होंने रामनाथ को द्वार पर खड़े होते देख, पूछा—क्या है बेटा ? क्या चाहिए ?

रामनाथ कुछ सिटपिटा कर बोले—कुछ नहीं, भोजन तैयार हुआ या नहीं ?

माता—हो रहा है, आज बड़ी जल्दी भूख लग गई !

रामनाथ—नहीं; भूख तो कुछ ऐसी विशेष नहीं लगी।

माता—तो फिर अभी से खाने की फिकर पड़ गई !

रामनाथ इसका कोई उपयुक्त उत्तर न दे सकने के कारण—'योंही' कह कर चुप हो गये। उनके मुखमण्डल पर झेंप की लालिमा दौड़ गई। उन्होंने मन में सोचा—'मैंने भी इस समय कितनी हास्यास्पद बातें की हैं ! राम ! राम !' यह सोचकर वह लौटने को ही थे कि उसी समय माता ने कहा - अरे बेटा ! यह जस्सो हिन्दी पढ़ने को कहती है, कई बार कह चुकी है। इसके लिए एक वर्णमाला मँगा दो, चम्पा पढ़ा दिया करेगी।

प्रसंग बदलता हुआ देखकर बाबू रामनाथ प्रसन्न-मुख होकर लौट पड़े और बोले—चम्पा के पास तो वर्णमाला होगी।

माता—उसकी तो मुद्दत हुई फट-फटा के किनारे हो गई, अब धरी है।

उसी समय चम्पा भी एक कमरे से निकल आई और बोली—भइया, वर्णमाला और प्रथम भाग मँगा दो।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—तूने अपनी किताबें क्या कीं ?

चम्पा—वह तो कभी की फट-फटाकर अलग हो गई थीं।

रामनाथ—तू बड़ी किताब-फाड़ लड़की है, सारी किताबें फाड़ डालती है।

चम्पा—अब कहाँ फाड़ती हूँ ? मेरी किताबें देखो कैसी अच्छी तरह धरी हैं।

रामनाथ—हाँ, धरी क्यों न होंगी—एक किताब तो साबुत बचती नहीं।

चम्पा कुछ लज्जित होकर बोली—वाह ! आपकी किताबें तक तो मैं सँवार-सँवार कर रक्खा करती हूँ, फिर भला अपनी न रक्खूँगी !

इस अवसर पर माता बोल उठी—तू इसे क्यों ताने देता है ? यह तो फिर भी अभी बच्चा ही है। तू जो इतना बड़ा हो गया। अँग्रेजी, फार्सी, हिन्दी, न जाने क्या-क्या चाटे बैठा है—तुझे किताबें रखने का बड़ा सहूर है ! एक दिन मैं तेरे कमरे में चली गई थी। हे भगवान्—वहाँ की दशा देखकर मेरे तो जी घबराने लगा। जिधर देखो उधर किताबें और कागज फैले पड़े हैं—कहीं बैठने को जगह तक नहीं। जितनी कुर्सियाँ धरी थीं सब पर कितने कागज बिखरे पड़े थे—कोई बैठे तो कहाँ बैठे, तेरी तो यह दशा है—इस कल की छोकरी को ताने देता है !

अब तो चम्पा की चढ़ बनी, प्रसन्न-मुख होकर बोली—और, वह, मैं ही जाकर सब ठीक किया करती हूँ। मैं न ठीक किया करूँ तो वे बरसों तक वैसी ही पड़ी रहें।

माता—वह निगोड़ा हरद्वारी न जाने क्या किया करता है। उसे इतना भी सहूर नहीं जो अपने मन से भी कुछ कर दिया करे। जो कुछ कहा जायगा वह कर देगा, बाकी छुवेगा तक नहीं। ऐसा तो नौकर ही नहीं देखा। मुझे तो निगोड़े की शकल से नफरत है।

चम्पा—वह क्या करे, बहू। भइया तो उससे कुछ कहते नहीं। वह अपने मन से जो करदे सो करदे—भइया कभी न कहेंगे कि यह काम कर।

माता—दोनों जैसे-के-तैसे—जैसा मालिक तैसा नौकर, दोनों अहदी। मेरी तो ऐसे नौकर से कभी न निभे।

इतना कहकर माता पूजन-गृह को चली गई। बात सच्ची थी; इस पर बाबू रामनाथ कह ही क्या सकते थे।

अतएव इस बात का कुछ उत्तर न देकर चम्पा से बोले—तू बहुत बढ़-बढ़ कर बातें मारती है, मुझे दिखा तो तेरी पुस्तकें कहाँ धरी हैं ?

'आओ देखो !' यह कहकर चम्पा चली। उसके पीछे बाबू रामनाथ चले। जा तो चम्पा के कमरे की ओर रहे थे, परन्तु आँखें चारों ओर घूम-घूम कर

किसी को ढूँढ़ रही थीं। चम्पा ने अपने कमरे में ले जाकर एक अल्मा
खोलकर कहा—'देखो।'

रामनाथ ने देखा—अल्मारी में चालीस के लगभग हिन्दी पुस्तकें चुनी हु
थीं। नीचे के खाने में कागज, कलम, दवात इत्यादि कायदे से अपने-अप
स्थान पर रक्खे थे।

चम्पा ने कहा—देखा ?

रामनाथ ने कहा—क्या देखा, चार किताबें—इन्हें धरना-उठाना कौ
कठिन है ?

चम्पा—तो मैं कब कहती हूँ कठिन है, मैंने तो यह कभी नहीं कहा।

रामनाथ—खैर, वह कहा, न कहा—बात एक ही है।

चम्पा खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली—वाह; जबरदस्ती बात ए
ही है।

रामनाथ—अच्छा न सही ! अरे, तेरे पास क्या-क्या है, सब दिखा

चम्पा—और मेरे पास कुछ नहीं है।

रामनाथ—है क्यों नहीं ? उस अल्मारी में क्या है ?

चम्पा कुछ मुस्कराकर बोली—उसमें कुछ नहीं है।

रामनाथ—है क्यों नहीं ? दिखा क्या है ?

चम्पा—इसमें कपड़े-वपड़े धरे हैं।

रामनाथ—किसके कपड़े—तेरे ?

चम्पा—हाँ मेरे ही हैं।

रामनाथ—'अच्छा देखूँ तो' कहकर अल्मारी की ओर चले।

—रहने दो भइया, उसे न खोलो।

रामनाथ न माने—अल्मारी को खोल ही डाला। उसमें सार
सामान गुड़ियों के सम्बन्ध का था। अनेक प्रकार की छोटी-बड़ी गुड़ियाँ, उनके
कपड़े, कुर्सी, मेज, बर्तन तथा अन्य अनेक प्रकार के खिलौने रक्खे हुए थे। यह
सब देखकर रामनाथ मुस्कराये और चम्पा से बोले—तू इतनी बड़ी हो गई
और अब तक गुड़ियाँ खेलती है !

चम्पा का गोरा मुखमण्डल लज्जा के मारे रक्त-वर्ण हो गया। उसने
आँखें नीची करके कहा—अब कहाँ खेलती हूँ।

रामनाथ—तो ये सब क्यों धरी हैं ?

चम्पा पैर के अँगूठे से भूमि खोदती हुई बोली—तो क्या करूँ—फेंक दूँ ?

रामनाथ—ससुराल ले जाने के लिए रख छोड़ी होंगी; सास को भेंट में देगी—क्यों ?

चम्पा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप दोनों आलमारियाँ बन्द करने लगी। उसी समय हठात् बाबू रामनाथ की दृष्टि कमरे के द्वार को पार करती हुई बाहर घर के प्रांगण की ओर गई। ठीक उसी समय जस्सो स्नानागार से बाहर निकली। वह केवल एक श्वेत धोती पहने हुई थी। सिर खुला था और केश बिखरे हुए थे। गोरे-गोरे मुख-मण्डल पर स्नानजनित कांति विद्यमान थी। निरीहता के कारण शरीर को पूर्णतया छिपाने की चेष्टा नहीं की गई थी, अतएव वक्षस्थल का भी कुछ भाग खुला हुआ था। वह एक दिव्य मूर्ति मालूम होती थी। रामनाथ इस छटा को देखकर मूर्तिवत खड़े रह गये। हठात् जस्सो के काले तथा दीर्घ नेत्र ऊपर उठे। रामनाथ के नेत्रों से उनका साक्षात् हो गया। जस्सो ने हरिणी की भाँति कुलाँच भरी और क्षण मात्र में न जाने कहाँ अदृश्य हो गई। ऐसा प्रतीत हुआ मानो बिजली कौंध गई। बाबू रामनाथ ने कुछ क्षणों के लिए अपने नेत्र बन्द कर लिये। वह न जाने कब तक इस प्रकार खड़े रहते, परन्तु उसी समय चम्पा ने उनके पास आकर कहा—चलो भइया, अब तो खाना तैयार हो गया।

रामनाथ चौंक पड़े। उन्होंने दोनों हाथों से नेत्र मलते हुए पूछा—बाबूजी खा चुके ?

चम्पा—क्या जानूँ—देखो, देखती हूँ।

यह कहकर चम्पा चली गई। कुछ क्षणों पश्चात् आकर बोली—अभी तो बाबूजी नहा रहे हैं।

रामनाथ—तो पहले उन्हें खा लेने दो। जब खा चुकें तो मुझे बुला लेना।

यह कहकर वह अपने कमरे की ओर चल दिये।

बाबू रामनाथ ने अपने कमरे में आकर हरद्वारी को बुलाया। हरद्वारी के आने पर उन्होंने कागज के एक टुकड़े पर हिन्दी वर्णमाला तथा प्रथम पुस्तक का नाम लिखकर उसे दिया और कहा—ये दो किताबें दौड़ कर ले आओ।

हरद्वारी पुस्तकें लेने चला गया। इधर बाबू साहब अपनी कुर्सी प
बैठे ध्यान-मग्न हो गये।

उपर्युक्त घटना हुए एक सप्ताह व्यतीत हो गया। इसी बीच
रामनाथ तथा जस्सो का साक्षात् बहुत कम हुआ। इसका कारण यह
जस्सो का रामनाथ से एकान्त में मिलने का साहस नहीं होता था।
वह ऐसा अवसर आने ही न देती कि बाबू साहब उससे एकान्त में मिल
एकान्त में मिल सकने का केवल एक अवसर पड़ता था और वह उस
जबकि जस्सो बाबू साहब के कमरे में आती थी। परन्तु अब जस्सो ज
साहब के कमरे में आती थी तो उनकी भगिनी चम्पा को भी साथ
थी, अथवा ऐसे समय पर आती थी जबकि बाबू साहब घूमने-फिरने
निकल जाते थे। रामनाथ भी अब उससे एकान्त में मिलने के लि
विशेष प्रयत्न नहीं करते थे। वह सुशिक्षित थे, सदाचार के वायुमण्डल
हुए थे, अतएव वह भली-भाँति समझते थे कि उनका जस्सो से एक
मिलते रहना अच्छा नहीं है। इसके अतिरिक्त उन्हें यह डर था कि कह
माता-पिता को यह ज्ञात न हो जाय कि उनका पुत्र जस्सो से प्रेम क
परन्तु इतना सब कुछ समझते-बूझते हुए भी कभी-कभी उनका हृदय
मचलने लगता—उस समय रामनाथ अधीर होने लगते थे।

शाम का समय था। बाबू साहब अपने बगीचे के छोटे लान में
हरी-हरी घास लगी हुई थी, कुर्सी पर बैठे एक अँग्रेजी समाचार-पत्र
थे। उसी समय उनके कान में ये शब्द पड़े—हलो, रामनाथ!

उन्होंने घूमकर देखा—देखते ही उठ खड़े हुए और मुस्कराते हुए
हलो, ब्रजकिशोर, तुम! कब आये?

ब्रजकिशोर रामनाथ के घनिष्ठ मित्र थे। इनके पिता लखनऊ मे
कलेक्टर थे। पहले कई वर्षों तक वह इस शहर में डिप्टी-कलेक्टर
उसी समय रामनाथ की ब्रजकिशोर से मित्रता हुई थी। ब्रजकि
ससुराल भी इसी नगर में थी।

ब्रजकिशोर ने कहा—आज सुबह आया।

रामनाथ—अच्छा बैठो।

यह कहकर उन्होंने आवाज दी—'नन्दू!'

नन्दू जस्सो के पिता का नाम था। नन्दू आया। रामनाथ

कहा—'देखो सिगरेट और पान लाओ।' नन्दू चला गया और थोड़ी देर में सिगरेट-पान लाकर रख गया। पान खाकर सिगरेट सुलगाते हुए ब्रजकिशोर ने पूछा—यह नौकर तो नया मालूम होता है—हरद्वारी चला गया क्या?

रामनाथ—नहीं, वह भी है। यह अभी हाल में आया है। कहो, आजकल क्या शगल रहता है?

ब्रजकिशोर—शगल बेकार है।

रामनाथ—क्या, एल-एल० बी० पास करने का इरादा छोड़ दिया क्या?

ब्रजकिशोर—मेरा इरादा तो था; परन्तु पिताजी मना करते हैं। रामनाथ ने पूछा—क्यों, मना क्यों करते हैं?

ब्रजकिशोर—उनका विचार है कि वकालत में आजकल कुछ तत्त्व नहीं है।

रामनाथ—हाँ, नये वकीलों को दिक्कतें तो बहुत पड़ती हैं। तो फिर, क्या करने का इरादा है?

ब्रजकिशोर—पिताजी डिप्टी-कलेक्टरी के लिए नामजद कराने की चेष्टा कर रहे हैं।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—यह बहुत अच्छा होगा, पिता भी डिप्टी-कलेक्टर और पुत्र भी।

ब्रजकिशोर—भाई, मुझे तो यह कुछ अधिक पसन्द नहीं।

रामनाथ—क्यों?

ब्रजकिशोर—नौकरी फिर नौकरी ही है, और मैं चाहता हूँ कि कोई ऐसा काम करूँ जिसमें स्वाधीन रहूँ।

रामनाथ—यह बात है—तब तो तुम्हें वकालत ही करनी चाहिए।

ब्रजकिशोर—पिताजी के मारे करने पाऊँ जब न। हाँ, तुम्हारे क्या इरादे हैं?

रामनाथ—मैं तो वकालत ही करूँगा—मौरूसी पेशा कैसे छोड़ सकता हूँ।

ब्रजकिशोर—बी० ए० का रिजल्ट (नतीजा) तो अभी निकला नहीं—तुम तो पास हो ही जाओगे।
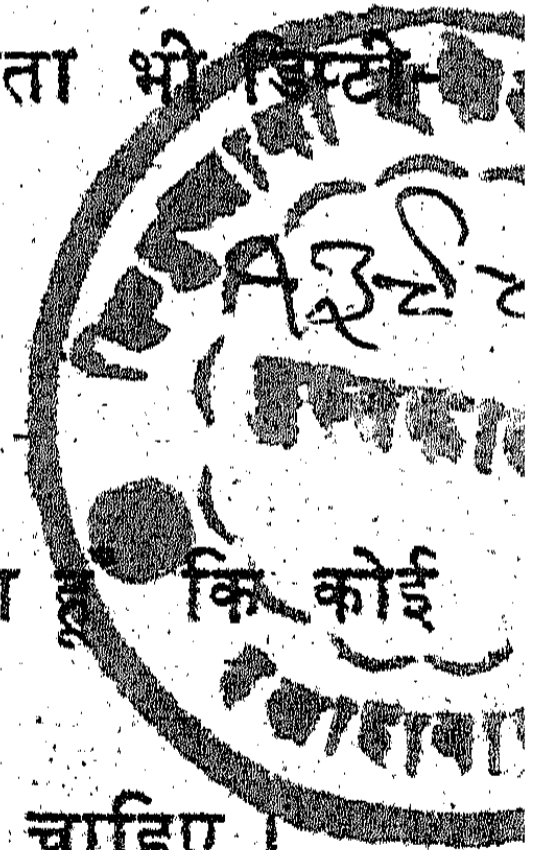
ब्रजकिशोर—और कहो कोई ताजे समाचार। एक साल बाद मुलाकात हुई है, इस बीच में क्या-क्या हुआ ?

रामनाथ—तुम्हारी बला से—चाहे जो कुछ हुआ हो। तुम इतने आदमी हो कि अपने-आप कभी कोई पत्र लिखना तो दूर की बात है, पत्रों के उत्तर तक नहीं देते।

ब्रजकिशोर—पत्र लिखने में लीचड़ तो अवश्य हूँ, पर तुम्हारे पत्रों के उत्तर तो सदैव देता हूँ।

रामनाथ—अजी जाओ भी ! छह पत्र लिखे जाते हैं, तब कहीं एक उत्तर मिलता है।

ब्रजकिशोर—'खैर, मिल तो जाता है—यही क्या कम है !'

रामनाथ—वह गोया मुझ पर आपकी खास इनायत है।

ब्रजकिशोर—इनायत नहीं, मुहब्बत है। क्या बताऊँ दोस्त, जबसे से गया—घूमने-फिरने का मज़ा जाता रहा।

रामनाथ—मैं भी अब कहीं नहीं जाता। अधिकतर घर ही में रहता जितने घनिष्ठ मित्र थे, वे तो सब तितर-बितर हो गये—जाऊँ तो किसके पास !

ब्रजकिशोर—यही हालत अपनी भी है। हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारी शादी कब होगी ? कहीं बातचीत लगी है ?

रामनाथ—अरे यार, शादी-बादी अभी से क्या करनी है।

ब्रजकिशोर—ओहो, तो क्या बुढ़ापे में करोगे।

रामनाथ—देखा जायगा, जब होनी होगी हो जायगी। दूसरे, भाई—बात यह है कि मैं अन्धी शादी करना भी नहीं चाहता।

ब्रजकिशोर—अन्धी कैसी ?

रामनाथ—यही, जैसी कि हिन्दुओं में हुआ करती है, न पति को यह है कि पत्नी कैसी है और न पत्नी को यह खबर है कि पति कैसा है।

ब्रजकिशोर—तो यह कौन कठिन बात है, देख-सुनकर कर सकते हो

रामनाथ—यह कैसे हो सकता है ? माता-पिता के रहते हुए मैं वाला कौन ?

ब्रजकिशोर—कम से कम फोटो तो देख ही सकते हो ?

रामनाथ—फोटो से कुछ अधिक पता नहीं लगता। बदसूरत आदमी भी फोटो में खूबसूरत आ सकता है।

ब्रजकिशोर—तब तो तुम्हें खब्त है। तुम तो चाहते हो कि पहले 'लव' (प्रेम) हो, पीछे ब्याह, क्यों ठीक है न ?

रामनाथ—इसमें सन्देह ही क्या है ? लव-मेरिज (प्रेम-विवाह) तो सबसे उत्तम है; परन्तु हम हिन्दुस्तानियों के भाग्य में वह है कहाँ ? यहाँ तो बस केवल विवाह कर दिया जाता है, प्रेम चाहे हो या न हो।

ब्रजकिशोर—परन्तु अधिकांश दशाओं में पति-पत्नी में प्रेम तो होता ही है।

रामनाथ—परन्तु अधिकांश नहीं कह सकते, निभाना-सा हो जाता है।

ब्रजकिशोर—तो क्या आप समझते हैं कि उन देशों में, जहाँ कि 'लव मेरिज' का रिवाज है, समस्त विवाह आदर्श होते हैं। यदि आप यह समझते हैं तो आप सख्त गलती करते हैं। पाश्चात्य देशों में कितने तलाक होते हैं, यह भी पता है ?

रामनाथ—नहीं, यह मैं नहीं कहता कि वहाँ 'लव मेरिज' ही होती है।

ब्रजकिशोर—कम-से-कम विवाह के समय तो ऐसा ही समझा जाता है।

रामनाथ—समझा जाता है; परन्तु यथार्थ प्रेम नहीं होता, केवल आसक्ति मात्र होती है। आसक्ति को ही प्रेम समझ लिया जाता है। आसक्ति और प्रेम में आकाश-पाताल का अन्तर है।

ब्रजकिशोर—तो इसके अर्थ यह हुए कि प्रेम-विवाह साधारण बात नहीं है।

रामनाथ—बहुत कठिन है। प्रेमिक और प्रेमिका में आसक्ति का भाव है अथवा प्रेम का—यह जानना बहुत मुश्किल बात है। अनुभवहीन युवक और युवती इस बात को नहीं समझ सकते। परिणाम यह होता है कि विवाह होने के कुछ समय पश्चात् जब दोनों के हृदयों की आसक्ति ठण्डी पड़ जाती है, तो परस्पर लड़ाई-झगड़े होने लगते हैं और तलाक तक नौबत पहुँच जाती है।

ब्रजकिशोर—हाँ, बात तो यथार्थ ही है। खैर तुम्हारा क्या इरादा है ?

रामनाथ—भाई मैं तो परवश हूँ। मेरा इरादा ही क्या ?

ब्रजकिशोर—माता-पिता जिसका हाथ पकड़ा देंगे, उसी को स्वीकार क
लोगे ?

रामनाथ—करना ही पड़ेगा—मगर....।

ब्रजकिशोर—मगर क्या ?

रामनाथ—मुस्कराते हुए बोले—कुछ नहीं।

ब्रजकिशोर—कुछ तो ?

रामनाथ—कुछ नहीं जी, यों ही मुँह से निकल गया।

ब्रजकिशोर—क्या ? चकमे किसी और को बताइये। यहाँ आपकी नस-न
का पता है।

रामनाथ—क्या बतावें यार, कोई बात भी हो।

ब्रजकिशोर—तुम्हारी यही बातें बुरी मालूम होती हैं। हमारे-तुम्हारे बी
में आज तक कोई बात गोपनीय नहीं है। फिर क्या कारण है कि तुम आ
हृदय की बात छिपा रहे हो।

रामनाथ—नहीं भाई, तुमसे छिपाऊँगा तो फिर कहूँगा किससे ?

ब्रजकिशोर—तो बस पढ़ चलो !

रामनाथ—क्या बताऊँ मित्र, कहते शर्म मालूम होती है।

ब्रजकिशोर—ओहो ! इससे तो लड़की हुए होते तो अच्छा था, किस
भले मानस का घर बसता।

रामनाथ—यह जो नया नौकर है—नन्दू।

ब्रजकिशोर—हाँ-हाँ !

रामनाथ—उसकी एक कन्या है।

ब्रजकिशोर—कुछ मुस्कराकर बोले—हाँ तो फिर ?

रामनाथ—पूरी बात सुनी ही नहीं और लगे मुस्कराने !

ब्रजकिशोर—अच्छा अब न मुस्कराऊँगा, कहो।

रामनाथ—उस कन्या से मुझे हो चला है।

ब्रजकिशोर—प्रेम ?

रामनाथ—हाँ, मेरा अनुमान तो ऐसा ही है; परन्तु अभी मैं निश्चयपूर्व
नहीं कह सकता कि यह प्रेम है अथवा आसक्ति।

ब्रजकिशोर—जब यह बात है, तब तो यह पूछना ही व्यर्थ है कि वह सुन्दर है या नहीं ।

रामनाथ—वह न पूछिये; आपको चाहे वह अधिक सुन्दर न जँचे, पर यदि मेरी आँखों से देखो तो पता लगे ।

ब्रजकिशोर—बेशक,—'दीद लैला के लिए दीदये मजनूँ है जुरूर ।' लैला को देखने के लिए मजनूँ की आँखें चाहिए । उम्र क्या है ?

रामनाथ—यही कोई चौदह-पन्द्रह साल की ।

ब्रजकिशोर—कौन जात है ?

रामनाथ—ठाकुर । अरे यार कुछ न पूछो, इस पर बड़ा लुत्फ आया ।

ब्रजकिशोर—वह क्या ?

रामनाथ—जब मैंने उसे नौकर रक्खा था तो पिताजी से कहा था कि ब्राह्मण है । बाद को उन्हें पता लगा कि ठाकुर है । मुझसे बोले—'तुम तो कहते थे कि ब्राह्मण है परन्तु वह तो अपने मुँह से कहता है—कि मैं ठाकुर हूँ । यह क्या बात है ? इस पर मैंने कह दिया—ठाकुर तो है ही—मैंने गलती से कह दिया होगा ।

ब्रजकिशोर—फिर ?

रामनाथ—फिर क्या, चुप हो गये । पिताजी कितने सरल स्वभाव के हैं, यह तो तुम जानते ही हो ।

ब्रजकिशोर—अच्छी तरह ! ऐसे सीधे आदमी आजकल बहुत कम होते हैं, मुझे आश्चर्य है ये वकालत कैसे करते हैं । वकालत में तो बड़ी चालाकी की आवश्यकता पड़ती है ।

रामनाथ—यही तो कारण है कि पिताजी की कम चलती है—कम से मेरा तात्पर्य है कि वह चालबाजी और वकालत के समस्त दाँव-पेचों से काम लें, तो इससे अधिक चले ।

ब्रजकिशोर—यह तो ठीक है । यह तो एक दिन मेरे पिताजी भी कहते थे । दो-चार बार तुम्हारे पिताजी मेरे पिताजी की अदालत में भी गये थे न—तभी उन्होंने कहा था—

रामनाथ—क्या कहा था ?

ब्रजकिशोर—इनकी सिधाई की प्रशंसा कर रहे थे । खैर, अब वह तो बताओ, उसे तो अधूरा ही छोड़ दिया ।

रामनाथ—उसमें अब बताने को रह ही क्या गया—सब तो ब
दिया।

ब्रजकिशोर—वह भी यह जानती है कि तुम उससे प्रेम करते हो ?

रामनाथ—यह तो मैं नहीं कह सकता; परन्तु वह मुझसे प्रेम करती है
इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

ब्रजकिशोर—हाँ, यह बात है ?

रामनाथ—यही तो बात है मित्र ! सच पूछो तो उसीका प्रेम मुझे
उसकी ओर आकर्षित कर रहा है।

ब्रजकिशोर—तब तो ठीक है। यह नन्दू तुम्हारे यहाँ आया कैसे ?

रामनाथ—क्या पूछते हो, बड़ी मजेदार बात है।

ब्रजकिशोर—तब तो जरूर पूछूँगा।

रामनाथ ने आरम्भ से लेकर अन्त तक सब वृत्तान्त सुना दिया।

सब सुन चुकने के बाद ब्रजकिशोर ने कहा—यह तो बड़ी मजेदार घट
है, उपन्यास का आनन्द आता है।

ब्रजकिशोर—इससे तो यह प्रकट होता है कि पहले प्रेम का अँकुर उसी
हृदय में उदय हुआ।

रामनाथ—मेरा भी यह ख्याल है।

ब्रजकिशोर—तब तो उस्ताद इस प्रेम-पाश से तुम्हारा निकलना क
है।

रामनाथ—क्या बताऊँ, बड़े असमञ्जस में हूँ। उससे विवाह होना
एक प्रकार से असम्भव-सा है, अतएव इस प्रेम का परिणाम क्या होगा,
समझ में नहीं आता।

ब्रजकिशोर—तुमने भी कोई उपाय सोचा ?

रामनाथ—मैं तो अभी यही नहीं समझा हूँ कि मैं उससे प्रेम करता
हूँ या केवल उसके रूप और यौवन पर मुग्ध हूँ। जब तक मैं इसका निर्णय
कर लूँगा तब तक मैं इस सम्बन्ध में कुछ न सोचूँगा।

ब्रजकिशोर—अच्छा, अभी आप यह न जान सके ? धन्य है आपकी बु
को।

रामनाथ—मैं यह समझता हूँ कि उससे प्रेम ही करता हूँ, अन्य कोई बा नहीं है, परन्तु जब तक पूरे तौर पर निश्चय न हो जाय तब तक.....।

ब्रजकिशोर—यह निश्चय कब तक हो जायगा ?

रामनाथ—यह भी मैं नहीं कह सकता। मैं चेष्टा तो इस बात की क रहा हूँ कि मेरा ध्यान उसकी ओर से हट जाय, परन्तु.....।

ब्रजकिशोर—सफलता नहीं मिल रही है, क्यों ?

रामनाथ—बात तो यार ऐसी ही है।

ब्रजकिशोर—इसमें आपको सफलता मिलेगी भी नहीं—यह लिख लीजिए।

रामनाथ—तब तो पूरी मुसीबत है।

ब्रजकिशोर—अच्छे फँसे चिड्डा गुलखैरू ! प्रेम भी करने बैठे तो भिख-मङ्गिन से।

रामनाथ—लगे न वही गधेपन की बातें करने, वह भिखमङ्गिन नहीं है। न हृदय की भिखमङ्गिन है, न तो सूरत-शक्ल की। वह तो चीज ही कुछ और है। भगवान् जाने वह भिखारी के यहाँ क्यों उत्पन्न हुई।

ब्रजकिशोर—यह नन्दू क्या जन्म का ही भिखारी है ? मेरा तात्पर्य यह है कि जब यह कन्या उत्पन्न हुई थी, तब वह किस दशा में था ?

रामनाथ—यह तो मैंने उससे पूछा नहीं है।

ब्रजकिशोर—पूरे चोंच ही रहे। उसे नौकर रक्खा, उसकी कन्या के 'आशिकेजार' बने बैठे हो; परन्तु यह न हुआ कि उसका पिछला इतिहास तो पूछ लेते। लड़की की माता भी ठाकुर थी या नहीं ? ऐसा न हो कि किसी नीच जाति के गर्भ से हो, भिखारियों में ऐसा बहुधा होता है। यदि लड़की दोगली हुई तो बड़ी बुरी बात है।

इतना सुनते ही रामनाथ का चेहरा फक् हो गया। कुछ देर मौन रहे, तत्पश्चात् बोले—यह तो यार तुमने बड़ी दूर की बात कही, सच जानना इसका कभी मुझे ध्यान भी नहीं आया।

ब्रजकिशोर—यह जो कहावत है कि Love is blind (प्रेम अन्धा होता है) वह बिलकुल ठीक है। तुम्हें तो बस लड़की से काम है, किसी भी जाति की हो।

रामनाथ—ऐसी बात नहीं है। मैं अभी इतना पतित नहीं हुआ हूँ। य

लड़की वर्ण-संकर हुई तब तो, चाहे उसके प्रेम में प्राण ही क्यों न चले जायँ, मैं उससे कभी बात न करूँगा।

ब्रजकिशोर—ये सब बातें आपको उससे उसे नौकर रखने के पहले ही पूछ लेनी चाहिए थीं।

रामनाथ—क्या बताऊँ, हुई तो बड़ी भारी गलती!

ब्रजकिशोर—तो अब पूछ लो, अभी क्या हुआ है।

रामनाथ—जरूर पूछूँगा।

ब्रजकिशोर—पूछोगे कब! इसी समय बुलाकर पूछो।

रामनाथ—तुम्हारे सामने?

ब्रजकिशोर—क्यों, क्या हर्ज है?

रामनाथ—वह शायद न बतावे।

ब्रजकिशोर—उसकी ऐसी-तैसी, तुम बुलाओ, मैं उससे पूछूँगा।

रामनाथ—तुमसे तो कभी न बतावेगा।

ब्रजकिशोर—अजी आप बुलाइये तो—एक ही प्रश्न में सारा कच्चा चिट्ठा न कह दे तो जो सजा चाहना दे लेना। तुम तो जैसे भोंदू आप हो, वैसे ही बको समझते हो।

यह सुनकर रामनाथ ने नन्दू को पुकारा।

७

बाबू रामनाथ के पुकारते ही नन्दू तुरन्त हाजिर हुआ और बोला—क्या काम है?

बाबू रामनाथ यह सोच ही रहे थे कि इससे क्या कहा जाय—उसी समय ब्रजकिशोर बोल उठे—क्यों भाई, क्या तुम कभी लखनऊ में भी रहे थे?

नन्दू ने ब्रजकिशोर को सिर से पैर तक देखकर कहा—जी नहीं, लखनऊ गया दो बार अवश्य हूँ, वहाँ रहा कभी नहीं। क्यों?

ब्रजकिशोर—कुछ नहीं, मुझे ऐसा भ्रम हुआ कि मैंने तुम्हें कहीं देखा है। जहाँ तक याद पड़ता है, लखनऊ में ही देखा था।

नन्दू—मैंने कहा न मैं दो-एक दफे लखनऊ गया था, उसी समय कहीं देखा होगा।

ब्रजकिशोर—वैसे तुम अधिकतर कहाँ रहे ?

नन्दू—मैं असली रहने वाला तो इलाहाबाद जिले का हूँ।

ब्रजकिशोर—ओ ठीक है, तुम वहाँ क्या करते थे ?

नन्दू के मुख पर एक विषादयुक्त मुस्कराहट दौड़ गई। उसने सिर झुकाकर भूमि पर अपना पैर रगड़ते हुए कहा—क्या बताऊँ क्या करता था। वह समय ही बीत गया—उस समय को याद करने से दुःख होता है।

रामनाथ अभी तक मौन बैठे हुए थे—नन्दू के ये वाक्य सुनकर बोल उठे—नन्दू, तुमने हमें अपने पिछले जीवन का कुछ वृत्तान्त नहीं सुनाया—यह क्या बात है ?

नन्दू ने दीर्घ श्वास लेकर कहा—क्या कीजिएगा सुनके, ऐसी दुखदायी बातों को न सुनना ही अच्छा है।

ब्रजकिशोर—क्या इसीलिए तुमने नहीं बताया ?

नन्दू—हाँ, मैंने तो इसलिए नहीं बताया कि उससे मुझे भी दुःख होता है और सुनने वाले को भी—और बता भी देता; पर बाबूजी ने कभी कोई चर्चा ही न चलाई।

ब्रजकिशोर ने रामनाथ की ओर एक उपालम्भपूर्ण दृष्टि डाली, तश्पत्चात् बोले—अब तुम सुनाओ, हम दोनों सुनने को तैयार हैं। परन्तु हाँ, यदि तुम्हें उससे दुःख होता हो तो जाने दो।

नन्दू—क्या बताऊँ, दुःख होता है या क्या होता है ? मालूम तो ऐसा होता है कि दुःख होता है; परन्तु उसके कहने से, उसकी चर्चा करने से मन को कुछ शान्ति भी मिलती है।

ब्रजकिशोर—तो तुम अवश्य कहो।

नन्दू वहीं सामने घास पर बैठ गया। थोड़ी देर तक वह चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा, तत्पश्चात् बोला—आज से पच्चीस बरस पहले की बात है। मेरे पिता अच्छे जमींदार थे। ईश्वर का दिया सब कुछ था। मैं अपने बाप का एकलौता बेटा था; इसलिए बड़े लाड़-प्यार में पला था। देहात में रहने के कारण पढ़ा-लिखा कुछ नहीं। गाँव की ही पाठशाला में हिन्दी लिखना सीखा

था—बस। खूब दूध-घी खाता था और कसरत करता था—बस, यही मेरा काम था। वह समय कितना अच्छा था, न कोई चिन्ता थी, न कोई दुख था ! उसी गाँव में एक हमारी ही जाति के ठाकुर रहते थे—गरीब थे, खेती-किसानी करके अपनी जीविका चलाते थे। मैं लड़कपन से ही उनके घर आया-जाया करता था। उनकी एक लड़की थी, मैं उसी के साथ खेला करता था। हम दोनों में बड़ा स्नेह हो गया। जब तक हम दोनों छोटे रहे, तब तक तो हमें कुछ न हुआ; परन्तु जवानी में पैर धरते ही हमें यह पता लगा कि हम दोनों एक दूसरे के बिना संसार में नहीं रह सकते। जब यह भाव उत्पन्न हुआ तब हम दोनों को यह चिन्ता हुई कि हम दोनों का विवाह हो जाय। उसी समय मेरे पिता ने मेरे विवाह की बातचीत करनी शुरू की। जब मुझे यह बात मालूम हुई तो मैंने एक दिन बड़ा साहस करके अपने पिता से कहा—आप मेरे विवाह की बातचीत इधर-उधर क्यों करते हैं, जब गाँव ही में अच्छा घर मौजूद है तो इधर-उधर भटकने की क्या जरूरत है ?

मेरे पिता ने मेरी बात सुनकर पूछा—कौन सा घर ?

मैंने उत्तर दिया—शम्भूसिंह का घर।

पिता ने बड़े अभिमान के साथ कहा—शम्भूसिंह ! जिसके घर में भूँजी भाँग नहीं, जो मेरा खेतिहर है, जो मेरे सामने बात करते हुए थर्राता है—उसे मैं अपना समधी बनाऊँ ! यह तो सात जनम नहीं हो सकता।

मैंने कहा—आपको तो उनकी लड़की से मतलब है, उनकी गरीबी-अमीरी से क्या मतलब ? इतना सुनते ही पिताजी आग हो गये, बोले—कल का लौंडा मुझे उपदेश देता है। चल, दूर हो मेरे सामने से। मैं उसकी लड़की से ब्याह करके अपनी नाक कटवाऊँगा ? मखमल में गाढ़े का पैबन्द लगाऊँगा तो लोग क्या कहेंगे। क्या मुझे लड़कियाँ नहीं जुड़तीं जो ऐसा करूँ। न जाने कितने जमींदार मुँह बाये फिरते हैं—जिनके दरवाजे हाथी झूमते हैं, वे तक यह चाहते हैं कि हमारी लड़की से अर्जुनसिंह के लड़के का सम्बन्ध हो जाय तो अच्छा है। उनको छोड़कर मैं इस कङ्गाल के यहाँ नाता जोड़ूँगा, जो बरात को अच्छी तरह पानी भी नहीं पहुँचा सकता।

मैं अपने पिता से बहुत डरता था, परन्तु उस समय मेरे हृदय में न जाने कहाँ का बल आ गया कि मैंने फिर कहा—मैं तो अपने जी से यही चाहता हूँ कि मेरा विवाह उन्हीं की कन्या से हो।

पिता ने कड़ककर कहा—मेरे होते हुए तू होता कौन है ? तेरे जी से मुझे क्या मतलब ? जो मैं करूँगा, वह होगा।

इतना सुनकर फिर मैंने कुछ न कहा—चुपचाप पिता के सामने से चला आया। पिता की ओर से निराश होकर मैंने माता की शरण ली। माता ने भी वही बात कही जो पिताजी ने कही थी, बोलीं—उनके यहाँ ब्याह करने से बड़ी बदनामी होगी।

मैंने कहा—बदनामी किस की ? उनके कुल में कोई दाग तो है नहीं, खरे ठाकुर हैं, कुलीन हैं—बदनामी काहे की ?

माता—लाख खरे हों, गरीब तो हैं।

मैं—गरीब हैं तो इससे क्या हुआ, गरीब होने से कुल में तो दाग नहीं आता ?

इसी प्रकार मुझ से माताजी से बड़ी देर तक बहस होती रही, पर वह बराबर यही कहती रही कि ऐसा नहीं हो सकता। अन्त में मैंने और उपाय न देखकर उनसे कहा—मैं अगर ब्याह करूँगा तो शम्भूसिंह की लड़की से, नहीं तो ब्याह करूँगा ही नहीं।

यह कहकर मैं माताजी के सामने से चला आया। उस समय माता और पिताजी दोनों यह समझे कि यह कोई साधारण-सी बात है। इसलिए उन्होंने मेरा ब्याह दूसरी जगह पक्का कर लिया। जिस दिन मैंने यह सुना उसी दिन से मेरे जीवन का मार्ग एकदम से बदल गया। मेरा खाना-पीना छूट गया, कसरत छूट गई। कहाँ पहले मेरे पास चिन्ता फटकती ही नहीं थी और कहाँ अब रात-दिन चिन्ता में डूबा रहने लगा। मैंने अपने मित्रों द्वारा भी पिताजी पर दबाव डलवाने की चेष्टा की, पर पिताजी कुछ भी न पसीजे। उन्होंने कह दिया—या तो नन्दू मेरे कहने पर चले या फिर मेरे घर से निकल जाय—मैं ऐसे लड़के की सूरत नहीं देखना चाहता।

जब मैंने यह सुना तो मेरी रही-सही आशा भी जाती रही। जब पिताजी अपनी हठ पर इतने अड़े हैं कि मेरा घर से निकल जाना तक सह सकते हैं, तो फिर इससे अधिक और क्या हो सकता है। अब मुझे यह चिन्ता हुई कि मैं क्या करूँ ? मैं घर छोड़ सकता था, पर बिना शम्भूसिंह की कन्या सोना के मेरे लिए सारे संसार में अन्धकार था। अन्त में मैंने एक दिन घात पाकर

सोना से कहा—यहाँ रहते हुए हमारा-तुम्हारा ब्याह नहीं हो सकता। मेरे ब्याह के दिन निकट आ रहे हैं, इसलिए मैं यहाँ अधिक नहीं रह सकता। मैं बहुत जल्दी यहाँ से चला जाऊँगा। तुम्हें छोड़कर मैं किसी दूसरी स्त्री से ब्याह करूँ, यह इस जीवन में कभी न होगा। इसलिए मजबूर होकर, घर छोड़ना ही पड़ेगा। अब तुम बताओ कि तुम क्या करोगी ?

सोना ने मेरी बात सुनकर कहा—मैं क्या बताऊँ, मैं तो तुमसे भी अधिक दूसरे के बस में हूँ।

मैंने कहा—देखो सोना, अगर तुम भी, मेरी तरह किसी दूसरे पुरुष से ब्याह नहीं कर सकतीं; तो मेरे साथ चलो।

यह सुनकर सोना पहले तो बहुत घबराई; पर जब मैंने उससे साफ-साफ कह दिया कि अगर तुम मेरे साथ नहीं चलोगी तो इस जन्म में तुम मेरा मुँह न देख सकोगी, तो वह रोने लगी। रोते-रोते बोली—जो तुम कहो मैं वह करने को तैयार हूँ, पर ऐसी बात मुँह से न निकालो।

मैंने कहा—तो बस, मेरे साथ चलने को तैयार रहो। जिस दिन मैं कहूँ उस दिन मेरे साथ चल देना।

यह कहकर मैं चला आया। मैं अपने भागने की तैयारी में लगा। मेरे पास मेरे निज के पाँच सौ रुपये थे—वह मैंने लिए, दो कम्बल, दो दरी और लोटा-डोर ! बस, इतना सामान लेकर मैं भागने की घात ढूँढ़ने लगा। उसी समय इलाहाबाद में माघ मेला आया। मैंने घर में यह कहा कि माघ-मेला देखने जाता हूँ। यह कहकर मैं घर से चल दिया और गाँव के पास ही एक बाग में छिप रहा। शाम को शौच निवृत होने के बहाने सोना भी मेरे पास आ गई। हम दोनों भाग निकले।

मैं यह अच्छी तरह जानता था कि मेरी तलाश अवश्य होगी; वैसे चाहे न होती क्योंकि मैं घर में कहकर चला था; पर उसी दिन सोना के गायब होने के कारण मेरे माता-पिता समझ जायँगे कि भाग गया। अतएव तलाश अवश्य होगी और सबसे पहले प्रयाग ही में होगी, इसलिए मैं प्रयाग नहीं गया—मैंने स्टेशन पर आकर बनारस का टिकट लिया और सीधा बनारस पहुँचा। वहाँ दो रोज रहकर मैंने अपने और सोना के लिए कुछ कपड़े और ओढ़ने-बिछाने का सामान खरीदा। इसके बाद मैं बनारस जिले के एक गाँव में अपने एक मित्र के यहाँ पहुँचा। वह मेरा बड़ा गहरा मित्र था। मैंने उससे

सारा कच्चा चिट्ठा कह दिया। उसने मुझे अपने यहाँ रखा। उसी के घर में विधि-पूर्वक सोना के साथ अपना विवाह किया। उसी के द्वारा मुझे अपने गाँव की भी खबरें मिलती रहीं। मुझे मालूम हुआ कि मेरे पिता ने जब यह सुना कि शम्भूसिंह की लड़की भी लापता हो गई तो केवल इतना कहा—बस, आज से मेरे सामने कोई नन्दू का नाम न ले—मेरे लिए वह मर गया।

शम्भूसिंह को जब यह मालूम हुआ कि उनकी कन्या मेरे साथ भागी है तो वह चुप होकर बैठ रहे। अतएव अब मैं बिल्कुल निश्चिन्त हो गया।

थोड़े दिन तो मैं अपने उसी मित्र के यहाँ रहा; पर वहाँ हमें इतनी स्वाधीनता न थी जितनी कि हम चाहते थे। अतएव मैं अपने मित्र से विदा हो कर सीधा कलकत्ते पहुँचा। वहाँ कुछ दिन तो बेकार रहा, पास जो रुपये थे वह खर्च करता रहा। परन्तु जब रुपये खतम होने को आये तो यह चिन्ता हुई कि कहीं नौकरी की जाय। दस-पन्द्रह दिनों तक दौड़ने-धूपने पर एक जगह नौकरी लग गई। ३५) रु० महीना तनख्वाह मिलने लगी। उससे हम दोनों अपना गुजारा करते रहे। सोना तो दरिद्रता में पली थी; इसलिए उसे तो कुछ अधिक कष्ट न होता था; पर सरकार, मैं अपनी दशा क्या कहूँ—मैं घर पर बिना आधा पाव घी के टुकड़ा न तोड़ता था, दिन भर में दो-तीन सेर दूध पी डालता था। पर वह अब कहाँ धरा था। रोटी चुपड़ने के लिए भी कठिनता से मयस्सर होता था। दूध के तो कभी दर्शन भी न होते थे; परन्तु यह सब मैं सहता था और तब भी सुखी था—केवल सोना को पाकर। सोना के साथ रहते हुए मुझे कच्चे चने चबाकर रहने में भी सुख था—उसके बिना मुझे दुनियाँ की सारी न्यामतें भी सुखी न कर सकती थीं। इस प्रकार पाँच बरस बीत गये। इसी समय जस्सो पैदा गई। जस्सो के पैदा होने के ठीक पाँच बरस बाद सोना ज्वर से बीमार पड़ी और एक सप्ताह बीमार रह मुझसे सदैव के लिए विदा हो गई। सरकार, उस समय मैं क्या बताऊँ कि मेरी क्या दशा थी। यदि जस्सो न होती, तो इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि सोना और मैं एक ही चिता पर जलाये जाते; पर मेरे जीवन की डोर जस्सो के हाथ में थी, इच्छा रहते हुए भी मैं मर न सका।

इतना कहकर नन्दू चुप हो गया। उसकी आँखों से इस समय अश्रुधारा बह रही थी। ब्रजकिशोर तथा रामनाथ भी बड़े प्रभावित हुए; दोनों चुपचाप नन्दू का मुँह ताक रहे थे

थोड़ी देर में आँसू पौंछ कर नन्दू ने पुनः कहना आरम्भ किया—मैं इतना व्याकुल था कि मैं उस समय उसकी क्रिया भी न कर सका—मुझे अपने तन-बदन का भी होश न था, क्रिया कौन करता। पाँच-छह रोज तक मेरी बुरी दशा रही—मैंने भोजन नहीं किया, केवल थोड़ा-सा दूध पीकर पाँच दिन काटे—वह भी पड़ौसी लोग जबरदस्ती पिला देते थे। जस्सो को भी पाँच रोज तक पड़ोसियों ने ही खिलाया-पिलाया। मैं तो केवल पड़ा रोता रहता था। पाँच दिन बाद मुझे अपनी दशा का पूरा ज्ञान हुआ। उस समय मैंने यह तय किया कि अब कलकत्ता छोड़ देना चाहिए। बिना सोना के कलकत्ता मुझे उजाड़-सा वन दिखाई देने लगा। मैंने आठ रोज बाद कलकत्ता छोड़ दिया। कलकत्ते के चलकर, जस्सो को लिये हुए, मैं सीधा अपने मित्र के यहाँ आया। मित्र के यहाँ आकर मैंने सोना की क्रिया की—जिस घर में उससे विवाह किया था, उसी में उसकी क्रिया की। भाग्य सब कराता है। क्रिया से छुट्टी पाने के पश्चात् मैंने सोचा, अब क्या करना चाहिए। मित्र ने कहा, तुम अब घर चले जाओ; कहो तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ। मूझे पूरी आशा है कि तुम्हारे पिता तुम्हें क्षमा कर देंगे। मैंने यह स्वीकार नहीं किया। गाँव में जाने से सोना से सम्बन्ध रखने वाली सब चीजों को देखकर मुझे सोना की याद आवेगी—नहीं, मैं गाँव नहीं जाना चाहता था। इसके अतिरिक्त, जिसके लिये घर छोड़ा, घर का सुख छोड़ा, माता को छोड़ा, पिता को छोड़ा, उसे खोकर अब गाँव में क्या मुँह लेकर जाऊँ। अपने-पराये सब कहेंगे—बस, चार दिन की चाँदनी हो गई, आखिर फिर घर ही की याद आई।

यही सब बातें सोच-समझ कर मैं गाँव नहीं गया, मेरी हिम्मत नहीं हुई कि मैं गाँव जाऊँ। मेरे मित्र सुदर्शनसिंह ने बहुत कुछ कहा-सुना; पर मैंने एक न मानी। अन्त को वह बेचारा भी चुप हो गया। मैं एक महीने उसके पास रहा। एक महीना बीत जाने पर मैंने एक दिन उससे कहा—भाई, अब तो मैं जाऊँगा।

मित्र—कहाँ जाओगे ?

मैं—क्या बताऊँ, कहाँ जाऊँगा। जिधर भाग्य ले जायगा।

मित्र—तो ऐसे बिना मतलब; बिना कोई ठौर-ठिकाने कहाँ मारे-मारे फिरोगे—यहीं बने रहो न।

मैंने कहा—यहाँ तो मैं रहूँगा नहीं। तुमने मेरे साथ जो किया है, उतने

का बदला मैं इस जन्म में नहीं चुका सकूँगा—अब और बोझ लादने से क्या फ़ायदा।

मित्र—बोझ! किस बात का? ईश्वर की कृपा से मैं तुम्हें खिला-पिला सकता हूँ। जो मैं खाऊँ-पहनूँ, वह तुम भी खाना-पहनना।

मित्र की यह बात सुनकर मेरी आँखों में कृतज्ञता के आँसू भर आये। मैंने कहा—ईश्वर की दया से मैं अभी जवान हूँ; हट्टा-कट्टा हूँ; और अपना पेट पाल सकता हूँ—तब क्यों तुम पर बोझ डालूँ।

सुदर्शनसिंह ने कहा—फिर वही बोझ? कहता हूँ कि बोझ किस बात का है? अगर ऐसी बात है तो मैं तुम्हें यहाँ कुछ भूमि दिलवा दूँ; उसको जुताओ-बुवाओ और आनन्द से रहो। वैसे तो मैं जोर न देता, लड़की छोटी है, इसलिए कहाँ फिरोगे? हाँ, यदि लड़की न होती तो दूसरी बात थी।

मैंने कहा—लड़की न होती तो मैं इस संसार में न रहता—लड़की के कारण मैं जी रहा हूँ।

मित्र—तो जब इतना किया है, तो इतना और करो कि कहीं एक जगह स्थिर होकर रहो, इससे लड़की अच्छी तरह पल जायगी।

मेरे मित्र ने बात ठीक कही थी और यदि मैं उसकी बात मान लेता तो मुझे इतने कष्ट न उठाने पड़ते जो बाद को मैंने उठाये। पर उस समय तो मेरी दशा ही कुछ और थी। किसी एक स्थान पर घर बनाकर रहना मेरे लिए असम्भव था। मेरी यही इच्छा रहती थी कि बराबर घूमता रहूँ—सबेरे कहीं हूँ, तो शाम को कहीं। इसलिए मैंने मित्र की एक भी न मानी और एक दिन अकस्मात् चलने की तैयारी कर दी। सुदर्शनसिंह को बहुत अफसोस हुआ, उसकी आँखों में आँसू भर आये और उसने कहा—जान पड़ता है यह हमारी-तुम्हारी अन्तिम भेंट है। अब इस जीवन में शायद ही मिलना हो?

मैंने पूछा—क्यों, ऐसा क्यों, सोचते हो?

मित्र—तुम्हारी जो दशा है, उससे यह आशा नहीं कि तुम फिर कभी यहाँ या अपनी खोज-खबर देते रहोगे।

उस समय मैं उसकी बात पर हँस पड़ा था और उसे विश्वास दिलाया था कि ऐसा नहीं होगा, पर हुआ वही जो मित्र ने कहा था। मैंने फिर कभी उस मित्र की सूरत नहीं देखी। सात बरस बाद मुझे उसी गाँव के एक

आदमी से, जो मुझे दैवयोग से मिल गया था, पता लगा कि मेरा मित्र प्लेग में मर गया। उसके मरने की खबर पाकर मैं रोया था। ईश्वर ने मुझे संसार में दो पदार्थ दिये थे—एक तो सोना, दूसरा सुदर्शनसिंह ! ऐसी स्त्री भी संसार में बिरलों को ही मिलती है और ऐसा मित्र भी किसी भाग्यवान् को ही प्राप्त होता है। आज दोनों में एक भी नहीं रहा, संसार में मेरे समान कंगाल और कौन है।

चलते समय सुदर्शनसिंह ने कहा था—जस्सो को मेरे पास छोड़ जाओ, यहाँ अच्छी तरह रहेगी।

मैंने कहा—मैं जानता हूँ कि मेरे साथ रहने से उसे सिवाय दुःख भोगने के और कुछ नहीं मिल सकता। तुम्हारे यहाँ मेरे पास से लाख दर्जे सुखी रहेगी, पर मैं छोड़ूँगा नहीं।

मित्र ने पूछा—क्यों ?

मैंने जबाव दिया—यही तो डोर है जिसके सहारे मेरे प्राण बँधे हैं; इसके अलग होते ही मेरे प्राणों का भी कोई ठीक नहीं।

यह सुनकर सुदर्शनसिंह ने फिर कुछ न कहा। चलते समय सुदर्शन ने मुझे पचास रुपये दिये। मैं लेता नहीं था, पर उसने जबरदस्ती दे ही दिये। उन रुपयों ने मुझे कितना सुख दिया, कैसी मुसीबत से बचाया—इसीसे तो कहता हूँ कि ऐसा मित्र बिरलों को ही मिलता है, आज वह भी नहीं है।

इतना कहकर नन्दू पुनः चुप हो गया और आँसू पोंछने लगा।

थोड़ी देर पश्चात् उसने पुनः कहना प्रारम्भ किया—मित्र से विदा होकर मैं जस्सो को लिए हुए इधर-उधर फिरता रहा। न कोई घर था, न कोई ठिकाना था। जहाँ शाम हो गई, वहीं पड़ रहा। कभी धर्मशाला में, कभी नदी तट पर, कभी सड़क के किनारे, कभी पेड़ की छाया में—इसी प्रकार जीवन कटने लगा। इसमें मुझे कुछ शान्ति-सी रहती थी।

जब तक मित्र के दिए हुए पचास रुपये मेरे पास रहे, तब तक तो मैंने उन्हें खर्च किया। एक बार एक पुलिस के आदमी ने मुझ पर चोरी का दोष लगाकर मुझे पकड़ लिया। मैंने दस रुपये देकर उससे अपना पिण्ड छुड़ाया। यदि मित्र के दिये हुए रुपये पास न होते तो न जाने मेरी क्या दशा होती। जब मित्र के दिये हुए रुपए समाप्त हो गए, तब मैंने भीख माँगनी आरम्भ की। मैं चाहता तो नौकरी कर लेता, पर एक स्थान में रहना मेरे लिए

जेलखाने के बराबर था, इसलिए मैंने नौकरी नहीं की और भिक्षा-वृत्ति करने लगा।

इतना कहकर नन्दू चुप हो गया। ब्रजकिशोर ने पूछा—तुम्हारे पिता अभी जीवित हैं।

नन्दू ने कहा—दो बरस हुए तब मुझे खबर मिली थी कि वह अभी जिन्दा हैं—उसके पश्चात् फिर मुझे उनकी कोई खबर नहीं मिली। भगवान् जाने जिन्दा हैं या नहीं।

रामनाथ—तुम अपने पिता के पास नहीं गये, यह तुमने अच्छा नहीं किया।

नन्दू—सरकार, मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। यह मैं जानता हूँ कि यदि मैं उनके पास चला जाता तो वह मेरा अपराध क्षमा करके मुझे फिर उसी तरह समझने लगते, परन्तु फिर भी मेरी जाने की इच्छा नहीं हुई। पिता को मैं मना लेता, पर सोना के पिता को क्या मुँह दिखाता। क्या वह यह भूल जाते कि मैं उनकी कन्या को ले गया और उसे गँवाकर घर लौटा। वह मुझे कभी क्षमा न करते। स्वयं इस बात की ग्लानि भी थी कि मैं सोना को खोकर उसके माता-पिता को क्या मुँह दिखाऊँगा। इन्हीं बातों के कारण मेरा साहस नहीं हुआ कि मैं गाँव जाऊँ।

ब्रजकिशोर—सोना के पिता अभी जीवित हैं ?

नन्दू – हाँ, दो बरस पहिले मुझे खबर मिली थी कि वह जिन्दा हैं।

रामनाथ—यदि अब भी तुम्हारी इच्छा अपने गाँव जाने की हो तो हम तुम्हें भिजवा दें।

नन्दू—अजी सरकार, जब मेरा कहीं बैठने का ठिकाना नहीं था, तब तो मैं गया ही नहीं। अब तो आपकी बदौलत बड़े आनन्द में हूँ—अब भला मैं क्या जा सकता हूँ, हाँ, एक बार माता-पिता के दर्शन करने की इच्छा अवश्य है। देखिए, यदि भाग्य में बदा है तो मिल ही जायेंग, नहीं हरि इच्छा।

रामनाथ—अच्छा हो यदि एक बार तुम अपने घर हो आओ।

नन्दू—अभी तो जाऊँगा नहीं, पहले वहाँ का हाल-चाल मँगा लूँ, तब सोचूँगा कि जाऊँ या नहीं।

ब्रजकिशोर—हाल-चाल कैसे मँगाओगे ?

नन्दू—वहाँ का कोई आदमी गया तो उसी से पूछूँगा ।

ब्रजकिशोर—क्या कोई आदमी तुम्हारे पास आता-जाता है ?

नन्दू—मेरे पास तो आता-जाता नहीं, पर एक दूसरी जगह आता-जाता है—वहाँ से पता मिल जायगा ।

रामनाथ—क्या यहीं किसी के यहाँ ?

नन्दू—नहीं सरकार, लखनऊ में, किसी दिन एक गाड़ी से चला जाऊँगा और सब पता ले आऊँगा ।

रामनाथ—तो कल ही चले जाओ न ।

नन्दू—ऐसी कौन जल्दी है—चला जाऊँगा किसी दिन । अभी तो मेरी गाँव जाने की इच्छा नहीं ।

रामनाथ—खैर, जब तुम्हारा जी चाहे जाना; परन्तु जाना अवश्य चाहिए ।

नन्दू—हाँ जाऊँगा—बिना जाये काम नहीं चलेगा । जस्सो का ब्याह करना है—बिना गाँव जाये ब्याह कैसे होगा ? जाना ही पड़ेगा ।

नन्दू की यह बात सुनकर रामनाथ का कलेजा धक् से हुआ । कुछ क्षणों के लिए उनका मुख पीला पड़ गया । ब्रजकिशोर ने इस बात को भली-भाँति ताड़ लिया । यद्यपि रामनाथ ने बड़ी चतुरता से अपने भाव को छिपाने की चेष्टा की—वह तुरन्त सँभलकर बोले—हाँ, बिना अपने गाँव में गये विवाह कैसे होगा । आखिर विवाह अपने भाई-बन्धु में करोगे—और विवाह में नाते रिश्तेदारों की भी आवश्यकता पड़ेगी ।

नन्दू—यही तो बात है । लड़की का मामला ठहरा—बिना चार नाते रिश्तेदारों के काम नहीं चलता । लड़की का मामला न होता तो मैं कभी न जाता । यदि मेरे यह लड़की न होती अथवा लड़का होता, तो मैं गाँव का कभी नाम भी न लेता; क्योंकि सरकार मेरी आत्मा उस ओर को रुख नहीं करती । मैं नहीं चाहता कि मुझे वहाँ जाना पड़े, पर क्या करूँ, मजबूरी सब कराती है—इस लड़की के लिए यह भी करना पड़ेगा ।

यह कहकर नन्दू उठा और बोला—और कुछ हुक्म है सरकार ?

रामनाथ—नहीं, जाओ ।

नन्दू चला गया । उसके जाने के पश्चात् ब्रजकिशोर बोले—लो उस्ता

माल तो खरा है, पर तुम्हारे नसीब में नहीं है। तुम खत्री, वह ठाकुर—ऐसे में विवाह की बात सोचना तो निरा पागलपन है।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—खत्री भी क्षत्री होते हैं और ठाकुर भी क्षत्री—क्यों होते हैं न !

ब्रजकिशोर—हाँ, होते हैं, पर फिर भी असम्भव है।

रामनाथ—क्यों ?

ब्रजकिशोर—ओफ ओह, तुम तो विवाह करने के लिए कमर बाँधे बैठे हो।

रामनाथ झेंप गए और किञ्चित् मुस्कराते हुए बोले—यह आपने कैसे जाना ?

ब्रजकिशोर—बहस तो आप इसी तरह कर रहे हैं।

रामनाथ—बहस तो केवल बहस की दृष्टि से की जा रही है। मेरी समझ में नहीं आता कि खत्री और क्षत्री में विवाह-सम्बन्ध न हो सकने का क्या कारण है।

ब्रजकिशोर—यह आप किसी बड़े-बूढ़े या अपने पुरोहित से पूछिए। मैं तो केवल चलन की बात कहता हूँ। यदि हो सके तो अत्युत्तम है—हमारे एक दोस्त की मनोकामना पूरी होती है, इससे अधिक और हमें क्या चाहिए। ईश्वर की दया से आपकी प्रेमिका एक मौरूसी प्रेमिका है—प्रेम ही उसका जन्मदाता है उसके रक्त में प्रेम के कीटाणु पहले से ही विद्यमान हैं। अतएव यह प्रेम-पुत्री, जो आपकी प्रेम-पात्री है, वैसी ही प्रेम-परायण सिद्ध होगी, जैसी कि उसकी माता थी—ऐसी पूर्ण आशा है। परन्तु आप भी वैसे ही प्रेमी सिद्ध होंगे, जैसा कि उसका पिता है, इस बात में मुझे अभी सन्देह है।

रामनाथ—तुम बड़े बदमाश आदमी हो—व्यर्थ की बातें करते हो। इन बातों का क्या जिक्र ! जो कोई सुनले तो अपने जी में क्या कहे।

ब्रजकिशोर—सुन कैसे ले, दिल्लगी है ! हम जिस भाषा में वार्तालाप कर रहे हैं, वह भाषा आपके यहाँ समझता ही कौन-कौन है ?

रामनाथ—जी हाँ, आप पश्तो बोल रहे हैं न।

ब्रजकिशोर—जो नहीं समझता, उसके लिए पश्तो ही है। खैर ! अब यह बताइए कि क्या इरादे हैं ?

रामनाथ—काहे के इरादे ?

ब्रजकिशोर—यही अपनी प्रेमिका के सम्बन्ध में।

रामनाथ—अजब गँवार आदमी हो। एक बात क्या बताई, पीछे बला लगा ली।

ब्रजकिशोर–वाकई बला तो बड़ी बेढव पीछे लगाई है—ईश्वर कुशल रक्खे। मेरा कलेजा अभी से धड़क रहा है, और जब से आपके भावी श्वसुर का आदर्श जीवन-वृत्तांत सुना है, तब से तो और भी चिन्ता हो गई। आपकी प्रेमिका जो है—उसके लिए तो कोई बात नहीं, उसका तो यह मौरूसी गुण है; मगर तुम बहुत बुरे फँसे—तुम्हारे यहाँ तो सात पुश्त से कोई प्रेमोपासक उत्पन्न नहीं हुआ।

रामनाथ—यार, अब झगड़ा हो जायगा। तुम अनाप-शनाप बके चले आ रहे हो और मुझे क्रोध आ रहा है। किसी भले आदमी के सम्बन्ध में ऐसी औंधी-सीधी बातें मुँह से निकालना भलमनसाहत के विरुद्ध है।

ब्रजकिशोर—हाँ, इस समय तो क्रोध आता ही होगा; परन्तु इतना याद रखना कि काम ईजानिब ही आवेंगे।

रामनाथ हँस पड़े, बोले—बड़े मसखरे हो।

ब्रजकिशोर—मसखरे आप ही होंगे—बन्दा तो एक सीधा-साधा और निहायत संजीदा आदमी है।

रामनाथ—इसमें क्या सन्देह, आप बड़े ही सीधे आदमी हैं।

ब्रजकिशोर—इतना सीधा हूँ कि जो आप कहें वही करने को तैयार हूँ, हर तरह से आपकी सहायता को उद्यत हूँ। अच्छा तो अब आज्ञा दीजिए, फिर मिलूँगा।

रामनाथ—रहोगे या चले जाओगे?

ब्रजकिशोर—यदि रहा तो एक-दो रोज को रह जाऊँगा, अन्यथा कल सबेरे की गाड़ी से चला जाऊँगा।

रामनाथ—इतनी जल्दी—कुछ दिन तो और रहते।

ब्रजकिशोर—देखिए, जैसा मौका हुआ।

यह कहकर ब्रजकिशोर उठ खड़े हुए। रामनाथ से विदा होकर दो-चार कदम चले, परन्तु फिर अकस्मात लौट पड़े और बड़ी गम्भीरतापूर्वक रामनाथ से बोले—सुनते हो भाई, यदि घर से भागने-वागने की आवश्यकता पड़े तो सीधे मेरे घर चले आना—वहाँ तुम्हें किसी बात का कष्ट न होगा।

इतना सुनकर रामनाथ कुछ अप्रसन्न हो गए और रुखाई के साथ बोले—यार यह अति है, ऐसे मजाक से मुझे नफरत है। तुम प्रतिदिन भद्दे‌पन पर उतरते जाते हो।

ब्रजकिशोर उसी प्रकार गम्भीरतापूर्वक बोले—खैर, मैंने बता दिया है, आगे तुम जानो, तुम्हारा काम।

यह कहकर ब्रजकिशोर मुस्कराते हुए चल दिये।

८

उपर्युक्त घटना हुए दो मास के लगभग हो गये। बाबू रामनाथ ने इन दिनों में इस बात की बहुत चेष्टा की कि वह जस्सो की ओर से उदासीन हो जायँ—उसे भूल जायँ, परन्तु वह चेष्टा में कृतकार्य नहीं हुए। अन्त को उन्होंने सोचा कि नन्दू को अपने यहाँ रखकर उन्होंने बड़ी भूल की। यदि वह उनके यहाँ न रहता, तो वह जस्सो को भूल जाते। परन्तु ऐसी दशा में जब कि वह हर समय उनके घर में ही मौजूद है, उनका उसे भूलना असम्भव था।

एक दिन बाबू रामनाथ ने नन्दू को बुलाकर कहा—नन्दू, तुमने अपने गाँव का हाल मँगाया ?

नन्दू—नहीं सरकार, अभी तो कुछ नहीं मँगाया।

रामनाथ—यह बड़ी बुरी बात है—तुम्हें एक बार तो अवश्य ही अपने गाँव हो आना चाहिए।

नन्दू—क्या करूँ सरकार, जब मैं ऐसा इरादा करता हूँ तभी मेरा कलेजा काँपने लगता है।

रामनाथ यह सब तुम्हारा कायरपन है।

नन्दू—हाँ सरकार, कायरपन तो है ही, पर क्या करूँ ? हिम्मत ही नहीं पड़ती।

रामनाथ—अच्छा, कल सबेरे तुम हमारे कहने से लखनऊ जाओ। फिर अपने पिता की खोज-खबर लेकर शाम को लौट आओ।

नन्दू—ऐसी क्या जल्दी पड़ी है ?

रामनाथ—अच्छा, जल्दी हो चाहे न हो, तुम्हें यह काम करना पड़ेगा।

नन्दू—अच्छी बात है। जैसा सरकार का हुक्म है, वैसा ही होगा। यह कहकर नन्दराम बाबू साहब के सामने से चला गया। रात में नन्दराम ने जस्सो से कहा—जस्सो, कल सबेरे हम जरा लखनऊ जायेंगे।

जस्सो ने आश्चर्य से पूछा—क्यों ?

नन्दराम—एक काम है।

जस्सो—किसका, बाबूजी का ?

नन्दराम—नहीं—हाँ, बाबूजी का है।

जस्सो—तो लौटोगे कब ?

नन्दराम—परसों लौट आयेंगे।

जस्सो—बाबूजी का ऐसा कौन काम है ?

नन्दू कुछ क्षणों तक सोचता रहा, तत्पश्चात् बोला—सच्ची बात तो यह है कि काम बाबूजी का नहीं, मेरा है।

जस्सो—तुम्हारा ?

नन्दराम—हाँ ?

जस्सो—कौन काम ?

नन्दराम—एक आदमी से मिलना है, उससे गाँव का हाल-चाल पूछना है।

जस्सो—किस गाँव का ?

नन्दराम—अपने गाँव का—जहाँ तुम्हारे बाबा और नाना रहते हैं।

जस्सो को यह बात अभी तक नहीं मालूम थी कि उसके बाबा-नाना भी हैं। वह समझती थी कि उसके पिता को छोड़कर संसार में अन्य कोई नहीं। उसने विस्मय से कहा—क्या मेरे नाना-बाबा भी हैं ?

नन्दराम ने विषादयुक्त स्वर से कहा हाँ हैं।

जस्सो—बाबा, तुमने आज के पहले मुझे यह क्यों नहीं बताया ?

नन्दराम—क्या करता बताके ! तू उस समय नासमझ थी।

जस्सो—और न कभी वहाँ चले।

नन्दराम - वहाँ जाने का काम नहीं था।

जस्सो—क्यों ?

नन्दराम—घर में सब से हमारी लड़ाई है।

जस्सो—क्यों, लड़ाई क्यों है ?

नन्दराम—ऐसे ही एक बात पर झगड़ा हो गया था और हम घर से चले आये थे। तब से उधर जाना नहीं हुआ।

जस्सो मौन रहकर कुछ सोचती रही। उसके मुख पर क्षण-क्षण में प्रसन्नता तथा चिन्ता के भाव आ-जा रहे थे।

नन्दराम ने कहा—देखो, यदि ईश्वर ने चाहा तो अब गाँव में ही चलकर रहेंगे।

जस्सो—बाबूजी की नौकरी छोड़ दोगे ?

नन्दराम—हाँ, छोड़नी ही पड़ेगी। पर अभी ठीक नहीं कह सकता कि क्या हो।

जस्सो पुनः चिन्तापूर्ण भाव से मौन हो गई, कुछ क्षणों पश्चात् कहा—वहाँ हमारा घर तो बना ही होगा, क्यों बाबा ?

नन्दराम—बड़ा भारी है, गाय-भैंस हैं, बैल हैं, बहली है, सभी कुछ है।

जस्सो—फिर, बाबा तुमने इतने दिनों भीख क्यों माँगी ?

नन्दराम—क्या करता बेटी, घर में सबसे लड़ाई थी, वहाँ जा नहीं सकता था।

जस्सो—तो क्या अब लड़ाई नहीं रही ?

नन्दराम—लड़ाई तो है; पर शायद मेल हो जाय—ऐसी आशा है। हमारे बाबू मेल करा देंगे। उनकी बातों से ऐसा मालूम होता है।

जस्सो—मेल हो जाय तो अच्छा ही है।

नन्दू ने सिर हिलाते हुए कहा—हाँ, अच्छा तो सब कुछ है, परन्तु....।

जस्सो—परन्तु क्या ?

नन्दू—यही कि मेल होना जरा कठिन है।

जस्सो—क्यों ?

नन्दू—जैसा लड़ाई-झगड़ा हुआ था, उसके देखते कठिन मालूम होता है।

जस्सो—लड़ाई किस बात पर हुई थी ?

'इसको अपने मुँह से सब बातें बताना उचित नहीं। यदि ठीक समझूँगा तो कभी आगे चलकर बता दूँगा' यह सोचकर नन्दराम बोला—कुछ नहीं, ऐसे ही कुछ रुपये-पैसे पर झगड़ा हो गया।

जस्सो—मैंने नाना और बाबा को कभी नहीं देखा। क्यों बाबा, उन्होंने तो मुझे देखा ही होगा ?

नन्दू—नहीं देखा, जब मैं और तेरी माँ वहाँ से लड़कर चले आये थे, तब तू पैदा हुई थी।

जस्सो—तब से क्या तुम वहाँ कभी गये ही नहीं ?

नन्दू—नहीं, कभी नहीं गया।

जस्सो पुनः मौन होकर विचारों में लीन हो गई। कुछ क्षणों पश्चात् बोली—तब तो बाबा मैं जरूर चलूँगी। नाना और बाबा को देखने का मेरा मन बहुत होता है, पर बाबा हम वहाँ रहेंगे नहीं—रहेंगे हम यहीं। तुम बाबूजी की नौकरी न छोड़ना।

नन्दराम—जब उनसे मेल हो गया तो फिर मैं यहाँ रहकर नौकरी कर पाऊँगा ? पिताजी मुझे कभी न रहने देंगे।

जस्सो—बाबा, गाँव में मेरा जी नहीं लगेगा और वहाँ मुझे पढ़ायेगा कौन ?

नन्दराम—पढ़के करोगी क्या ? तुझे कहीं नौकरी करनी है क्या ?

जस्सो—क्या नौकरी करने के लिए ही पढ़ा जाता है। मुझे तो पढ़ना वैसे ही अच्छा लगता है। किताबों में अच्छी-अच्छी बातें रहती हैं—पढ़ने में बड़ा जी लगता है।

नन्दराम—खैर, जब जैसा होगा वैसा देखा जायगा। अब इस समय तो मैं यह पता लगाऊँगा कि गाँव के क्या हाल-चाल हैं—इसलिए कल सबेरे जाऊँगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही नन्दराम लखनऊ के लिए रवाना हो गया। उचित समय पर लखनऊ पहुँचकर वह उस व्यक्ति से मिला। वह व्यक्ति वहीं एक महाजन के यहाँ नौकर था। उसने नन्दराम को देखकर आश्चर्य से पूछा—कहो भइया नन्दू, कहाँ रहे—तुम तो ऐसे गायब हो गए कि बरसों कुछ खोज-खबर ही न दी।

नन्दराम—हाँ भइया, इधर-उधर फिरता रहा।

वह व्यक्ति—भइया तुमने भी अपनी उमर इसी तरह घूम-घूम कर बर्बाद कर दी। राम-राम ! जिसके हजारों की मिलिकियत, घर-द्वार, बाग-बगीचे, गाय-बैल सब मौजूद, वह इस तरह मारा-मारा फिरे !

नन्दराम—हाँ भइया मनोहर, जब भाग्य खोटा होता है तब ऐसा ही होता है।

मनोहर—अब तो बहुत पछताते होगे?

नन्दराम—पछताना काहे का। मैंने जो कुछ किया वह अपनी मर्जी से किया, किसी के कहने-सुनने या दबाव से तो किया नहीं, फिर पछताना किस बात का?

मनोहर—पर तुमने की बड़ी भारी गलती, यह तो तुम्हें मानना पड़ेगा।

नन्दराम—गलती भी नहीं की। मैंने तो अपनी समझ में अच्छा ही किया था, और हुआ भी अच्छा ही, पर भाग्य दगा दे गया। आज सोना जिन्दा होती तो मुझे कोई पछतावा नहीं था। उसके न रहने से यह दुःख हो गया।

मनोहर—आजकल कहीं रहने लगे हो या वैसे ही घूमा-फिरा करते हो।

नन्दराम—नहीं, अब तो कानपुर में एक बाबू के यहाँ नौकरी कर ली है।

मनोहर—नौकरी कर ली? चलो अच्छा किया—मारे-मारे घूमने से यह कहीं अच्छा है।

नन्दराम—नौकरी तो मैं न करता, पर एक बाबू ऐसे मिल गये कि बड़ा स्नेह करने लगे—बेचारों ने हर तरह से मेरी सहायता की, सब तरह से माना; इसलिए मैंने सोचा कि चलो अब एक ठिकाने बैठ जाओ—लड़की का ब्याह भी करना है। बिना एक ठिकाने बैठे ब्याह होना कठिन था। यही सब सोच-समझकर मैंने उनके यहाँ नौकरी कर ली।

मनोहर—बड़ा अच्छा किया भइया, हम तो समझे थे कि तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है—इसी मारे तुम कहीं एक जगह नहीं टिकते।

नन्दराम—भइया, जैसा मुझ पर दुःख पड़ा है, वैसा दुःख भगवान किसी बैरी को भी न दे। मेरा तो सब-कुछ चला गया। घर छूटा, माँ बाप छूटे, खाने-पीने का सुख छूटा, और जिसके लिए वह सब छोड़ा, अन्त में वह भी छोड़ गई। ऐसी दशा में किसका दिमाग ठीक रह सकता है?

मनोहर—हाँ, यह तो तुम्हारा कहना जा है। खैर चलो, जो बदा सो हुआ—अब तुम मजे से बने रहो। अब न कहीं चल देना।

नन्दराम—नहीं, अब कहाँ जाऊँगा—मैं जाना भी चाहूँ, पर बाबू मु
न जाने देंगे।

मनोहर—लड़की तो वहीं होगी ?

नन्दराम—हाँ, वहीं है।

मनोहर—बड़ा अच्छा है—अब उसका ब्याह भी अच्छी तरह ह
जावेगा।

नन्दराम—यही सोचकर तो यह किया। हाँ, गाँव की कुछ खोज-खबर है

मनोहर—हाँ, मैं पिछले महीने गया था—सब खैर-सल्ला है। तुम्हा
पिता अब बुढ़ा गये—बाहर बहुत कम निकलते हैं।

नन्दराम—और माँ, वह भी बुढ़ा गई होंगी ?

मनोहर—तुम्हारे चले आने का दुःख यदि किसी को हुआ तो उन्हीं को
उनकी आँखें बिगड़ गईं—आँखों से कम दिखाई देने लगा है। बरसों रोत
रहीं—आँखें खराब न हों तो क्या हो।

नन्दराम—मेरे कलेजे में यही काँटा खटका करता है। मैंने घर छोड़क
अम्मा को बड़ा दुःख दिया।

यह कहते-कहते नन्दराम की आँखों में आँसू छलछला आये।

मनोहर—अब तो बड़े ठाकुर भी पछताते हैं।

नन्दराम ने उत्सुक होकर पूछा—क्या पछताते हैं ?

मनोहर—एक दिन हमारे बाबू से कहते थे कि नन्दुआ ने काम तो बु
किया था। पर जो घर चला आता तो मैं उसे निकाल थोड़े ही देता, न जा
कहाँ चला गया ? यह कहते समय उनकी आँखों में आँसू भर आये थे।

बापू ने कहा—ठाकुर गलती तुम्हीं ने की। जो उसका कहना मान ले
तो वह काहे को घर छोड़ता। इस पर तुम्हारे बाप बोले—अरे, मैं क्य
जानता था कि उन दोनों का इतना स्नेह है। मैं तो समझता था लड़क
बुद्धि के मारे कहता है। जो मैं ऐसा जानता तो उसी के मन की करता
एक दिन मुझसे पूछने लगे—'कहो, तुम्हें कुछ नन्दुआ का पता मिला ? तु
तो शहर में रहते हो, वहाँ तो सब तरफ का आदमी आता-जाता है
इस पर मैंने कह दिया कि मुझे तो पता नहीं लगा। पहले तो इच्छा हु

कि कह दूँ कि वह जिन्दा है; पर तुमने कसम धर दी थी। इससे मैंने नहीं कहा।

नन्दराम—बड़ा अच्छा किया भइया। उनके लिए तो मैं मर ही गया।

मनोहर—यार, अब तो तुम्हें एक बार जरूर जाना चाहिए। जो तुम पहुँच जाओगे तो दोनों प्राणियों का बुढ़ापा सुधर जायगा।

नन्दराम—मैं पहुँच तो जाऊँ पर वह मुझे अपने यहाँ रक्खेंगे ?

मनोहर—अरे भइया, कैसी बातें करते हो, तुम उनकी आत्मा हो। तुम्हें न रक्खेंगे तो फिर किसे रक्खेंगे ! हाँ, पहले गुस्से के मारे कह दिया था कि जाने दो अच्छा हुआ, पर अब गुस्सा कितने दिन रह सकता है। अब तो जो तुम पहुँच जाओ तो तुम्हें छाती से लगा लें।

नन्दराम—मेरी हिम्मत नहीं पड़ती।

मनोहर—यह तुम्हारी भूल है, वहाँ तुम्हें कोई आधी बात तो कहेगा नहीं—मैं इसका जिम्मा लेता हूँ।

नन्दराम—सोना के बापू का क्या हाल है ?

मनोहर—अच्छे हैं, वह भी अपनी बिटिया को याद करके दुःखी हुआ करते हैं। तुम्हारे बाप से तो उनकी बोल-चाल तभी से बन्द हो गई थी, जब तुम घर से भागे थे। उन्होंने कहा- इन्हीं के मारे हमारी लड़की घर छोड़ गई। जो यह अपने लड़के का ब्याह उसके साथ करना मंजूर कर लेते तो यह दशा क्यों होती ?

नन्दराम—हाँ, यह तो तुम एक दफे बता चुके हो। मेरी तरफ से अब उनके कैसे विचार हैं ?

मनोहर—जब कभी बात उठती है तो केवल इतना कहते हैं—लड़का था तो अच्छा, पर यह काम अच्छा नहीं किया।

नन्दराम—इससे तो मालूम होता है कि वह मुझ से अधिक नाराज नहीं हैं।

मनोहर—अधिक नाराज हो कैसे सकते हैं। उनकी लड़की का भी तो कसूर है, खाली तुम्हारा कसूर थोड़ा ही है। वह तुम्हारे साथ भागने को राजी न होती तो तुम कैसे भगा ले जा सकते थे।

नन्दराम ने दीर्घ निःश्वास छोड़कर कहा—हाँ, इन्साफ की तो यही

बात है। परन्तु सच पूछो तो न मेरा कसूर था, न उनका। सारा कसूर पिताज
का था। उन्होंने ऐसी जिद पकड़ी कि मेरी बात ही नहीं सुनी।

मनोहर—जो सच पूछो तो उनका कोई भी कसूर नहीं। वह भी अपन
मान-मर्यादा की खातिर कहते थे। सब लोग यही चाहते हैं कि अपने लड़के
लड़की का ब्याह अपने बराबर वालों में करें।

नन्दराम—हाँ, यह भी तुम्हारा कहना ठीक है। सारा दोष अपने भाग
का है, किसी का दोष नहीं।

मनोहर—हाँ यह तो ठीक है।

नन्दराम—अच्छा, तो अब चलता हूँ। फिर मिलूँगा।

मनोहर—अब तो तुम वहीं रहोगे न ?

नन्दराम—हाँ, वहीं रहूँगा।

मनोहर—एक दफे गाँव जरूर जाओ ! तुम कहो तो तुम्हारे बाप को
तुम्हारी खबर दे दूँ।

नन्दराम—अभी नहीं, जब मैं कहूँ तब।

मनोहर—तुम बड़े पागल हो। अभी तुम्हारी सनक नहीं गई। अभी हो
आओ, तुम्हारे माँ-बाप बुड्ढे हो गये हैं, अधिक दिन नहीं चलेंगे। ऐसा न हो
कि हाथ मलकर रह जाओ।

नन्दराम—नहीं भइया, एक दफे जरूर जाऊँगा। अच्छा अब की गाँव
जाओ तो इतना कह देना कि नन्दू जिन्दा है और कानपुर में है ! देखो वह
कहते क्या हैं ?

मनोहर—अच्छी बात है, जरूर कहूँगा।

६

शाम के सात बज चुके हैं। चन्द्रपुर के वृद्ध जमींदार अपनी चौपाल में
बैठे हैं। उनके पास गाँव के अनेक छोटे-बड़े आदमी बैठे हुए हैं। इधर-उधर
की बातें हो रही हैं। इसी समय हठात् एक व्यक्ति बोल उठा—चाचा, भइया
नन्दराम तो ऐसे गये कि फिर पता ही न लगा कि कहाँ गये।

वृद्ध जमींदार, नन्दराम के पिता ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ी और बोले—बेटा, नन्दू तो मेरा जनम ही बिगाड़ गया। भगवान् ने एक पुत्र दिया था, वह भी न रहा।

वही व्यक्ति बोला—चाचा, ऐसी बात मुँह से न निकालो। आखिर वह कहीं न कहीं तो होगा ही।

जमींदार—कौन जाने है कि नहीं, हो भी तो हमारे लिए मरे ही के समान है।

एक अन्य व्यक्ति बोला—जीवित होते तो वे चिट्ठी-बिट्ठी तो जरूर ही लिखते।

चौथा—यह कोई बात नहीं—चिट्ठी नहीं लिखी—इससे यह नहीं समझना चाहिए कि हुई नहीं।

पाँचवाँ—हाँ, बात तो ऐसी ही है।

छठा—वह चाहे जो हो, पर जब मैं सोचता हूँ कि ठाकुर के पीछे रियासत कौन सँभालेगा, तब बड़ा दुःख होता है।

जमींदार साहब ने कहा—भइया, ये बातें न करो, मुझे कष्ट होता है। जो भगवान की इच्छा होगी। पूर्व जन्म में जो पाप किये हैं, उनका फल तो भोगना ही पड़ेगा।

इस पर सबने एक स्वर से कहा—हाँ, यह बात तो ठीक है।

उसी समय हमारा पूर्व परिचित मनोहरसिंह वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने पहले वृद्ध जमींदार साहब के पैर छुए। वृद्ध ने उसे आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् पूछा—कब आये?

मनोहर—आज दुपहर में आया था, चाचा!

वृद्ध—सब खैर-सल्ला?

मनोहर—हाँ, सब आनन्द है।

वृद्ध—छुट्टी लाये होगे!

मनोहर—हाँ, एक हफ्ते की छुट्टी लेकर आया हूँ।

वृद्ध—और क्या खबर है, तुम तो शहर में रहते हो, तुम्हें तो इधर-उधर की खबरें मिलती होंगी।

मनोहर—कोई खास खबर नहीं है। हाँ, एक बड़ा शुभ समाचार लाया हूँ।

उपस्थित लोग सब एक स्वर में बोले—वह क्या?

मनोहर—भइया नन्दराम मिले थे।

'हाँ !' कहकर सब लोग चौकन्ने हो गये। वृद्ध ने भी अत्यन्त उत्सुकत
पूर्वक पूछा—नन्दू मिला था, यह सच बात है ?

मनोहर—हाँ चाचा, मिले थे।

पहला व्यक्ति बोला—देखो चाचा, अभी-अभी मैंने क्या कहा था—व
बात निकली न ! मैं तो जानता था कि भइया नन्दराम कहीं-न-कहीं जरू
होंगे। क्यों भइया मनोहर, तुम्हें वह कहाँ मिले थे ?

मनोहर—लखनऊ में ही मिले थे। घूमते-घामते आ निकले। वह
अकस्मात् भेंट हो गई, नहीं तो वह मिलते थोड़ा ही। मैं द्वार पर खड़ा
उसी समय वह उधर से निकले। मैं देखकर चौंक पड़ा। पहले तो मैं समझ
कि कहीं कोई दूसरा आदमी न हो, पर फिर यह सोचकर कि सन्देह दूर क
लेने में क्या हर्ज़ है, मैंने उनका नाम लेकर पुकारा। मेरे पुकारते ही उन्हों
घूमकर देखा। मेरी उनकी आँखें चार हुईं। वह देखते ही मुझे पहचा
गये। पहले तो ऐसा जान पड़ा कि वह वहाँ से निकल जाने की ताक में
परन्तु फिर वह तुरन्त ही लौट पड़े और मेरे पास आये। तब सब हाल मालू
हुआ।

वृद्ध ने कहा—तैंने उसे जाने क्यों दिया ! उसी समय मेरे पास लि
लाता, या मुझे तार देता। हाय, अब वह कहाँ मिलेगा—न जाने कहाँ च
दिया हो।

यह कहकर वृद्ध जमींदार बहुत अधीर होने लगे। यह देखकर मनोह
बोला—चाचा, मैं उनका पता-ठिकाना सब पूछ आया हूँ। आप घबराइये नहीं
वह आजकल कानपुर में हैं।

जमींदार—कानपुर में किस मुहल्ले में, वहाँ क्या करता है !

मनोहर—एक वकील के यहाँ नौकर हैं, बीस रुपया महीन
पाते हैं।

एक व्यक्ति बोल उठा—देखो भगवान की माया ! जिसके यहाँ लाखों क
सम्पत्ति वह बीस रुपये महीने की नौकरी करे।

वृद्ध—बीस रुपये महीने का यहाँ ईंधन जल जाता है।

एक व्यक्ति—और ज्यादा का—क्या हम देखते नहीं हैं।

वृद्ध—और क्या हाल है—तू सब कह जा, मेरे पूछने की राह मत देख।

मनोहर—और हाल यह है कि सोना का देहान्त हो गया। एक लड़की है, तेरह-चौदह बरस की। तकलीफ उन्होंने बड़ी उठाई; यहाँ तक कि कुछ दिनों तो भीख भी माँगी।

वृद्ध—घर छोड़कर क्या कोई आराम भी उठाता है!

एक व्यक्ति—जैसा उन्होंने किया, उसका फल भोग लिया। अब चाचा, उन्हें अपने पास बुला लो।

दूसरा—हाँ, अब यही उचित है। सोना राँड़ भी मर गई, यह अच्छा ही हुआ। अब उन्हें बुलाकर घर में रक्खो। अपना घर-द्वार देखें। भगवान् ने आपकी सुन ली, आपका बुढ़ापा सुधर गया।

एक दूसरा व्यक्ति बोला—बुढ़ापा सुधर गया। और सबसे बड़ी बात यह है कि रियासत का वारिस हो गया। नहीं तो यह सब तितर-बितर हो जाती। अब यह है कि चाचा का नाम तो चलता रहेगा—रियासत बनी रहेगी।

वृद्ध—बेटा मनोहर, कल तुझे मेरे साथ कानपुर चलना पड़ेगा। समझा!

मनोहर—चला चलूँगा। सच पूछो तो मैं इसी मारे छुट्टी लेकर दौड़ा आया, नहीं तो और मुझे कोई काम नहीं था।

वृद्ध—बड़ा अच्छा किया बेटा, भगवान् तुझे सुखी रक्खे। तूने बड़ा काम किया। बुड्ढे आदमी को मरने से बचा लिया—ईश्वर जाने मेरा चोला भीतर-ही-भीतर घुला जा रहा था। उसकी याद भूलती नहीं थी—रात-रात भर पड़ा रोया करता था। उसकी माँ तो रोते-रोते अन्धी हो गयी है।

मनोहर—हाँ चाचा, ममता ऐसी ही चीज है। जवान बेटा और वह भी इकलौता! भगवान यह दुःख किसी को न दिखाये। चाची को भी खबर कर दो—उनके कलेजे में ठण्डक पड़ जायगी।

वृद्ध—अभी खबर करता हूँ—अच्छा, तू ही जाकर कह दे।

मनोहर—अच्छी बात है। तो कल सबेरे चलोगे न?

वृद्ध—अरे सबेरे क्या, रात में कोई गाड़ी जाती हो तो रात ही को चलें—अब तो मुझे एक-एक क्षण पहाड़ हो रहा है।

उपस्थित लोगों में से एक ने कहा—रात को कोई गाड़ी नहीं जाती, सबेरे ही जाती है।

वृद्ध—तो सबेरे तो निश्चय ही चलेंगे।

मनोहर—अच्छी बात है, मैं तैयार रहूँगा।

मनोहर उसी समय जमींदार साहब के अन्त:पुर में पहुँचा और द्वार पर ही से पुकार कर बोला—"चाची, आज हमारा मुँह मीठा कराओ, आज बड़ा शुभ समाचार लाया हूँ।" चाची अर्थात् जमींदार महोदय की पत्नी और नन्दराम की माता सन्ध्याकाल का पूजन कर रही थीं। उनका पूजन यही था कि माला लेकर बैठ जाती थीं और एक घण्टे बराबर राम-राम कहा करती थीं। देहात की अशिक्षित स्त्रियों के लिए इतना ही यथेष्ट था। चाची को सूझ कम पड़ता था, इसलिए बोलीं—कौन है!

मनोहर—चाची मैं हूँ।

मनोहर के कण्ठ-स्वर से उसे पहचान कर चाची ने पूछा—मनोहर है क्या?

मनोहर—हाँ चाची।

चाची—क्या समाचार लाया है?

मनोहर—ऐसा समाचार लाया हूँ कि तुम खुशी के मारे फूलकर कुप्पा हो जाओगी।

चाची ने मुस्कराकर कहा—पागल कहीं का, मैं फूलकर कुप्पा हो जाऊँगी। तू तो ऐसा कहता है कि जाने कुछ नन्दू का समाचार लाया है।

मनोहर—हाँ नन्दू भइया ही का है।

'हैं' कहकर चाची चौंक पड़ीं—माला हाथ से छूटकर गोद में गिर पड़ी, बोलीं—क्या कहा, जल्दी बता, नन्दू आया है क्या?

मनोहर—नहीं।

चाची के शरीर में नन्दराम की बात सुनकर विद्युत धारा-सी दौड़ गई थी और जिसके कारण कुछ क्षणों के लिए उनके शरीर में तेजी आयी थी, वह मनोहर के 'नहीं' कहते ही जाती रही और उनका शरीर पीला पड़ गया। उन्होंने अत्यन्त नैराश्यपूर्ण स्वर में कहा—मनोहर, तू मुझसे हँसी करता है और वह भी मेरे नन्दू का नाम लेकर····?

मनोहर बात काट कर बोला—अरे राम-राम चाची, तुम क्या कहती हो ! मैं तुम से हँसी करूँगा, और वह भी नन्दू भइया के मामले में ? मुझे क्या मालूम नहीं कि नन्दू के पीछे तुमने कितना दुःख उठाया है।

नन्दू का प्रसंग और उस पर मनोहर के इस सहानुभूतिपूर्ण वाक्य ने चाची के नेत्र अश्रुपूर्ण कर दिये। वह कहने लगीं—बेटा, क्या कहूँ, न जाने नन्दू ने किस जन्म का बदला लिया। मैंने कैसे-कैसे दुःख उठाकर उसे पाला-पोसा था। उसका मुँह देखकर जीती थी। उसी ने मेरे साथ यह किया। जब मैं सोचती हूँ कि एक गैर लड़की के पीछे उसने मुझे छोड़ दिया—यह न सोचा कि इसकी क्या दशा होगी, उसे जरा भी मेरा मोह न लगा—तब मेरे कलेजे में हूक उठती है। हाय, ऐसा सब लड़के करें तो माँ बिचारियाँ काहे को दुनियाँ में रहें। खैर—उसने जो कुछ किया, अच्छा किया। जो गया था तो इतना ही करता कि कभी-कभी अपनी खैर-सल्ला लिख दिया करता। मैं उसी से सबर कर लेती। पर वह तो ऐसा गया कि सारा नाता तोड़ गया। यह भी पता नहीं कि दुनियाँ में है भी या नहीं।

मनोहर तुरन्त बोल उठा—हैं चाची ! यही समाचार तो मैं लाया हूँ। नन्दू भइया मुझे मिले थे। वह आजकल कानपुर में हैं।

चाची के शरीर में पुनः 'करेन्ट' दौड़ा। वह उसी प्रकार उत्सुक होकर बोलीं—मिला था ? कहाँ, कानपुर में है ?

मनोहर—हाँ, कानपुर में एक वकील के यहाँ नौकर हैं। कल सबेरे मैं और चाचा उन्हें लिवाने जायेंगे।

चाची—मैं भी चलूँगी, वह तुम्हारे लिवाये नहीं आयेगा।

ठीक इसी समय जमींदार साहब भी आ गये। उन्होंने कहा—आयेगा क्यों नहीं ?

चाची सिर का पल्ला किंचित आगे सरका कर बोली—आयेगा, तुम्हारी ही हठ के मारे उसने घर छोड़ा। तुम्हारे लिवाये भला क्या आवेगा।

मनोहर—नहीं चाची, यह बात नहीं, वह जरूर आ जायेंगे। पिछली बातें छोड़ो। उनका ध्यान किसे है, इतनी मुद्दत गुजर गयी, जमाना पलट गया—वे बातें अब याद किसे हैं।

चाची—लाख जमाना पलट गया हो, पर जहाँ वह इनकी सूरत देखेगा, उसे सारी बातें याद आ जावेंगी।

मनोहर—तुम तो अपनी ही ओटे जाती हो, न कुछ समझती हो न बूझती हो। आवेगा क्यों नहीं ? दिल्लगी है जो न आवेगा।

चाची—इन बातों में तो आ चुका, उसके सामने जो तुम इस तरह बात करोगे तब तो एक जनम क्या सात जनम नहीं आवेगा। मुझे यह डर है कि कहीं वहाँ से भी न चल दे—और जो अबकी हाथ से गया तो फिर इस जन्म में उसके दर्शन नहीं होंगे।

मनोहर—नहीं चाची, अब कहीं न जायेंगे। उन्होंने भी बहुत तकलीफ उठाई है। यह न समझो कि वह कोई बड़े सुख में रहे। माँ-बाप को दुःख देकर भला कोई सुख उठा सकता है।

चाची—अच्छी बात है, जैसा तुम ठीक समझो ! मैंने तो इस मारे कहा था कि इसी बहाने मैं घूम-फिर आती।

मनोहर ने चाचा से कहा—चाचा क्या हरज है, ले चलो। तीर्थस्थान है, हो आयेंगे।

चाचा—ऐसा है तो फिर हो आयेंगे—क्या यही समय है ?

चाची बोलीं—इन्हें तो बस अपने काम से काम है, दूसरा मरे या जिए।

चाचा—किंचित मुस्कराकर बोले—जो यह बात है तो चलो, मरी, क्यों जाती हो।

इतना सुनते ही चाची प्रसन्नता के मारे व्याकुल हो गईं। उन्होंने 'राम-नाम' की प्रतिनिधि माला को लपेट कर रख दिया और तुरन्त खड़ी हो गईं और बोलीं—मैं तो तैयारी करती हूँ—अरे कोई है—इस मनोहर का मुँह मीठा कराओ, बेचारे ने बड़ी शुभ बात सुनाई है।

चाचा—चलो; बस तुम इसकी चिन्ता न करो, इसका मुँह मीठा हो जायगा।

मनोहर—चाचा तुम बीच में भाँजी मत मारो। मैं इस समय बिना कुछ खाए यहाँ से टलूँगा नहीं। मुझे भूख बड़े जोर से लगी है।

चाचा—अच्छा तो खूब खाओ बेटा, तुम्हारे वास्ते खाने की क्या कमी है।

चाची ने पुकारा—महाराजिन खाने को बन गया ? देख रजनियाँ, खाने को बना या नहीं। और देख दुधँहड़ी से मलाई निकाल ला—एक पावभर और

महाराजिन से कह दे कि एक थाली परोस दे—रबड़ी बनी है वह भी रख दे, (मनोहर से) क्यों बेटा कुछ मिठाई भी निकालूँ ? और तो कुछ है नहीं, कल घर में खोया औटा कर पेड़े, बर्फी बना लिए थे।

मनोहर—अरे नहीं चाची, मिठाई की क्या जरूरत है और पाव भर मलाई मत रखना, एक आधापाव मलाई और आधापाव रबड़ी रख देना और एक पूरी—इससे अधिक नहीं खाऊँगा।

चाची—और कचौड़ी नहीं।

मनोहर—कचौड़ी भी बनी हैं ?

चाची—हाँ, तुम्हारे चाचा बिना कचौड़ी के ग्रास नहीं तोड़ते, पूरी चाहे न खायँ, पर कचौड़ी रोज खाते हैं।

मनोहर—अच्छा तो दो कचौड़ी भी रख देना।

थोड़ी देर में मनोहर के लिए भोजन आ गया और उसने भोजन करना आरम्भ किया।

भोजन करने के पश्चात मनोहर ने उन्हें नन्दराम के सम्बन्ध की सब बातें बता दीं और प्रात:काल तैयार होकर आने का वायदा करके वह विदा हुआ। चाची रातभर यात्रा की तैयारी में लगी रहीं। चाची ने अपनी पोती के लिए सन्दूक से कुछ वस्त्र निकाले। नन्दराम के लिए भी उन्होंने कुछ वस्त्र रख लिए। इस कार्य में उन्हें अधिक समय व्यतीत करना पड़ा। अनेक वस्त्रों में से छाँटकर, पसन्द करके, उन्होंने बड़ी देर में वस्त्र निकाले।

सबेरा होते ही सब लोग बहेलियों पर सवार हुए। कुल छह आदमी थे—जमींदार साहब, उनकी पत्नी, मनोहरसिंह, महाराजिन, दो दास, जिनमें एक जाति का नाई और दूसरा बीरा था। नाई, जमींदार साहब की बन्दूक और कारतूसों की पेटी लिए हुए था। इस शान से नन्दराम के पिता ने कानपुर के लिए प्रस्थान किया।

यथासमय सब लोग कानपुर पहुँच गये और एक धर्मशाला में डेरा जमाया। यात्रा के श्रम से कुछ मुक्त हो लेने पर जमींदार साहब ने मनोहर से कहा—हाँ तो अब नन्दू के पास चलना चाहिए।

मनोहर—अभी चलियेगा ! पहले मैं पता लगा लाऊँ, नन्दू से मिल आऊँ तब आप चलियेगा।

जमींदार साहब ने कहा—यह ठीक नहीं, ऐसा न हो कि वह मेरा और अपनी माँ का आना सुनकर फिर कहीं बहक जाय।

मनोहर—अरे नहीं चाचा, आप भी कैसी बातें करते हैं। वह कुछ स्वतन्त्र थोड़े ही हैं जो भाग खड़े होंगे! इससे आप बिल्कुल निश्चित रहिए। वह अब कहीं नहीं जा सकते।

चाचा—कहीं न भी जाय; पर कहीं छिप ही रहे।

मनोहर—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं उन्हें यहीं लिवा लाऊँ तो फिर आपके वहाँ जाने की क्या आवश्यकता है।

चाचा—अच्छी बात है, पर मुझे उसके मालिक वकील साहब से भी मिलना है।

मनोहर—उनसे चाहें जब मिल लीजियेगा।

चाचा—अच्छा, तो तुम अभी जाओ।

मनोहर—मैं जाता हूँ।

मनोहर उसी समय चल दिया। थोड़ी देर वह पूछता-पूछता बाबू रामनाथ के मकान पर पहुँच गया। नन्दू उस समय बराण्डे में बैठा था। मनोहर को देखते ही उठ खड़ा हुआ। दोनों एक-दूसरे से लिपट गये। नन्दराम ने पूछा—कब आये?

मनोहर—आज ही आया।

नन्दराम—सब खैर-सल्ला?

मनोहर—सब आनन्द है।

नन्दराम—इधर कैसे भूल पड़े? तीर्थयात्रा करने आये हो, क्यों?

मनोहर—सच बताऊँ या झूँठ?

नन्दराम—झूँठ का क्या काम, सच बताओ।

मनोहर—तुम्हारे माता और पिता आये हैं उन्हीं के साथ आया हूँ।

नन्दराम—चौंककर बोले—ऐं। वह आये हैं?

मनोहर—हाँ, आये हैं—और केवल तुमसे मिलने के लिए।

नन्दराम—पता तुमने बताया होगा।

मनोहर—हाँ।

नन्दराम—बड़ा गजब किया, मैंने तुमसे इतना कहा था कि जिकर आवे तो कह देना कि कानपुर में है. पता बताने को तो मना नहीं ...

मनोहर—क्या करूँ, मेरा जी न माना।

नन्दराम—यह तुमने बुरा किया।

मनोहर—पागलपन की बातें मत करो, इसमें बुरा क्या किया? तुम्हें मालूम है कि उनकी क्या दशा है?

नन्दराम—वह चाहे कुछ हो; पर खैर जो होना था सो तो हो ही गया।

मनोहर—चाचा तो मेरे साथ अभी आ रहे थे, पर मैंने रोक दिया। मैंने सोचा पहले तुमसे मिल लूँ।

नन्दराम—यह अच्छा किया।

मनोहर—वह तुम्हारे लिए तड़प रहे हैं, उन्हें एक-एक क्षण भारी है। तुम्हें मेरे साथ चलना पड़ेगा।

नन्दराम—अभी?

मनोहर—हाँ, अभी।

नन्दराम—यह तो बुरी सुनाई।

मनोहर—बुरी हो चाहे भली।

नन्दराम—मेरा साहस नहीं पड़ता।

मनोहर—पागल हो।

नन्दराम—उन्हें मुँह कैसे दिखाऊँ? जिसके साथ मैंने ऐसी निष्ठुरता की उनके सामने क्या मुँह लेकर जाऊँ? भाई मुझे क्षमा करो, मैं अपने-आप तो जाऊँगा नहीं।

मनोहर—फिर वही पागलपन?

नन्दराम—खैर, यह मेरा पागलपन ही सही, पर तुम्हें मेरे इस पागलपन की रक्षा करनी पड़ेगी।

मनोहर—तुम्हारे जाने से उनका जी प्रसन्न हो जायगा।

नन्दराम—यह सब कुछ है, पर मैं नहीं जाऊँगा।

मनोहर—तो मैं उन्हें यहीं ले आऊँ?

नन्दराम—यह तुम जानो, मैं कैसे कहूँ! पर तुम जो उनसे जाकर यह कहोगे कि नन्दराम नहीं आता तब तो ठीक न होगा।

मनोहर—फिर क्या कहूँगा?

नन्दराम—कह देना मिला नहीं।

मनोहर—वाह, यह एक ही कही।

नन्दराम—इसमें हर्ज क्या है? इस पर भी आवें तो उन्हें लिवा लाना।

मनोहर—यह बात है? अच्छा ऐसा ही सही।

नन्दराम—तो कब आओगे?

मनोहर—अब आज तो आना होगा नहीं, कल किसी समय आयेंगे।

नन्दराम—किस समय? समय मुझे बता दो जिससे मैं उनसे मिलने के लिए तैयार रहूँ।

मनोहर—तैयारी क्या करोगे; क्या सिंगार करोगे?

नन्दराम—नहीं, जी को कड़ा बनाऊँगा।

मनोहर—फिर वही पागलपन, तुम बड़े ही बोदे आदमी हो।

नन्दराम—पापी सदैव बोदे होते हैं। मैंने जो पाप किया है, वही मुझे बोदा बनाये हुए हैं।

मनोहर—पिछली बातों को याद करने से कोई लाभ नहीं—उन्हें भूल जाओ।

नन्दराम—उन बातों ने हृदय पर ऐसी गहरी छाप छोड़ी है कि उनका भूलना इस जन्म में असम्भव है।

मनोहर—अच्छा तो मैं कल शाम को उन्हें लेकर आऊँगा।

नन्दराम—शाम को पाँच-छह बजे के लगभग?

मनोहर—हाँ, बस इसी समय।

नन्दराम—अच्छी बात है।

मनोहर—पर देखो, कहीं छिप न रहना।

नन्दराम—नहीं, अब क्या छिपूँगा, अब तो भगवान की इच्छा है—उनकी इच्छा कौन टाल सकता है। अब छिपूँगा नहीं, तुम निश्चिन्त रहो।

मनोहर—अच्छी बात है—मैं कल उन्हें लाऊँगा।

यह कहकर मनोहरसिंह विदा हुआ।

मनोहरसिंह ने धर्मशाला लौटकर नन्दराम के पिता से कहा—नन्दराम भाई मिले नहीं।

नन्दराम के पिता ने चौंक कर कहा—क्या कहा ? मिला नहीं, कहाँ चला गया ?

मनोहर—कहीं बाहर नहीं गये, यहीं शहर में किसी काम से गये हुए थे।

जमींदार साहब ने कहा—तो जरा देर वहाँ ठहर जाते।

मनोहर—ठहर कर क्या करता, न जाने वह कितनी देर में आते ?

जमींदार—तो फिर अब कब जाओगे ?

मनोहर—कल चला जाऊँगा।

जमींदार—कल क्यों, शाम को एक चक्कर फिर लगा आना ।

मनोहर—शाम को ?

जमींदार—और क्या ? और काम ही कौनसा है, मुख्य काम तो यही है।

मनोहर—हाँ, यह तो ठीक ही है—अच्छी बात है, शाम को ही चला जाऊँगा।

शाम को मनोहरसिंह जमींदार साहब से यह कहकर चला कि मैं फिर नन्दराम भाई के पास जाता हूँ, पर वह नन्दराम के पास नहीं गया, थोड़ी देर इधर-उधर घूमकर धर्मशाला लौट आया।

जमींदार साहब ने पूछा –क्यों मिला ?

मनोहर – नहीं।

यह सुनकर ज़मींदार साहब अधीर हो गये, बोले—यह बड़ी विचित्र बात है कि दोपहर को भी नहीं मिला और इस समय भी नहीं मिला, मामला क्या है ! कहीं उसे हमारे आने का पता तो नहीं लग गया होगा जो छिप रहा होगा।

मनोहर—अरे नहीं चाचा, ऐसा नहीं हो सकता। आप तो न जाने कहाँ-कहाँ की बातें सोचने लगते हैं।

जमींदार साहब की पत्नी बोल उठी—अरे तो लड़की को ही ले आता, वह तो घर ही में होगी।

मनोहर—अरे चाची बिना जान-पहचान के मेरे पास कैसे आ सकती है।

चाची—जब तू उससे कहता कि तेरे बाबा-दादी आये हैं तो आती कैसे न, वह तो सयानी है, सब बातें समझती होगी।

मनोहर—वह लाख कुछ हो, पर बिना जाने बूझे ऐसें कोई किसी के सा
नहीं चल देता ! जिनके यहाँ हैं, अब्बल तो वही न आने देते ?

जमींदार साहब बोल उठे—खैर कोई हर्ज नहीं, रात भर की बात है
सवेरे मैं स्वयं जाऊँगा।

पत्नी—तुम आप जाओगे तो तभी ठीक भी होगा।

दूसरे दिन सबेरे आठ बजे के लगभग जमींदार साहब तैयार हो गये
मनोहरसिंह ने कहा—शाम को चलियेगा, अभी कौन जल्दी है।

इस पर जमींदार साहब बोले—नहीं, इसी समय चलूँगा। सुबह-शाम कर
दो दिन हो गये।

मनोहर ने देखा कि अब ठाकुर किसी तरह नहीं मानेंगे, अतएव वह चु
हो गया। उसने यह भी सोचा कि चलो अच्छा है, एकदम से जा पहुँचेंगे
नन्दराम समझेगा कि शाम को आवेंगे, उस समय कदाचित् उसका साहस
पड़ता और वह टाल देता—इससे यह अच्छा है कि एकदम से जा पहुँचें
इस प्रकार उसके हृदय में किसी प्रकार का संकोच उत्पन्न होने का अवसर ही न
आयेगा।

जमींदार साहब ने अपना जमींदारी ठाठ बनाया। पाजामा पहना, उस
पर रेशमी कोट, जिसकी ऊपरी जेब से घड़ी की सोने की चेन लटक रही थी
गले में रेशमी दुपट्टा, सिर पर रेशमी ही साफा, पैरों में 'पेटेन्ट लेदर' का श्
(जूता)। उनके साथ उनका नाई बन्दूक लिए और कन्धे पर कारतूस की पेटी
डाले साथ था। नाई ने भी इस समय पर पुर्जे निकाले थे। वह भी सफेद धोती,
सफेद कुर्ता पहने था और गुलाबी साफा बाँधे था, गले में सूबेदारी सुनहली
कण्ठा पड़ा हुआ था, पैरों में देहात का बना हुआ जूता—जो चलते में चर्र-मर्र
बोलता था, पहने था।

इस प्रकार सुसज्जित होकर जमींदार साहब अपने पुत्र नन्दराम से मिलने
के लिए चले।

१०

बाबू रामनाथ अपनी कोठी के बराण्डे में बैठे हुए एक अँग्रेजी समाचार-
पत्र पढ़ रहे थे। उसी समय उन्होंने देखा कि उनकी कोठी के सामने एक

तांगा आकर रुका। उसमें से तीन व्यक्ति उतरे और तीनों इधर-उधर देखते हुए धीरे-धीरे भीतर आये। उनमें से एक शेष दोनों का स्वामी जान पड़ता था। उसके ठाठ-बाट को देखकर बाबू रामनाथ ने समझा कि यह कोई बड़ा आदमी है, परन्तु देहाती है। वे व्यक्ति बाबू रामनाथ को बैठा देख, सीधे उन्हीं के पास चले आये। उन्हें आते देख रामनाथ शिष्टाचार के नाते खड़े हो गये। वृद्ध ने उन्हें सलाम किया। सलाम का उत्तर देकर रामनाथ ने पास पड़ी हुई कुर्सियों की ओर संकेत करके उनसे बैठने के लिए कहा। दो व्यक्ति कुर्सियों पर बैठ गये—एक व्यक्ति, जो बन्दूक लिए हुए था, खड़ा रहा। बाबू रामनाथ ने वृद्ध को सिर से पैर तक देखा। वृद्ध के बाल श्वेत थे। परन्तु चेहरे पर अब भी सुर्खी बनी हुई थी, आँखें बड़ी-बड़ी थीं और उनमें लाल डोरे पड़े हुए थे। मुख पर प्रभुता तथा आत्म-गौरव का तेज था। बाबू रामनाथ पर वृद्ध का रौब सा छा गया। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक पूछा—आप कहाँ से आये हैं।

वृद्ध ने कहा—मैं इलाहाबाद जिले के एक गाँव से आया हूँ।

इलाहाबाद जिले का नाम सुनते ही बाबू रामनाथ कुछ चौंक पड़े। उन्हें कोई बात स्मरण-सी हो आई; अपने भाव को भीतर ही दबाकर बोले—आपका शुभ नाम ?

वृद्ध—मेरा नाम अर्जुनसिंह है।

रामनाथ—अच्छा ! आप नन्दराम के पिता है ?

वृद्ध जमींदार कुछ शर्माकर बोले—जी हाँ।

बाबू रामनाथ वृद्ध के चेहरे-मोहरे तथा ठाट-बाट को देखकर मन-ही-मन बोले—नन्दराम निस्संदेह कुलीन तथा धनाढ्य वंश का है। उसने अपने सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, वह सब ठीक निकला।

रामनाथ को मौन देखकर वृद्ध ने कहा—मुझे पता लगा है कि नन्दराम आपके यहाँ नौकर है, इसलिए मैं उसे लेने आया हूँ। आज से लगभग २४ वर्ष पहले नन्दराम घर में लड़कर गाँव से भाग आया था, तब से अभी तक मुझे उसकी सूरत देखने को नहीं मिली।

बाबू रामनाथ ने कहा—हाँ, मुझे सब बातें मालूम हैं, नन्दू मुझसे सारा हाल बता चुका है।

वृद्ध—जब आप जानते ही हैं तब विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। नन्दू कहाँ है ?

रामनाथ—मैंने एक काम से भेजा है; अभी आता होगा। आपको औ
उसकी माता को बड़ा कष्ट होगा।

वृद्ध ने एक दीर्घ श्वास लेकर कहा—पुत्र के चले जाने से किसी को सुख
कब मिलता है!

रामनाथ—हाँ, यह सब यथार्थ है।

उसी समय हठात् रामनाथ के पिता भी वहाँ आ गये। उन्हें देखते ही
रामनाथ उठकर खड़े हो गये। अर्जुनसिंह भी रामनाथ को खड़े देख, खड़े हो
गये और उन्होंने रामनाथ के पिता को प्रणाम किया।

पिता के कुछ बोलने के पूर्व ही रामनाथ ने कहा—पिताजी, ये ठाकुर
अर्जुनसिंह, नन्दराम के पिता हैं।

रामनाथ के पिता श्यामनाथ ने ठाकुर साहब और उनके साथियों को एक
बार सिर से पैर तक देखा, तत्पश्चात् कुछ मुस्कराकर बोले—अच्छा, आप
कब तशरीफ लाये?

ठाकुर साहब ने कहा—मुझे यहाँ आये दो दिन हुए, पर आपकी ड्योढ़ी
पर आज ही हाजिरी दी है।

बाबू श्यामनाथ एक खाली कुर्सी पर बैठ गये, उनके बैठते ही सब लोग
बैठ गये। बाबू श्यामनाथ ने पूछा—मालूम होता है आप जमींदार हैं।

ठाकुर साहब—हाँ सरकार, मैं एक छोटा जमींदार हूँ।

श्यामनाथ—आप छोटे जमींदार तो नहीं मालूम होते।

ठाकुर साहब—और क्या छोटे तो हई हैं, साल में कुल छह हजार माल-
गुजारी देते हैं।

बाबू श्यामनाथ मुस्कराकर बोले—छह हजार मालगुजारी देने वाला
छोटा जमींदार तो नहीं कहलाता।

ठाकुर साहब—अरे साहब छोटे तो हई हैं। आप लोगों की बराबरी हम
लोग कहाँ कर सकते हैं।

श्यामनाथ—बराबरी का तो कोई सवाल नहीं—मुझे ताज्जुब है कि
आपका लड़का यहाँ बीस रुपये महीने की नौकरी करता है। मालूम होता है
घर से लड़कर चला आया है।

ठाकुर साहब—जी हाँ, आज नहीं, उसे घर छोड़े पच्चीस बरस हो गये।

श्यामनाथ आश्चर्य से नेत्र विस्फारित करके बोले—पच्चीस बरस यह रहा कहाँ ? हमारे यहाँ तो सिर्फ सालभर से है।

ठाकुर साहब—भगवान् जाने कहाँ रहा, मिले तो हाल मालूम हो। बाबू श्यामनाथ ने रामनाथ की ओर देखकर पूछा—नन्दराम कहाँ है ?

रामनाथ—मैंने एक काम से भेजा है, अभी आता होगा।

वकील साहब बोले—उसने यहाँ तो किसी से कोई हाल बताया नहीं।

रामनाथ बोल उठे—मुझसे बताया था !

वकील साहब—लेकिन तुमने मुझसे कोई जिक्र नहीं किया।

रामनाथ ने तुरन्त कहा—उस समय उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ था।

वकील साहब—फिर भी तुम्हें जिक्र तो कर देना था। पहले मालूम होता तो उसे घर भेज दिया जाता।

रामनाथ—घर जाने को राजी नहीं होता था।

वकील साहब—राजी कैसे न होता, खैर ! (ठाकुर साहब से) अब आप उसे घर ले जायँ।

ठाकुर साहब—इसलिए तो मैं आया हूँ।

वकील साहब—बड़ी अच्छी बात है। मुआफ कीजिएगा। मुझे यह बात जरा भी मालूम न थी; वरना अब तक मैंने उसे आपके यहाँ भेज दिया होता।

ठाकुर साहब—अब भी आप ही की बदौलत मुझे यहाँ मिला है, आपके यहाँ न होता तो मिलना कठिन था। हाँ, लड़की कहाँ है, उसे जरा बुलवा दीजिए।

वकील साहब ने रामनाथ की ओर देखकर कहा—जस्सो को बुलवा दो।

रामनाथ इधर-उधर देखकर स्वयं ही यह कहते हुए उठे—मैं ही बुलाये लाता हूँ।

ठाकुर साहब—आप क्यों कष्ट उठाइयेगा ?

वकील साहब—इसमें कष्ट की कौन बात है, आपने तो शायद उसे अभी देखा भी न होगा ?

ठाकुर साहब—जी नहीं।

रामनाथ अन्तःपुर में पहुँचे और उन्होंने पुकारा—चम्पा !

चम्पा—भइया।

रामनाथ—जस्सो कहाँ है ?

चम्पा—'क्यों कुछ काम है क्या ?' यह कहते हुए रामनाथ के सम्मुख आई।

रामनाथ—उससे कह दो उसके बाबा आये हैं और उसे बुला रहे हैं।

चम्पा—कौन बाबा, जस्सो का बाप ?

रामनाथ—नहीं, उसके बाप का बाप।

चम्पा विस्मित होकर बोली—अच्छा ! वह तो अपने बाप को ही बाबा कहती है, अब असली बाबा को क्या कहेगी—पड़-बाबा !

रामनाथ मुस्कराकर बोले—तुझे इससे क्या मतलब, वह चाहे जो कहे।

चम्पा—मुझे बतलाना जो पड़ेगा, अरे जस्सो ! ओ जस्सो !

जस्सो एक कमरे से निकल आई। बाहर आकर उसकी आँखें बाबू रामनाथ से चार हुईं। उसने लजाकर अपना मुख नीचा कर लिया और अपनी धोती से शरीर छिपाती हुई चम्पा तथा रामनाथ के सम्मुख आके खड़ी हो गई। इस समय जस्सो पर पूर्ण यौवन की छटा विद्यमान थी। अच्छा खाना, अच्छा कपड़ा मिलने तथा निश्चिन्तता का जीवन व्यतीत करने से उसका शरीर भी पुष्ट हो चला था, शरीर का वर्ण भी पहले की अपेक्षा अधिक गोरा हो गया था, मुख पर कान्ति विराजमान थी, गालों पर हल्की सुर्खी आ चली थी।

चम्पा ने उससे कहा—तेरा बाबा आया है, वह तुझे बुला रहा है।

जस्सो बोली—मेरा बाबा आया है, मेरा बाबा गया कहाँ था ?

चम्पा अट्टहास करके रामनाथ से बोली—देखा भइया ! मैंने जो कहा था, वही बात हुई न ! (जस्सो से) अरी, तेरा बाप नहीं; तेरा बाबा, बाप का बाप ! अब समझी, तू बाप को ही बाबा कहती है, अब असली बाबा को क्या कहेगी ?

जस्सो के मुख पर प्रसन्नता का भाव उदय हो आया। उसने कहा—मेरे बाबा आये हैं ?

रामनाथ ने कहा—हाँ ! बाहर बैठे हैं, तुम्हें देखने को बुला रहे हैं। आओ।

यह कहकर रामनाथ बाहर की ओर चल दिये। उनके पीछे-पीछे जस्सो भी चली।

रामनाथ बाहर आकर कुर्सी पर बैठ गये और जस्सो द्वार पर ठिठुक कर खड़ी हो गई और ठाकुर साहब की ओर विस्मय, आदर, स्नेह तथा उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि से देखने लगी।

ठाकुर साहब उसको देखकर खड़े हो गये और बोले—बेटी, आओ, अपने बाबा के पास आओ।

जस्सो धीरे-धीरे कुछ सकुचाती हुई ठाकुर साहब के पास आ गई। ठाकुर साहब ने आगे बढ़कर उसे छाती से लगा लिया।

रामनाथ यह दृश्य देखकर मन-ही-मन कुछ अप्रसन्न हुए। उन्होंने मन में सोचा—देहाती आदमी बिल्कुल गँवार होते हैं, तमीज इन्हें छू नहीं जाती, जवान लड़की को छाती से लगाता है, बदतमीज कहीं का।

ठाकुर साहब की आँखों से अश्रुपात होने लगा। वकील साहब भी यह दृश्य देखकर द्रवित हो उठे। उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये और उन्होंने दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

ठाकुर साहब पाँच मिनट तक जस्सो को हृदय से लगाये रहे। इसके पश्चात् उन्होंने उसे अलग करके, उसके दोनों कन्धे पकड़े हुए, उसे खूब ध्यान से देखा। जस्सो का नख-शिख देखकर उनके मुख पर केवल सन्तोष ही नहीं, वरन् गर्व का भाव उत्पन्न हुआ। जस्सो के नेत्र भी अश्रुपूर्ण थे। और वह कनखियों से बाबा की ओर देख रही थी।

उसी समय नन्दराम भी आ गया और मनोहरसिंह तथा अपने पिता को वहाँ उपस्थित देखकर उसका चेहरा कुछ क्षणों के लिए फक हो गया। ठाकुर साहब ने नन्दराम को देखकर अपनी दोनों बाँहें फैला दीं और गद्गद् कण्ठ से कहा—'बेटा!' उनके मुख से अधिक कुछ न निकला—उनका कण्ठ रुँध गया। नन्दराम दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़ा और बच्चों की भाँति चीत्कार कर रोने लगा।

इस करुण दृश्य का कैसा आतंक छा गया कि सब लोग मूर्तिवत् रह गये। वकील साहब रूमाल आँखों पर रखकर, गर्दन झुकाकर, जहाँ-के-तहाँ बैठे रह गये; बाबू रामनाथ भी गर्दन झुकाये और दाहिने हाथ की हथेली पर गाल धरे मूर्तिवत् बैठे रहे। मनोहरसिंह की आँखों से अश्रु बह रहे थे और वह

दूसरी ओर मुँह किये था। ठाकुर साहब का बन्दूकधारी नौकर भी हक्का-बक्का-सा होकर दृश्य को देख रहा था।

ठाकुर साहब ने नन्दराम को उठाने की चेष्टा की; पर उसने पैर न छोड़े। ठाकुर साहब ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—"बेटा, मैंने तुम्हारा कसूर माफ किया और तुम भी, मुझसे जो भूल-चूक हुई हो, माफ करो। हम दोनों को ही घोर कष्ट मिला। तुम इधर-उधर मारे फिरे, मैं घर पड़ा तड़पता रहा। खैर, अब पिछली बातें भूल जाओ। अब गाँव चलो और अपना घर-द्वार संभालो। मुझे सुबह-शाम दो रोटी से काम है और मुझे कुछ नहीं चाहिए।

कुछ देर पश्चात् जब सब लोग सावधान हुए, तो ठाकुर साहब ने बाबू श्यामनाथ से कहा—अब आप इसे छुट्टी दीजिये तो मैं इसे घर ले जाऊँ!

वकील साहब बोले—बेशक, बेशक! मुझे बड़ा अफसोस है कि यह इस हालत में हमारे यहाँ रहा, अगर मुझे पहले से मालूम हो जाता तो....!

ठाकुर साहब—उस बात को जाने दीजिए। इसमें आपका क्या अपराध! एक तरह से आपने बड़ी दया की कि बिना जाने-बूझे रख लिया, आजकल लोग नौकर समझ-बूझ कर रखते हैं।

नन्दराम खड़ा था; वकील साहब ने एक कुर्सी की ओर इशारा करके कहा—नन्दराम बैठ जाओ, खड़े क्यों हो!

नन्दराम हाथ जोड़कर बोला—आपके सामने में कुर्सी पर क्या बैठूँ।

वकील साहब—अब मैं तुम्हें अपना नौकर नहीं समझता, तुम निसंकोच बैठो।

रामनाथ ने कहा—बैठ जाओ जी, तुम भी तो हमारी ही जाति के हो। कुलीन हो, शरीफ हो, हमसे किसी बात में कम थोड़े ही हो। वह तो समय की बात थी कि तुम्हें हमारी नौकरीं करनी पड़ी।

ठाकुर साहब—वह सब-कुछ सही, पर वैसे भी यह आपका गुलाम है। आप लोगों ने इसकी सहायता की, उस अहसान को यह भूल थोड़े ही सकता है।

नन्दराम बोल उठा—पिताजी, जैसी इन लोगों ने मेरे साथ नेकी की है, वैसी इस जमाने में कोई नहीं कर सकता। मैं इनके अहसान को भूल नहीं

सकता। मेरी जान भी इनके काम आये तो मैं कभी इनकार नहीं करूँगा। सच पूछिए तो इन्हीं की बदौलत आपने मुझे और मैंने आपको पाया है।

ठाकुर साहब—ठीक है, भले आदमी का यही काम है कि जो अपने साथ नेकी करे उसे कभी न भूले। अच्छा तो वकील साहब, अब मुझे आज्ञा दीजिए।

वकील साहब—अजी बैठिए, (रामनाथ से) अरे भाई, ठाकुर साहब के लिए कुछ जलपान तो मँगाओ।

ठाकुर साहब—अब आप कष्ट न कीजिए।

वकील साहब—अजी वाह! कष्ट की कौन बात है।

रामनाथ ने दूसरे नौकर को बुलवाकर जलपान के लिए कुछ लाने को कहा।

ठाकुर साहब ने जस्सो से कहा—जाओ बिटिया, तैयार हो जाओ, तुम्हें अभी मेरे साथ चलना होगा, तुम्हारी दादी तुम्हारे लिए तड़प रही है।

जस्सो प्रसन्नतापूर्वक अन्तःपुर की ओर चली गई।

थोड़ी देर बाद जलपान की सामग्री आई। ठाकुर साहब और उनके आदमियों ने जलपान किया, पान खाये। तत्पश्चात् ठाकुर साहब ने कहा—आज्ञा दीजिए।

रामनाथ बोल उठे—आप ठहरे कहाँ हैं?

ठाकुर साहब—एक धर्मशाला में ठहरा हूँ।

रामनाथ—तो वहाँ कुछ कष्ट हो, तो यहाँ चले आइये। यहाँ सब तरह का आराम होगा।

यह कहकर रामनाथ ने अपने पिता की ओर देखा। वह भी बोल उठे—हाँ-हाँ, यहाँ चले आइये। धर्मशाला में भला क्या आराम मिल सकता है?

ठाकुर साहब—नहीं, वहाँ कोई कष्ट नहीं है और दो रोज की तो बात ही है। परसों-वरसों चले ही जायेंगे। एक दो रोज के लिए क्या आराम और क्या तकलीफ।

रामनाथ—इतनी जल्दी चले जाइयेगा? कानपुर की सैर तो कर लीजिए।

ठाकुर साहब—मैं पहले दो दफे हो गया हूँ।

वकील साहब—खैर, यों तो सब लोग अपने जीवन में यहाँ एक-न-एक

बार अवश्य ही देख आते हैं, तीर्थ-स्थान है। यहाँ की चीजें तो आपने देखी न होंगी ?

ठाकुर साहब—कौन-सी चीजें ?

वकील साहब—यहाँ दो-चार स्थान देखने लायक हैं।

ठाकुर साहब—वह सब एक दफे देख चुका हूँ, फिर देख लूँगा।

रामनाथ—तो फिर आप यहाँ आ जाइये। यहाँ आपकी दया से सवारी इत्यादि सब मौजूद हैं। आपको किसी बात का कष्ट न होगा, विश्वास रखिये।

ठाकुर साहब—आपके यहा कष्ट का क्या काम, आप राजा-महाराजा-आपको कमी किस बात की है ?

यह कहकर ठाकुर साहब ने नन्दराम की ओर देखा। नन्दराम उनका तात्पर्य समझकर बोला—पिताजी यहीं आ जाइए, ठीक रहेगा। मेरा घर तो यही है।

ठाकुर साहब—अच्छी बात है।

रामनाथ—नन्दराम तुम साथ चले जाओ। अपनी माताजी से भी मिल आओ और सबको ले आओ।

नन्दराम—अच्छी बात है। चलिए पिताजी।

ठाकुर साहब—जस्सो को तो बुला लो।

रामनाथ—अब उसे साथ ले जाकर क्या कीजिए ? आप यहाँ तो आ ही रहे हैं।

यह सुनकर ठाकुर साहब उठ खड़े हुए और नन्दराम को साथ लेकर चल दिये।

नन्दराम धर्मशाला पहुँचकर अपनी माता से मिला। माता २५ वर्ष से बिछड़े हुए पुत्र को छाती से लगाकर बड़ी देर तक रोया करी, नन्दराम भी खूब रोया। एक बार पुनः करुणा का समुद्र उमड़ पड़ा।

इसके पश्चात् सब ने एक साथ बैठकर भोजन किया और इसके बाद अपना असबाब गाड़ी पर लादकर सब लोग वकील साहब की कोठी की ओर चले।

११

ठाकुर साहब तीन दिन तक वकील साहब के यहाँ रहे। रामनाथ ने उनकी बड़ी खातिर की, उन्हें भली-भाँति कानपुर की सैर कराई। तीसरे दिन ठाकुर साहब ने वकील साहब से कहा—अब मुझे आज्ञा दीजिए तो चलूँ—गाँव छोड़े कई दिन हो गये, घर-द्वार अकेला है।

वकील साहब ने कहा—मैं कैसे कहूँ। जैसी आपकी इच्छा, परन्तु आज क्या जाइयेगा—कल का दिन अच्छा है।

रामनाथ भी बोल उठे—हाँ, ठाकुर साहब, कल जाइयेगा—आज और ठहर जाइये।

ठाकुर साहब—वह तो एक ही बात है, जैसे आज तैसे कल।

रामनाथ—जब एक ही बात है तो कल ही चले जाइयेगा।

ठाकुर साहब—अच्छी बात है, जैसा आपका हुक्म होगा वैसा करना पड़ेगा, कल ही सही।

ठाकुर साहब के प्रस्थान का दिन नियत हो जाने पर बाबू रामनाथ को बड़ी बेचैनी हुई—बेचैनी केवल यह सोचकर हुई कि अब जस्सो चली जायगी, सदैव के लिए चली जायगी। कदाचित् अब इस जीवन में उससे फिर भेंट न हो! बाबू रामनाथ का चित्त बड़ा दुखी हो गया। उस दिन उन्होंने भोजन नहीं किया। पूछने पर 'इच्छा नहीं है' यह बहाना कर दिया। वह दिन भर एकान्त में पड़े आकाश-पाताल की सोचते रहे। वह अपने हृदय से बातें करने लगे—'तुमने ही तो यह दिन उपस्थित किया; तुम्हारी हार्दिक इच्छा यह थी कि जस्सो किसी तरह आँखों के सामने से टल जाय। सो, अब वही हो रहा है। हाँ ठीक, यह मेरी इच्छा थी; पर उस समय यह नहीं मालूम था कि उसके टलने का अवसर आने पर हृदय इतना विचलित होगा, इतना अधीर होगा। उफ! मालूम होता है, जैसे कोई कलेजा निकाले लिए जा रहा है। मुझे क्या हो गया है, मैं उसके लिए क्यों इतना अधीर हूँ! वह मेरी कौन है? मेरा उसका क्या नाता? वह अपने पिता, अपने बाबा-दादी के साथ अपने घर जा रही है—इसमें मेरे बाप का क्या जोर है? नहीं, ऐसा न होना चाहिए! इससे तो वह अनाथ ही होती तो अच्छा था। उफ! यह कैसा स्वार्थपूर्ण विचार है। यह नीचता है। केवल अपने स्वार्थ के लिए किसी को अनाथ

बनाना पाशविकता है। हाँ, हाँ, यह सब ठीक है; पर आह! इस हृदय को क्या कहूँ—यह दुष्ट मानता ही नहीं। नहीं मानता, तो इस हृदय को चीर कर फेंक दो, उसे शरीर से अलग कर दो। ऐसे हृदय का पास रहना अच्छा नहीं। पता नहीं, उसकी क्या दशा होगी। प्रकट में तो वह जाने के लिए उत्सुक दिखाई पड़ती है। उत्सुक क्यों न होगी! अपने घर जा रही है, अपने बाबा-दादी के पास जा रही है, जहाँ उसे सब प्रकार का सुख मिलेगा। यहाँ क्या धरा है और यहाँ उसका कौन बैठा है जो यहाँ रहना पसन्द करेगी? जाने दो, आरम्भ में कुछ दिन हृदय मचलेगा, परन्तु फिर क्रमशः बदल जायगा। परन्तु एक बार उससे मिल तो लेना चाहिए। देखें उसका इस सम्बन्ध में क्या विचार है?'

रामनाथ इसी प्रकार पड़े अनेक प्रकार की बातें सोचते रहे। अन्त में उन्होंने तय किया कि चाहे जो हो, परन्तु बिना एक बार उससे मिले, उससे दो बातें किये, जाने नहीं दूँगा।

रामनाथ इसी प्रकार की बातें सोचते रहे। अन्त में उन्होंने अपनी भगिनी चम्पा को बुलाया और उससे बोले—चम्पा, जस्सो से कह देना तैयारी कर ले, कल उसे जाना होगा।

चम्पा बोली—भइया, जस्सो का जाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

रामनाथ की जिह्वा पर ये शब्द आये—'चम्पा, तुम मेरे हृदय की बात कह रही हो।' परन्तु इन शब्दों को उच्चारण करने के पूर्व ही उन्होंने दाँतों तले जीभ दबा ली और विषादयुक्त मृदु-हास्य के साथ बोले—अवश्य अच्छा न लगता होगा, पर किया क्या जाय? जहाँ उसका पिता जायगा, वहीं उसे भी जाना पड़ेगा।

चम्पा—हाँ, यह तो ठीक ही है, पर मेरा जी उसे भेजने को नहीं चाहता। इतने दिनों में मुझे उससे बड़ा स्नेह हो गया है। उसके जाने से मेरा जी बड़ा दुखी होगा।

चम्पा पुनः बोली—कोई ऐसी युक्ति नहीं है, जिससे वह यहीं बनी रहे।

रामनाथ उदास भाव से बोले—ऐसा कैसे हो सकता है? उसका पिता, उसका बाबा भला उसे यहाँ क्यों छोड़ने लगे?

चम्पा—उसकी दादी तो उस पर बलि-बलि जाती है—और चाहे कोई

छोड़ने पर राजी हो जाय, पर वह चुड़ैल कभी राजी न होगी, वह उसे गठरी में बाँध ले जायगी।

रामनाथ—क्यों न ले जाय, उसकी पोती जो है। तुझी को कोई अपने पास रखना चाहे तो तू रह जायगी, और हम लोग तुझे वहाँ छोड़ देंगे—ऐसा भला कभी हो सकता है!

चम्पा—इससे तो वह यहाँ न आती तो अच्छा था।

रामनाथ के हृदय ने भी भीतर-ही-भीतर चम्पा की बात का समर्थन किया—हाँ, यदि आती ही न तो बहुत अच्छा था।

चम्पा—कब जायगी?

रामनाथ—कल किसी गाड़ी से जायगी।

चम्पा—मैंने परिश्रम करके उसे पढ़ाया-लिखाया। अब वह हिन्दी अच्छी तरह पढ़-लिख सकती है।

रामनाथ—खैर, यह तो उपकार का काम है, उसका फल तुझे ईश्वर देगा।

चम्पा—इसका फल मैं यह चाहती हूँ कि वह मेरे पास ही रहे। सच्ची भइया, वह भी मुझे बहुत चाहती है। जब से उसे यह मालूम हुआ है कि वह यहाँ से चली जायगी, तब से वह बड़ी उदास है।

रामनाथ ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—क्या कहा—उदास है?

चम्पा—हाँ, बेचारी बड़ी उदास है।

रामनाथ—यह तो आश्चर्य की बात है, उसे तो प्रसन्न होना चाहिए।

चम्पा—वहाँ जाकर भले ही प्रसन्न हो जाय; पर अभी तो उसे भी बु[illegible] लग रहा है। उसे यहाँ सबसे मुहब्बत हो गई है।

रामनाथ भी एक दीर्घ निश्वास लेकर बोले—यह तो सब-कुछ ठीक है अब तो उसे जाना ही पड़ेगा, उस बेचारी का क्या बस है—वह तो [illegible] है न।

चम्पा—अभी तक कोई नहीं आया था। जब वह यहाँ आकर हिल-मिल गई, तब बाबा-दादी भी आ मरे।

इस बात पर रामनाथ हँस पड़े—तू उन्हें कोस रही है?

चम्पा—कोसूँ न तो क्या करूँ! मुझे बड़ा बुरा लग रहा है

रामनाथ—अच्छा एक काम कर; जरा उसे मेरे पास भेज तो दे, मैं उसका मन देखूँ। यदि वह यहाँ रहने को राजी हो तो कुछ उपाय सोचूँ।

चम्पा—भइया, ऐसा कर दो तो बड़ा अच्छा हो! मैं अभी उसे भेजती हूँ।

यह सुनकर चम्पा शीघ्रतापूर्वक वहाँ से चली गई।

रामनाथ यह भली-भाँति जानते थे कि जस्सो का यहाँ रहना एक अन-होनी बात है; परन्तु केवल एक बार उससे मिलने के लिए ही चम्पा से यह बहाना किया था।

थोड़ी देर पश्चात् ही जस्सो उदास भाव से सिर झुकाये हुए रामनाथ के सामने आकर खड़ी हो गई।

१२

जस्सो को देखकर पहले रामनाथ के मन में यह आया कि उसे घसीटकर हृदय से लगा लें, परन्तु कुछ तो जस्सो सौन्दर्यातंक के कारण, और कुछ इस कारण से कि उसके सात्त्विक स्वभाव ने हृदय को ऐसा करने का साहस प्रदान नहीं किया—वे कलेजा मसोस कर रह गये।

दोनों कुछ क्षणों तक मौन रहे। जस्सो पृथ्वी की ओर आँखें किये चुपचाप पैर के अँगूठे से नीचे बिछी हुई दरी पर नख-प्रहार कर रही थी और रामनाथ उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देख रहे थे। थोड़ी देर बाद रामनाथ ने जस्सो से कहा—जस्सो!

जस्सो ने उसी प्रकार सिर झुकाये कहा—क्या?

रामनाथ—कल तुम्हारे पिता और बाबा अपने घर जायेंगे—और तुम्हें भी अपने साथ ले जायेंगे।

जस्सो उसी प्रकार शीश झुकाये हुए बोली—क्या कल ही?

रामनाथ—हाँ, कल ही।

जस्सो—इतनी जल्दी क्या पड़ी है?

रामनाथ—क्यों, जल्दी क्यों न हो? अपने घर जाने में सबको जल्दी है, यहाँ उनका क्या धरा है।

जस्सो—तो, बाबा तो लौट ही आयेंगे।

रामनाथ—तू अब अपने पिता को बाबा मत कहा कर। जब तेरा सगा बाबा मिल गया है, तो अब अपने बाप को पिताजी कहा कर और बाबा को बाबा कहा कर, समझी ?

जस्सो किंचित् मुस्कराकर बोली—अच्छी बात है। हाँ, तो पिताजी तो यहाँ लौट आयेंगे।

रामनाथ—क्यों, यहाँ लौटने का कारण ?

जस्सो—आपकी नौकरी जो करते हैं।

रामनाथ जस्सो की इस सरलता पर हँस पड़े, बोले—तुम्हारे बाबा कोई मामूली आदमी थोड़े ही हैं। वह बड़े आदमी हैं, वह अब तुम्हारे बाप को नौकरी नहीं करने देंगे।

जस्सो चिन्ता में पड़ गई, उसके मुख पर मलिनता दौड़ गई। उसने कुछ देर तक मौन रहकर कहा—तो क्या पिताजी अब यहाँ नहीं लौटेंगे ?

रामनाथ—नहीं ! और तुम भी अब यहाँ न आने पाओगी।

इतना सुनते ही जस्सो का मुख श्वेत पड़ गया। उसने घबराकर कहा—नहीं, बाबूजी ऐसा न कहिये !

परन्तु जान पड़ता है कि उसे अपने उक्त कथन पर लज्जा हुई; क्योंकि दूसरे ही क्षण उसके गालों पर हल्की लालिमा दौड़ गई और उसने अपना सिर झुका लिया।

रामनाथ ने इस बात को ध्यानपूर्वक देखा और उनके हृदय से दीर्घनिश्वास निकली। उन्होंने विषाद-युक्त स्वर में कहा—क्या अपनी ओर से थोड़ा ही कुछ कह रहा हूँ, मेरा बस चले तो...

रामनाथ बीच ही में रुक गये, उनका मुख रक्तवर्ण हो गया। उन्होंने अपनी जीभ को दाँतों तले दाब लिया, मानो अपने मनोभावों को हृदय में रखने में उन्हें बड़ा ही मानसिक तथा नैतिक परिश्रम पड़ रहा हो।

जस्सो ने अपना मुख ऊपर उठाया, उसके नेत्रों में आँसू छलछला रहे थे। उसने कहा—तो क्या, बाबूजी, मुझे आपके चरणों से अलग ही होना पड़ेगा ?

इस बार रामनाथ ने कुछ साहस करके कहा—मैं क्या कर सकता हूँ ? मेरा वश चले तो तुम्हें कभी न जाने दूँ, परन्तु मैं क्या करूँ, मेरा तुम पर क्या जोर है ?

जस्सो ने पुनः ऊपर मुख उठाया। उसकी आँखें रामनाथ की आँखों
मिल गईं। उसके नेत्रों से आत्म-समर्पण—केवल आत्म-समर्पण ही न
सर्वस्व-समर्पण के भाव उमड़े पड़ रहे थे। रामनाथ उन भावों की निःशब्द
से तड़प गये।

उन्होंने कहा—जस्सो, मैं क्या कर सकता हूँ, मैं परवश हूँ, तुम्हारी
तरह परवश हूँ—अन्यथा····अन्यथा····उफ!

यह कहकर उन्होंने दोनों हाथों से सिर पकड़ लिया। जस्सो उसी प्र
से सिर झुकाये खड़ी रहीं।

थोड़ी देर में रामनाथ ने सिर उठाया। उनके नेत्र लाल हो रहे थे,
तमतमाया हुआ था। उन्होंने कुछ क्षणों तक जस्सो की ओर देखा, तत्पश्
कहा—जस्सो तुम्हारा जाना ही ठीक है। तुम्हारा यहाँ रहना ठीक नहीं!

जस्सो चौंक पड़ी, उसने घबराकर कहा—क्यों?

रामनाथ—क्या कारण जानना चाहती हो? नहीं, नहीं, कारण ज
की चेष्टा न करो। परन्तु नहीं, मैं भूल करता हूँ, तुम कारण अवश्य जानती
तुम जान-बूझकर अनजान बन रही हो।

जस्सो—मैं तो कुछ भी नहीं जानती।

रामनाथ उठकर खड़े हो गये और अपने दोनों हाथों से जस्सो के
कन्धे पकड़कर बोले—'एँ, क्या तुम नहीं जानतीं? देखो, मेरी ओर देखो;
आँखों से आँखें मिलाकर कहो कि तुम नहीं जानतीं।' परन्तु जस्सो ने
ऊपर नहीं उठाया, उसके नेत्रों से टपाटप आँसू टपकने लगे।

रामनाथ ने जस्सो के कन्धे पर से हाथ हटा लिए और होठों पर वि
पूर्ण मुस्कराहट लाकर बोले तुम सब समझती हो। ओह, कितनी अशुभ
थी जिस दिन मैंने पहले पहल तुम्हें देखा था। तुमने मेरे सुखमय शान्त ज
को दुखमय और अशान्त बना दिया। मैंने तुम्हें भिखारिणी समझकर आ
दिया था; परन्तु तुम तो अन्त में रानी निकलीं। ओह! क्या ही अच्छा ह
यदि तुम भिखारिणी ही रहतीं। अच्छा, जाओ, ईश्वर सुखी करे। मुझे सं
है कि तुम मेरे घर में भिखारिणी होकर आई थीं और रानी होकर जा
हो। जाओ, परन्तु कभी-कभी उस व्यक्ति की भी याद कर लिया करना, जि
भिखारिणी को यह हृदय-दान दिया था। यह जानते हुए भी कि तुम
भिखारिणी हो, तुम्हें अपनी हृदयेश्वरी बनाया था।

यह कहते हुए रामनाथ का गला भर आया। उन्होंने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

हठात् जस्सो भूमि पर बैठ गई और उसने दोनों हाथों से रामनाथ के चरण पकड़ लिए और रुँधे हुए कण्ठ से कहा--मुझे इन चरणों से अलग न कीजिए।

रामनाथ—मैं क्या कर सकता हूँ और तुम ही क्या कर सकती हो? यह सब व्यर्थ है। विधि ने जो रच रक्खा है; वह अवश्य पूरा होगा।

जस्सो—मैं इन चरणों को छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहती।

रामनाथ कुछ नम्र होकर बोले—तुम्हें जाना पड़ेगा और जाओ क्यों न? वहाँ सब तरह का सुख है। तुम्हारे पिता, बाबा, दादी तुम्हें आँखों की पुतली बनाकर रक्खेंगे; तुम वहाँ बैठी राज्य करोगी।

जस्सो—मैं भिखारिणी हूँ, मैं भिखारिणी ही रहना चाहती हूँ।

रामनाथ—तुम्हारे चाहने से क्या होता है, जो तुम्हारे बड़े-बूढ़े चाहेंगे वह होगा।

जस्सो—मैं तो आप ही को सब कुछ समझती हूँ।

रामनाथ—देखो लड़कपन मत करो, मेरा पैर छोड़ दो। यदि कोई आ गया और उसने देख लिया तो ठीक न होगा।

जस्सो ने रामनाथ के पैर छोड़ दिए और पुनः उठकर खड़ी हो गई और आंचल से अपने नेत्र पोंछने लगी।

रामनाथ पुनः कुर्सी पर बैठ गये।

कुछ देर तक दोनों नीरव रहे। हठात् उसी समय किसी के आने की आहट सुनाई पड़ी। रामनाथ सँभलकर बैठ गये, जस्सो भी शीघ्रतापूर्वक वहाँ से हटकर दूर खड़ी हो गई। कमरे के द्वार पर ही चम्पा का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा। उसने कहा—भइया, क्या तय किया?

रामनाथ खखारकर बोले—तय क्या करना है, तय करना कुछ मेरे हाथ में थोड़ा ही है।

चम्पा—जस्सो क्या कहती है?

रामनाथ—जस्सो बेचारी भी क्या कह सकती है, उसे तो जैसा उसके दादा-दादी कहेंगे वैसा करना पड़ेगा।

चम्पा—सो तो करना पड़ेगा; परन्तु उसकी इच्छा क्या है?

रामनाथ—यह उससे पूछो।

चम्पा—तुमने नहीं पूछा ?

चम्पा—वाह ! फिर बुलाया क्यों था ?

रामनाथ शीघ्रतापूर्वक बोले—उसकी इच्छा तो जाने की है नहीं।

चम्पा—तब फिर मत भेजो।

रामनाथ—मैं भेजने-न-भेजने वाला कौन हूँ। यह इसकी दादी से कहो।

चम्पा—वह तो कभी न मानेगी।

रामनाथ—तो फिर कैसे बनेगा ?

चम्पा—तुम इसके बाबा से कहो, वह चाहे मान जायँ।

रामनाथ—यह सब व्यर्थ है ! वह अपनी लड़की पराये घर में छोड़ने को कभी तैयार न होंगे।

चम्पा—हूँ, अब उनकी हो गई; अभी तक बाबा-दादी कहाँ थे ?

रामनाथ—यह सब बाहियात बात है। उन्हें मालूम नहीं था, तो इसके यह माने थोड़ा ही हो गये कि अब उनका इस पर कोई अधिकार ही नहीं रहा।

चम्पा—देखो, मैं इसके बाप से कहूँगी।

रामनाथ—हाँ, उससे तुम स्वयं कहो तो कदाचित् उसे कुछ ख्याल हो।

चम्पा—मैं अवश्य कहूँगी।

रामनाथ—परन्तु उसके मानने से क्या होगा ? उसका पिता माने तब बात है।

चम्पा—देखो, मैं पहले उससे कहूँगी, वह मान गया तो फिर उसके बाबा से कहा जायगा।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—हाँ, पहले पिता पर विजय प्राप्त करके, फिर बाबा पर चढ़ाई होगी, क्यों ?

चम्पा भी हँस पड़ी, बोली—और क्या ?

यह सुनकर चम्पा वहाँ से चल दी। चलते समय उसने जस्सो से कहा—आओ जस्सो, चलें। आज तेरे बाप से मेरी बातचीत होगी।

चम्पा चली गई। उसके पीछे-पीछे सिर झुकाये हुए जस्सो भी चली गई।

१३

चम्पा ने उसी समय नन्दराम को बुलवाया और उससे बोली—क्यों नन्दराम, तुम क्या जस्सो को भी ले जाओगे ?

नन्दराम ने कहा—साथ न ले जाऊ तो फिर क्या करूँ ?

चम्पा—यह बात तो हमें अच्छी नहीं लगती। जब यहाँ सबसे उसका प्यार-प्रेम बढ़ गया, तब तुम उसे लिए जाते हो।

नन्दराम ने कहा—क्या करूँ, मेरी इच्छा तो यह घर छोड़ने की थी नहीं। मैं तो यहाँ से मरे पर ही निकलता, पर मजबूरी है। भगवान् की जो इच्छा है, वही हो रहा है।

चम्पा—तो तुम गाँव चले जाओ, जस्सो को यहीं छोड़ जाओ। थोड़े दिन बाद तुम भी यहीं चले आना।

नन्दराम—मेरा बस चले तो मैं यहाँ से टलूँ ही नहीं।

चम्पा—तो फिर क्यों जाते हो ?

नन्दराम—मैं कुछ अपनी इच्छा से थोड़ा ही जा रहा हूँ—मैं तो धरा-पकड़ा जा रहा हूँ। पिताजी तो जानो लेने आये ही हैं, इधर छोटे और बड़े बाबू भी यही कह रहे हैं कि जाओ। अब तुम्हीं बताओ बेटी, ऐसी दशा में मैं क्या कर सकता हूँ।

चम्पा—अच्छा तो जस्सो को यहीं छोड़ जाओ।

चम्पा और नन्दराम का वार्तालाप चम्पा की माता ने सुना। वह वहाँ पर आकर खड़ी हो गई और चम्पा से पूछने लगी—क्या बात है ?

चम्पा—यह जस्सो को लिए जा रहे हैं।

माता—ले न जायँ तो क्या यहाँ छोड़ जायँ ? जहाँ उसके माँ-बाप जायेंगे, वहीं उसे भी जाना पड़ेगा।

चम्पा—यहीं बनी रहे तो क्या हरज है ?

माता—तू तो है पागल। यहाँ क्यों बनी रहे ? माँ-बाप तो उसके अन्त रहें और वह यहाँ बनी रहे ? तू ही न इनके साथ चली जा।

चम्पा—हूँ, मैं क्यों चली जाऊँ ?

माता—तो फिर वह यहाँ क्यों रहे ?

चम्पा—वह यहाँ रह जो रही है; मैं इनके वहाँ रहती होती तो चली जाती ।

माता—तो रहने से होता क्या है ? जो जहाँ रहता है वहीं का थोड़ा हो जाता है । जब तक उसका बाप यहाँ था, तब तक वह भी यहाँ रही । अब जहाँ उसका बाप जायगा, वहीं उसे भी जाना पड़ेगा ।

चम्पा—उसका चित्त तो जाने को नहीं चाहता ।

माता—यह तूने कैसे जाना ?

चम्पा—उसकी बातों से, उसकी सूरत से । जब से उसने जाने की बात चीत सुनी है, तब से इतनी उदास है कि क्या कहूँ ।

यह सुनकर चम्पा की माता का हृदय भी कुछ द्रवित हो गया ।

उन्होंने कहा—है तो लड़की बड़ी सुशील और मुहब्बत वाली । मेरी इच्छा थी कि वह यहीं तेरे पास रहती; पर क्या किया जावे । माँ-बाप से छुड़ा कर रखना भी तो ठीक नहीं । आखिर इन्हें (नन्दराम इत्यादि को) भी तो मुहब्बत है । वह यहाँ रहेगी तो ये सब वहाँ तड़पेंगे ।

नन्दराम बोल उठा—बहूजी, मुझे तो जरा भी उजर नहीं है, वह आपकी ही है । आप सब की बदौलत ही उसका जीवन सुधरा, आपके घर में ही वह आदमी बनी । और अब भी जो वह यहां रहेगी तो उसे यहाँ किसी बात का कष्ट न होगा । यहाँ रहने से एक लाभ यह और होगा कि वह अच्छी तरह पढ़-लिख जायगी । सीना-पिरोना अच्छा सीख जायगी—सब बातों में चतुर हो जायगी । देहात में क्या रक्खा है ? खाओ-पिओ और पड़ी रहो । इसके अतिरिक्त और देहान्त में कुछ नहीं हो सकता । बल्कि जो कुछ गुण इसने यहाँ सीखे हैं, देहात में जाकर उन्हें भी भूल जायगी । मैं ये सब बातें समझता हूँ । और यदि वह रहे तो मैं प्रसन्न, मेरा परमात्मा प्रसन्न । परन्तु यह तभी हो सकता है जब मेरे पिता और माता राजी हों; बिना उनकी रजामन्दी मैं क्या कर सकता हूँ । मैंने उन्हें अपनी नालायकी से इतना दुःख पहुँचाया है कि उसकी लाज के मारे उनके सामने मेरा सिर नहीं उठता—इसलिए अब मेरी हिम्मत तो पड़ती नहीं कि मैं उनसे यह कहूँ कि लड़की को यहीं छोड़ दो । हाँ, आप लोग कहिए, यदि वह मान जायें तो ठीक है ।

चम्पा बोल उठी—और जो उन्होंने तुमसे सलाह पूछी ?

नन्दराम—तब कह दूँगा कि हाँ, छोड़ दो, इसका मैं वायदा करता हूँ ।

चम्पा की माता बोल उठी—मुझे तो आशा नहीं है कि उसकी दादी और उसका बाबा इस बात पर राजी हो जायेंगे। सोचने की बात है कि इतने दिनों में तो लड़का और पोती मिली, बेचारे रोते-रोते अन्धे हो गये। बाबा का हाल तो मैं जानती नहीं; पर दादी तो रोते-रोते अन्धी हो गई। बिचारी ने मुझे अपनी सब विपत सुनाई थी। मुझे वह सब सुनकर इतना दुःख हुआ कि क्या कहूँ। यह सब देख-सुनकर मेरा तो यह जी नहीं करता कि मैं उनसे छुड़ाकर जस्सो को यहाँ रक्खूँ। उन्हें तो लड़की क्या मिली, मानो कोई खोया अमूल्य धन मिल गया। दिन रात उसी के पास बैठी रहती है, जस्सो जरा इधर-उधर चली जाती है तो झट कहने लगती है—"बिटिया कहाँ गई ?" यह तो दशा है; फिर भला कैसे लड़की को यहाँ छोड़ सकती है। हम तो अपना-सा जी सबका समझते हैं। अभी हमसे कोई कहे कि चम्पा को कहीं छोड़ दो, तो भला हमसे छोड़ा जायगा ? हाँ, ब्याह हो जाने पर ससुराल वाले चाहे जहाँ ले जायें, वह बात दूसरी है।

नन्दराम—हाँ, यह तो ठीक है। चाहे जो हो; पर मैं तो अपने जी से इसे भी अपना घर ही समझता हूँ। मेरे लिए तो सब एक-सा है, चाहे यहाँ रहे, चाहे वहाँ रहे।

माता—हाँ, घर तो हुई है। यों भी जब तुम्हारा जी महीना-पन्द्रह दिन को या जितने दिन तुम्हारा जी चाहे, यहाँ आकर रह सकते हो।

नन्दराम—बहूजी; सच पूछिए तो अभी तो मुझे इसी घर की मुहब्बत है। जब संसार में मेरा कोई नहीं था, मुझे इसी घर में आश्रय मिला था। मैं तो इस घर को भूल नहीं सकता। यों जीवन के दिन पूरे करने के लिए चाहे जहाँ पड़ा रहूँ।

माता—जीवन के दिन पूरे क्यों करो····रामजी का दिया हुआ सब कुछ है। अपना खाओ-पहनो, जस्सो का ब्याह करो, उसके बाल-बच्चों का सुख देखो। जीवन के दिन तो वह पूरे करते हैं जिनके आगे-पीछे कोई नहीं होता। तुम्हें तो भगवान ने सब कुछ दिया है। अभी तुम्हारी उमर ही क्या है—ब्याह कर लो तो लड़का वाला हो; आगे वंश चले।

नन्दराम—अरे बहूजी, अब मैं ब्याह क्या करूँ ? ब्याह ही करना होता तो इतने दिनों गली-गली भीख क्यों माँगता। अब तो मेरी केवल एक यही अभिलाषा रह गयी है कि जस्सो का ब्याह अपने मन के माफिक कर लूँ—वह

अच्छे घर जावे और जीवन का सुख भोगे। लड़कपन में जितना उसने दुःख उठाया है, उससे अधिक सुख भोगे। क्या कहूँ बहूजी, मैंने अपने पागलपन के कारण अपने-आप तो दुःख उठाया ही, पर इस लड़की को भी बड़ा दुःख दिया। जाड़ा, गर्मी और बरसात सब ऋतु में बेचारी चिथड़े पहने पड़ी रहती थी—आधे पेट खाना मिलता था—कभी-कभी फाका भी हो जाता था।

चम्पा की माता कानों पर हाथ धर कर बोली—बस भाई रहने दो। मेरे से ये बातें नहीं सुनी जातीं।

नन्दराम—तो बहूजी, इस दिशा से निकाल कर आपने उसे अपने यहाँ अपनी लड़की तरह रक्खा और अब भी उसे वैसा ही मानती हो—तो अब मैं यह कैसे कह दूँ कि मैं उसे यहाँ नहीं छोड़ सकता! नहीं, मैं ऐसा नासमझ नहीं हूँ जो अपने-पराये को न समझ सकूँ। मेरी तरफ से आपको पूरा अधिकार है कि उसे चाहे यहाँ रक्खो, चाहे वहाँ भेजो—मैं चूँ करूँ, तो दोगला समझना; परन्तु हाँ अपने पिता और माता से इस सम्बन्ध में मैं अपनी ओर से कुछ न कहूँगा।

इतना कहकर नन्दराम चला गया।

चम्पा कुछ उदास भाव से जस्सो के पास पहुँची और बोली—भाई, तेरा बाप तो तुझे छोड़ने को राजी है; पर वह कहता है कि तेरे बाबा-दादी भी राजी हो जाएँ तभी ऐसा हो सकता है। तू अपनी दादी से कह कि मैं यहीं रहूँगी।

जस्सो एक दबी हुई दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोली—भला मैं अपने मुख से ऐसा कैसे कह सकती हूँ। वे विचारे तो मेरे लिए प्राण देने को तैयार हैं। तब मैं अपने मुँह से यह कैसे कहूँ कि मैं यहीं रहूँगी।

चम्पा—अच्छा तेरी दादी से मैं कहूँ?

जस्सो—हाँ, तुम कहो, कदाचित् कुछ प्रभाव पड़े।

चम्पा जस्सो की दादी के पास पहुँची। पहले तो उससे इधर-उधर की बातें करती रही। तत्पश्चात् बोली—क्यों ठकुराइन, कल तुम चली जाओगी?

ठकुराइन—हाँ बेटी कल हम लोग जायेंगे।

चम्पा—अभी कुछ दिन और रहतीं।

ठकुराइन—रहने में तो कोई हरज नहीं था, पर वहाँ घर अकेला है।

चम्पा—ठकुराइन तुम जस्सो को साथ लिए जाती हो, यह बड़ा बुरा कर रही हो।

ठकुराइन किंचित् मुस्कराकर बोली—क्यों, बुरा क्या है ?

चम्पा—मेरा इसके बिना जी नहीं लगेगा। मेरा इसका बड़ा प्रेम हो गया है।

ठकुराइन बोली—हाँ, प्रेम तो हो गया होगा; पर क्या करें बेटी ! हमारी फूटी आंख का सहारा तो अब यह लड़की ही है। आज नन्दराम के दो-चार लड़के-वाले होते तो हम कहते, चलो खैर, ऐसा ही सही। एक लड़की यहीं बनी रहे, यह भी घर ही है। पर बेटी; अब तो यही एक लड़की है। जो यह यहाँ रहेगी तो हमारा घर अँधेरा पड़ा रहेगा। हमारे घर की चाँदनी तो अब यही लड़की है।

चम्पा—तुम्हारा जब जी चाहे तब यहाँ आकर देख जाया करना।

ठकुराइन हँस पड़ीं; बोलीं—अरे बेटी, ऐसा कहाँ हो सकता है ?

चम्पा—होने को क्या हुआ, तुम चाहो तो सब कुछ हो सकता है। यह तो तुम्हारे बस की बात है।

ठकुराइन—ना बेटी, मेरे बस की बात नहीं। जस्सो के बाबा से पूछे बिना मैं कुछ नहीं कर सकती।

चम्पा—तो उनसे पूछ लो।

ठकुराइन—अब यहाँ पूछने का क्या मौका है ? घर पहुँच के देखा जायगा।

चम्पा—हँसकर बोली—वाह ! यह तो तुम अच्छा पाठ पढ़ाती हो। वहाँ पहुँच के फिर कौन पूछता है।

ठकुराइन—अच्छा एक काम करो। तुम हमारे साथ हमारे घर चलो। वहाँ महीने-दो-महीने रहो और जो जस्सो का बाप और बाबा राजी हो जायँ तो उसे साथ लेकर लौट आना।

चम्पा—जो राजी न हुए तो !

ठकुराइन—तो फिर अकेली लौट आना।

चम्पा—वाह ! तो मेरे जाने से फायदा क्या ?

ठकुराइन—वहाँ देहात की हवा खा आना।

चम्पा—देहात में धरा ही क्या है ?

ठकुराइन—हाँ, शहर जैसी चहल-पहल तो नहीं है। पर वहाँ की हवा अच्छी है—घी-दूध, अच्छा मिलता है, जितना जी चाहे खाना।

चम्पा—घी-दूध तो यहाँ अच्छा मिलता है।

ठकुराइन—हाँ, मिलता तो है; पर जो बात देहात में है, वह यहाँ कभी हो ही नहीं सकती।

चम्पा—मेरा वहाँ जाना तो कठिन है।

ठकुराइन—क्यों ?

चम्पा—माताजी और बाबूजी जाने नहीं देंगे।

ठकुराइन—हम उन्हें राजी कर लेंगे।

चम्पा—दूसरे, मेरा जी वहाँ न लगेगा।

ठकुराइन - क्यों, तुम्हारा जी तो ऐसा लगेगा जैसा चाहिए। रही भेजने की बात, सो तुम राजी हो तो मैं बहूजी से कहूँ ?

चम्पा हँसकर बोली—वाह, यह अच्छी रही, मैं तुमसे जस्सो को यहाँ छोड़ जाने के लिए कहने आई थी, सो तुम उलटे मुझे ही वहाँ ले जाने की बात सोचने लगी।

ठकुराइन यह सुन अट्टहास करके बोलीं—नहीं बेटी, तुम ऐसी बात मत सोचो। हमारे ऐसे नसीब कहाँ जो तुम हमारे घर चलो, पर हाँ, जो चलो, तो तुम्हें वहाँ किसी तरह का कष्ट नहीं होगा।

चम्पा को अब पूर्णतया निराशा हो गई। उसने समझ लिया कि जस्सो का उनके यहाँ रहना असम्भव है। वह ठकुराइन के पास से चली आई और जस्सो के पास आकर बोली—मेरी बात कोई नहीं सुनता, तुझे जाना ही पड़ेगा।

इसके पश्चात् वह रामनाथ के पास पहुँची और बोली—भइया, नन्दराम तो राजी है, पर वह चुड़ैल उसकी दादी राजी नहीं होती।

रामनाथ—क्या कहती है ?

चम्पा—साफ-साफ तो नहीं कहती कि यहाँ नहीं छोड़ूँगी; पर दुनियाँ भर के बहाने करती है। कभी कहती है कि तुम मेरे साथ चलो, कभी कहती है कि उसका बाबा राजी न होगा।

रामनाथ—क्या तुमसे चलने के लिए कहती है ?

चम्पा—हाँ, मैंने कहा था कि जस्सो के बिना मेरा जी न लगेगा; तो उस पर बोली कि तुम भी हमारे साथ चलो।

रामनाथ एक दीर्घ निश्वास छोड़कर बोले—मैंने तो पहले ही कहा था कि उसके बाबा-दादी उसे यहाँ कभी न छोड़ेंगे। पराये घर में अपनी लड़की कोई नहीं छोड़ सकता है।

१४

रात के आठ बज चुके हैं। नन्दराम अपनी कोठरी में अपना असबाब बाँधने में जुटा हुआ है। जस्सो भी उसे इस कार्य में सहायता दे रही है। जस्सो का मुख-मण्डल ऊपर से तो शान्त तथा गम्भीर है, परन्तु उसके हृदय में एक विकट आन्दोलन मचा हुआ है। थोड़ी-थोड़ी देर पश्चात् उसके अन्त-स्तल से एक दीर्घ निःश्वास निकलती है। नन्दराम ने कहा—मेरी समझ में तो खाली पहनने के कपड़े रख लूँ और यह अर्तन-बर्तन यहीं किसी को दे जाऊँ—व्यर्थ बोझ बाँधने से क्या लाभ ?

जस्सो बोली—कोठरी में बन्द करके ताला लगा दो।

नन्दराम—बन्द करने से क्या होगा ?

जस्सो—शायद फिर यहाँ आना पड़े।

नन्दराम—यह सब व्यर्थ है। अब यहाँ कौन आवेगा।

जस्सो—शायद बाबा से न पटी तो फिर कहाँ जायेंगे ?

नन्दराम—अरे नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। न पटने का कारण तो हो सकता है कि मैं ही कोई झगड़ा करूँ। सो अब मैं यह करूँगा नहीं। अब मैं सदा उन्हें प्रसन्न रखूँगा। और, यदि इश्वर न करे, ऐसा हुआ तो मैं अकेला यहाँ अथवा अन्य कहीं चला जाऊँगा। तुझे तो अब वहीं रहना पड़ेगा।

जस्सो—यह कैसे होगा ? जहाँ तुम जाओगे, वहीं मैं भी चलूँगी। मैं तुम्हें छोड़कर वहाँ कभी न रहूँगी।

नन्दराम—क्यों ?

जस्सो—मेरी इच्छा !

नन्दराम—यह सब तेरा लड़कपन है। मैं चाहे जहाँ रहूँ, पर तुझे तो वहीं रहना पड़ेगा।

जस्सो—मेरा तो जी वहाँ जाने को अभी भी नहीं चाहता। मैं तो केव
तुम्हारे साथ चल रही हूँ। जहाँ तुम जाओगे वहीं में भी जाऊँगी।

नन्दराम ने जस्सो पर एक स्नेहपूर्ण दृष्टि डाली और कहा—तू बड़
पगली है। क्या तू जन्म भर मेरे ही साथ रहेगी ?

जस्सो—और मेरा क़ौन बैठा है ?

नन्दराम—तेरे बाबा-दादी नहीं हैं !

जस्सो—मैं उन्हें क्या जानूँ ? मैं तो तुम्हें जानती हूँ और या फिर इ
घर को जानती हूँ।

नन्दराम—किस घर को, इस कोठरी को !

जस्सो—नहीं पिताजी, इस कोठरी को नहीं।

नन्दराम—तो फिर किसे ?

जस्सो—रामनाथ बाबू को और उनके घर वालों को।

नन्दराम—हाँ, ये लोग तो तुझे बहुत चाहते हैं।

जस्सो के नेत्रों में आँसू छलछला आये। सहानुभूति पाकर हृदय में भर
हुआ दुःख बाहर फूट निकलने की चेष्टा करने लगा। जस्सो ने कहा—
पिताजी, चम्पा बीबी को छोड़ते हुए मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े होता है।

नन्दराम—अवश्य होता होगा, चम्पा तुझसे बहुत स्नेह रखती है। उस
बेचारी ने तुझे रखने के लिए जोड़-तोड़ भी बहुत लगाये।

जस्सो—पर लाभ क्या हुआ ?

नन्दराम—लाभ हो ही क्या सकता था ? पिताजी और माताजी तुझे
यहाँ छोड़ने पर कदापि राजी नहीं हो सकते।

जस्सो ने इसका कोई उत्तर न दिया, चुपचाप आँचल से आँखें पोंछने
लगी।

नन्दराम—मुझे भी यह घर छोड़ते बड़ा दुःख हो रहा है।

जस्सो—क्या बताऊँ ? इससे तो यहाँ आते ही न तो अच्छा था, उसी
तरह भिक्षा-वृत्ति करते फिरते।

नन्दराम—बेटी, तूने ही तो यहाँ नौकरी करने के लिए मुझे विवश किया
था और तेरे ही कारण मैं यहाँ रहा। यदि में अकेला होता तो एक दिन भी
यहाँ न रहता।

जस्सो—मैं क्या जानती थी कि ऐसा संयोग आ पड़ेगा कि यह घर भी छोड़ना पड़ेगा।

नन्दराम—संयोग आया तो अच्छा ही हुआ। वहाँ रहना कुछ बुरा थोड़ा ही है। अपना घर है। पराया घर लाख कुछ हो, पर अपने घर की बराबरी नहीं कर सकता। तुझे अभी यह घर छोड़ते दुःख हो रहा है, पर जहाँ अपने घर पहुँची, वहीं सब भूल जायगी।

जस्सो ने मन में कहा—असम्भव ! मेरे प्राण तो इसी घर में हैं, मैं इस घर को कैसे भूल सकती हूँ ?

नन्दराम कहता गया—वहाँ तुझे हर बात का सुख रहेगा। ईश्वर ने चाहा तो पारसाल तक ब्याह हो जायगा। तब तुझे ससुराल जाना ही पड़ेगा। यहाँ भी रहती, तब भी यही होता। तू जो समझ रही है कि इसी घर में जन्म बीतेगा—यह तेरी भूल है। तू सदा न यहाँ रह सकती है न वहाँ।

जस्सो गद्‌गद् कण्ठ से बोली—मैं पैदा होते ही मर जाती तो अच्छा था।

नन्दराम—यह क्यों ? यह विचार तेरे मन में क्यों आया ? तुझे दुःख क्या है ?

नन्दराम उसकी पीठ पर हाथ रखकर बोला—आखिर तू इतनी उदास क्यों है ? तुझे क्या कष्ट है ? कोई कष्ट है तो कहती क्यों नहीं ? यदि मैं अपने प्राण देकर भी उस कष्ट को दूर कर सकूँगा, तो करूँगा। संसार में अब तू ही मेरा सहारा है।

जस्सो ने सिर झुका लिया। उसके नेत्रों से आँसुओं की बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

जस्सो ने अपने पिता के कन्धे पर सिर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी।

नन्दराम यही कहता रहा—क्या बात है, तू बताती क्यों नही ?

जस्सो की रोते-रोते हिचकी बँध गयी। उसको इस प्रकार दुःखी देख नन्दराम का भी हृदय उमड़ उठा। वह गद्‌गद् कण्ठ से बोला—भगवान जाने तुझे क्या दुःख है। तुझे सुखी करने के लिए तो मैंने नीच-से-नीच कर्म किये। तेरे ही कारण, तेरी ही मोह-माया के कारण, तेरी माता के मरने के पश्चात्

मैं जीवित रहा—यदि तू न होती तो मैं भी उसी के साथ चल बसा हो
आज दिन भी जब तेरी माता की याद आ जाती है तो संसार मुझे अन्धक
मय दिखायी पड़ता है। इस अन्धकारमय संसार में मेरे लिए तू ज्योति की
ऐसी रेखा के समान है, जिसके आलोक में मैं इस जीवन-मार्ग को तय कर
हूँ। तेरा फूल-सा प्रफुल्लित मुख देख-देखकर मैं अपना सब दु:ख भूला
हूँ। तुझे दु:खी देख कर मुझे अपना दुख याद आ जाता है ! मेरे लिए
संसार महा दु:खदाई लगने लगता है। इसलिए बेटी, मैं तुझे एक क्षण के
भी दुखी नहीं देखना चाहता। तुझे जो दु:ख हो, वह मुझे बता दे। मैं उ
करने की चेष्टा करूँगा।

पिता के स्नेहपूर्ण वाक्य सुनकर जस्सो की इच्छा हुई कि अपने हृद
सारी बात पिता से कह दे। परन्तु बहुत चेष्टा करने पर भी उसके मु
एक शब्द भी न निकला। स्त्रियोचित लज्जा ने उसके मुख में ताला
दिया। जब नन्दराम ने बहुत हठ की तो उसने कहा—कुछ नहीं, मुझे
पिछली बातें और माताजी की याद आ गयी थी, इसी मारे जी भर आय

नन्दराम—यह तेरा लड़कपन है। पिछली बातों को याद करने से
लाभ नहीं।

जस्सो नेत्र पोंछती हुई बोली—सबेरे कितने बचे चलना होगा ?

नन्दराम—सबेरे नौ बजे गाड़ी जाती है। यहाँ से आठ बजे चल
होगा। आओ, जल्दी-जल्दी कपड़े बाँध लें, सबेरे उठना है—अधिक ज
ठीक नहीं।

यह कहकर नन्दराम पुन: वस्त्र इत्यादि बाँधने में व्यस्त हो गया।
भी उसकी सहायता करने लगी।

आध घण्टे पश्चात् जस्सो असबाब बँधवाने से छुट्टी पा गई।

जस्सो अन्तःपुर जाते समय रामनाथ के कमरे के पास से होकर नि
कमरे की खिड़की के पास पहुँचकर उसने अपनी चाल धीमी कर दी
खिड़की से कमरे में झांका। कमरे में लैम्प का प्रकाश फैला हुआ था।
ने देखा—रामनाथ कुर्सी पर बैठे हैं। उनकी दृष्टि कमरे की छत की
लगी हुई है। जस्सो खिड़की के पास ठिठक गई। उसका कलेजा ध
लगा। रामनाथ को देखकर उसके दु:खी हृदय में पुन: ठेस लगी

भावना को उसने बलात् हृदय में दबाने की चेष्टा की थी, वह फिर जाग्रत हो गई।

सहसा रामनाथ उठकर टहलने लगे। कमरे में एक-दो चक्कर लगाने के पश्चात् उन्होंने घड़ी की ओर देखा। घड़ी में नौ बजने में पाँच मिनट शेष थे। घड़ी देखकर रामनाथ के मुख से निकला—ओफ ! अब कुल ग्यारह घण्टे और रह गये। आह ! 'सजन सकारे जायँगे नैन मरेंगे रोय। विधना ऐसी रैन कर भोर कभी ना होय'।

रामनाथ की दशा देखकर और उनकी बात सुनकर जस्सो के अन्त स्तल से एक मर्म-भेदी 'हाय' निकली और नेत्रों से आँसू टपकने लगे। वह खिड़की के पास ही दीवार के सहारे विह्वल-सी होकर खड़ी हो गई। जस्सो के कण्ठ-स्वर का क्षीण शब्द रामनाथ के कानों में पहुँचा। वह चौंक पड़े और उन्होंने खिड़की की ओर देखा। परन्तु कदाचित् उन्हें कुछ दिखाई न पड़ा। अतएव वह खिड़की के पास आये और उन्होंने बाहर की ओर झाँका। बाहर अँधेरा था। अँधेरे में उन्होंने जस्सो को नहीं पहचाना, उन्हें केवल एक मनुष्य-मूर्ति दीवार के सहारे खड़ी दिखाई पड़ी। रामनाथ ने पूछा—'कौन है ?' जस्सो न बोली—वरन् वहाँ से धीरे-धीरे खिसकने लगी। यह देखकर रामनाथ को कुछ सन्देह हुआ। अतएव शीघ्रतापूर्वक उस ओर का द्वार खोलकर वह बाहर आये और पुनः बोले—कौन जाता है, बोलता नहीं।

जस्सो ने चाहा जल्दी से वहाँ से निकल जाय, यह सोचकर उसने अपनी चाल कुछ तेज की। यह देखकर रामनाथ लपककर उसके पास पहुँच गये और उसका रास्ता रोककर बोले—कौन है, कहाँ जाता है ?

जस्सो ने क्षीण-स्वर में कहा—मैं हूँ।

रामनाथ—कौन, जस्सो ?

जस्सो—हूँ।

रामनाथ व्याकुल होकर बोले—तुम यहाँ कहाँ ?

जस्सो—पिताजी के पास से आ रही हूँ।

रामनाथ—अच्छा ! इतनी रात को ?

जस्सो—उनका असबाब बँधवाने गई थी।

रामनाथ—ओ, ठीक है।

दोनों थोड़ी देर तक मौन खड़े रहे, इसके पश्चात् रामनाथ ने कहा —मेरी-तुम्हारी ये अन्तिम भेंट है। कल तुम चली जाओगी। पता नहीं, फिर तुमसे इस जीवन में साक्षात् हो या न हो।

ये शब्द कहते-कहते रामनाथ का गला भर आया।

जस्सो दीवार के सहारे इस प्रकार टिक गई, मानो वह ज्ञान-शून्य होकर गिर रही है। यह देखकर रामनाथ ने उसे अपने हाथों का सहारा देकर सँभाला और बोले—तुम्हारा जी खराब है— चलो, जरा देर कमरे में चलकर बैठो। जब जी ठीक हो जाय तब जाना।

जस्सो किंचित् भयभीत होकर रामनाथ के बाहु-पाश से निकलने की चेष्टा करती हुई बोली—नहीं मेरा चित्त ठीक है—मुझे जाने दो।

रामनाथ—इस प्रकार तो मैं नहीं जाने दूँगा। तुम्हें मेरे कमरे में चलना पड़ेगा।

जस्सो—नहीं, नहीं, इस समय मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।

रामनाथ—क्यों, क्या मुझसे डरती हो, या मुझ पर विश्वास नहीं है ?

जस्सो ने इसका कुछ उत्तर न दिया और स्वयं को रामनाथ के बाहुपाश से निकालने का प्रयत्न करने लगी।

रामनाथ ने यह देखकर जस्सो को छोड़ दिया और दुःखपूर्ण स्वर में बोले—'यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है, तो मैं हठ न करूँगा—मुझे हठ करने का कोई अधिकार भी नहीं है। अच्छा विदा ! इस जीवन में कदाचित् अब साक्षात् न हो।' कहकर रामनाथ अपने कमरे की ओर चले।

हठात् जस्सो ने उनका वस्त्र पकड़ लिया। रामनाथ ठिठक गये और उन्होंने घूमकर देखा। उसी समय जस्सो बोली—क्या रुष्ट हो गये ?

रामनाथ—रुष्ट होकर तुम्हारा क्या कर लूँगा ? हाँ इस बात पर दुःख अवश्य हुआ कि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं। तुम समझती हो मैं तुम्हारी एकान्तावस्था से कोई अनुचित लाभ उठाना चाहता हूँ।

जस्सो धीमे स्वर में बोली—नहीं, ऐसा मत सोचो। मुझे तुम पर पूरा विश्वास है, पर यदि कोई देख ले तो…?

रामनाथ—इस समय देखने वाला कौन है ?

जस्सो—बीबी जी आ जायँ तो ?

'बीबीजी'—जस्सो का तात्पर्य चम्पा से था।

रामनाथ ने कहा—इस समय बीबीजी नहीं आतीं और तुम्हें देर थोड़ी लगेगी—दो बातें करके चली जाना।

जस्सो—अच्छा चलो।

आगे-आगे रामनाथ और उनके पीछे जस्सो चली। दोनों कमरे में पहुँचे। कमरे में पहुँचकर रामनाथ ने द्वार बन्द कर लिया और स्वयं कुर्सी पर बैठे—उनके सामने ही जस्सो खड़ी हो गयी। थोड़ी देर पश्चात् रामनाथ ने सिर उठाया, उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो रहे थे—मुख-मण्डल पर विषाद छाया हुआ था। उन्होंने विषादयुक्त स्वर में कहा—जस्सो! क्या इसी दिन के लिए मैंने तुम्हें अपने हृदय में स्थान दिया था? यदि मैं जानता कि तुम इस प्रकार मन, प्राण हरण करके चल दोगी तो ··· परन्तु नहीं, इसमें तुम्हारा अपराध नहीं, यह जो कुछ मैंने ही स्वयं किया। मैंने ही नन्दराम को उसके माता-पिता से मिलाने की चेष्टा की थी। मैंने ही ···परन्तु मैं क्या जानता था कि तुम्हारा वियोग इतना दुखदाई होगा। ओफ! हृदय में आग-सी लगी हुई है। इस आग में तन, मन भस्म हुआ जा रहा है।

जस्सो उसी प्रकार सिर झुकाये खड़ी रही—उसके नेत्रों से आँसू टपक कर उसके वक्षस्थल को भिगो रहे थे।

रामनाथ बोले—तुम्हारे चले जाने पर इस हृदय को कैसे समझाऊँगा? जस्सो खड़ी रही।

रामनाथ थोड़ी देर तक जस्सो की ओर स्थिर दृष्टि से देखते रहे, तत्पश्चात् व्याकुल होकर बोले— जाओ, मेरे सामने से चली जाओ—अन्यथा मैं पागल हो जाऊँगा। मैंने भूल की जो तुम्हें यहाँ लाया। जाओ, शीघ्र चली जाओ। ऐसा न हो कि मुझसे कोई चेष्टा ऐसी हो जाय जो विश्वासघात समझी जाय।

जस्सो ने मुख ऊपर उठाया। लैम्प के शुभ्रालोक में रामनाथ ने देखा—जस्सो के नेत्र रक्तवर्ण हो रहे हैं। मुँह सूजा हुआ है, गाल आँसुओं से तर हैं। यह देखकर रामनाथ के हृदय में जस्सो के प्रति दया तथा प्रेम की इतनी प्रबल भावना उत्पन्न हुई कि वह स्वयं को वश में न रख सके। वह उछल कर खड़े हो गये और उन्होंने जस्सो को अपने अंक में ले लिया। जस्सो ने भी विह्वल होकर उनके वक्षस्थल पर सिर रख दिया और कुछ क्षणों के लिए ज्ञान रहित सी हो गई।

थोड़ी देर तक दोनों इसी प्रकार खड़े रहे। हठात जस्सो ने चौंककर

कहा—अब मुझे जाने दीजिए, बहुत देर हो गई। मेरी प्रतीक्षा हो रही होगी, ऐसा न हो, कोई बुलाने निकले।

रामनाथ ने विषादपूर्ण स्वर में कहा—अच्छा जाओ।

यह कहकर उन्होंने दोनों हाथों से जस्सो का मुख पकड़ ऊपर उठाया और उसका माथा चूमकर उसे छोड़ दिया। जस्सो उनकी ओर व्याकुलतापूर्ण दृष्टि डालकर गद्‌गद् कण्ठ से बोली—जाती हूँ।

रामनाथ भी गद्‌गद् कण्ठ से बोले—जाओ।

जस्सो—इस घर में भिखारिणी बन कर आई थी और अब भिखारिणी ही बनकर जा रही हूँ।

रामनाथ—भिखारिणी क्यों, रानी बनकर जा रही हो।

जस्सो—रानी उस समय थी जब तक यहाँ थी, अब यहाँ से जाने पर फिर वही भिखारिणी!

रामनाथ ने इसका कुछ उत्तर न दिया, वह खिसककर कुर्सी पर बैठ गये और मेज पर सिर रख दिया।

जस्सो रामनाथ की यह दशा देखकर आँचल से आँसू पोंछती हुई धीरे-धीरे उनके पास आई और उनके पास खड़ी होकर उनके सिर पर अत्यन्त प्रेम-पूर्वक हाथ फेर कर रुँधे हुए कण्ठ से बोली—एक भिखारिणी के लिए इतने दुःखी क्यों होते हो? ऐसी भिखारिणी तो आपके द्वार पर नित्य आया करती हैं, मुझे भी भिखारिणी समझकर भूल जाना। यह भिखारिणी अन्तिम भिक्षा यही माँगती है कि इसे भूल जाना।

यह कहकर जस्सो उमड़े हुए आँसुओं को रोकने की चेष्टा करती हुई आँचल से मुँह छिपाकर वहाँ से धीरे-धीरे चली गई।

रामनाथ उसी प्रकार बैठे रहे।

रामनाथ को रात भर नींद न आई। उनके मन में अनेक प्रकार के विचार चक्कर मारते रहे। जस्सो का चिर-वियोग उनके लिए असह्य हो रहा था। उन्होंने अनेक ऐसी बातें, युक्तियाँ सोचीं—जिनके अनुसार कार्य करने से वह जस्सो को सदैव के लिए अपनी बना सकें। एक बार तो उन्होंने यहाँ तक सोच डाला कि नन्दराम की तरह वह भी जस्सो को लेकर कहीं उड़ जायँ; परन्तु जब इस कार्य के परिणाम पर दृष्टि डालते थे तो रोमांच हो आता था। न तो उनके हृदय में इतना साहस था और न वह इतने बुद्धिभ्रष्ट ही हुए थे

कि ऐसा कर बैठते। रात भर वह इसी उधेड़बुन में रहे। क्षितिज पर ऊषाकाल का आलोक प्रस्फुटित हो गया; परन्तु वह किसी भी निश्चय पर न पहुँच सके।

उधर जस्सो भी रात-भर जागती रही। बारह बजे तक तो उसे अपनी दादी के पास बैठना पड़ा। इसके पश्चात् एक बजे तक वह चम्पा से बात करती रही। एक बजे के पश्चात् चम्पा तो सो गई, परन्तु वह जागती रही। उसके व्यथित तथा दुखी: हृदय ने निद्रा को पास भी न फटकने दिया।

प्रातःकाल होते ही नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर उसने पहले स्नान किया और तदुपरान्त यात्रा की तैयारी में लग गई।

इधर राम नाथ भी शौच इत्यादि से निवृत्त होकर नन्दराम के पिता के पास पहुँचे। नन्दराम के पिता उस समय अपना बिस्तर बँधवा रहे थे। रामनाथ ने कहा---तैयारी हो रही है क्या?

जमींदार साहब ने कहा—हाँ बाबूजी, और तैयारी तो हो चुकी, खाली बिस्तर बँधवाना था सो वह भी बँध गया।

रामनाथ—अभी तो बहुत सबेरा है।

जमींदार—रेल पर कुछ जल्दी पहुँच जाने से ठीक रहता है। भीतर भी कहला दीजिए। वह भी तैयार हो जायँ।

रामनाथ विषाद-युक्त स्वर में बोले—वहाँ भी तैयारी हो रही है।

उसी समय नन्दाराम वहाँ आ गया। नन्दराम को देखकर उसके पिता ने पूछा—कहो बेटा, सब तैयार हैं?

नन्दराम—हाँ, मैं तो तैयार हूँ। भीतर का हाल मालूम नहीं।

पिता—वहाँ भी कहला दो।

नन्दराम—कहला तो दिया है।

रामनाथ—वहाँ तैयारी हो रही है। देखिये, मैं देखे आता हूँ।

यह कहकर रामनाथ अन्तःपुर की ओर चले। हृदय में जस्सो को एक बार और देखने की लालसा प्रबल हो उठी।

अन्तःपुर के द्वार पर पहुँचकर उन्होंने पुकारा—चम्पा!

चम्पा ने कहा—हाँ भइया।

रामनाथ—देखो, जस्सो और उसकी दादी से कह दो तैयार हो जायें। यह कहते समय उनके कण्ठ में एक गोला-सा अड़ने लगा।

चम्पा ने कहा—अभी तो बहुत सबेरा है। गाड़ी तो नौ बजे जाती है। यह कहती हुई चम्पा रामनाथ के पास आ गई।

रामनाथ—हाँ, गाड़ी तो नौ बजे जाती है; पर इन्हें तो आठ बजे यहाँ से चल देना चाहिए।

चम्पा—यहाँ तो सब तैयारी है, खाली बिस्तर बँधने हैं, सो अभी जरा देर में बँधे जाते हैं।

रामनाथ—तो बिस्तर बँधवा लो न, फिर कब बँधेगा ?

चम्पा – अभी बँधवाये देती हूँ, पहले जरा जस्सो और उसकी दादी कुछ खा लें।

रामनाथ—हाँ, यह बहुत अच्छा सोचा, बाहर ठाकुर साहब के लिए भी कुछ भेज देना, नन्दराम को भी खिला देना।

चम्पा – हाँ, यह तो मैं पहले ही सोच चुकी हूँ। भइया, तुम्हारी आँखे बड़ी लाल हैं ?

रामनाथ—हाँ, रात बहुत देर तक जागा किया, बैठा बातें कहता रहा, इससे लाल हो गई होंगी।

चम्पा ने समझा, भइया ठाकुर साहब और नन्दराम से बातें करते रहे होंगे। उसने कुछ उदास होकर कहा— मैं भी एक बजे तक जस्सो से बातें करती रही। वह विचारी तो रात भर पड़ी रोती रही।

रामनाथ के हृदय में पुनः ठेस लगी, आँखों में आँसू छलछला आये।

रामनाथ थोड़ी देर तक इस प्रतीक्षा में खड़े रहे कि कदाचित् इधर-उधर चलते-फिरते जस्सो के दर्शन हो जावें; परन्तु जब ऐसी आशा न दिखाई पड़ी तब यह कह कर चल दिये—'मैं जाता हूँ, ठाकुर साहब के लिये कलेवा जल्दी भेज और विस्तर-बिस्तर बँधवा दे।' बाहर आकर उन्होंने देखा कि उनके पिता ठाकुर साहब से वार्तालाप कर रहे हैं।

रामनाथ को देखते ही उनके पिता ने कहा—रामनाथ, ठाकुर साहब के लिए कुछ चाय-पानी तो मँगवाओ।

रामनाथ—आ रहा है।

वकील साहब—उधर कोचवान से कहलवा दो कि गाड़ी तैयार करे—दोनों गाड़ियाँ जोत ले। पालकी गाड़ी में औरतें बैठ जायेंगी और फिटन में मर्द बैठ जायेंगे।

रामनाथ ने नौकर बुलाकर दोनों गाड़ियाँ जुतवाने की आज्ञा दे दी। रामनाथ ये सब कार्य उसी तरह कर रहे थे, जिस प्रकार कोई प्राणदण्ड पाने वाला अपने प्राणदण्ड का समस्त प्रबन्ध स्वयं ही कर रहा हो।

अब उनके हृदय में यह प्रश्न उठा कि वह स्टेशन तक ठाकुर साहब को भेजने जायँ या न जायँ? जस्सो के अन्तिम दर्शनों की लालसा तो उनसे स्टेशन तक जाने का अनुरोध कर रही थी, और जस्सो के वियोग की वेदना, जिसके कारण उनके मन में कुछ वैराग्य की भावना उत्पन्न हो गई थी, उनसे कह रही थी 'क्यों अधिक माया-मोह में पड़कर अपनी आत्मा को कष्ट पहुँचाते हो; जाने दो, उसे भूल जाओ। वह तुम्हारी कौन है?'

बड़ी देर तक रामनाथ इसी उधेड़बुन में पड़े रहे। एक बार तो उन्होंने यह तय कर लिया कि अब नहीं जायेंगे। वहाँ जाने से क्लेश ही होगा—कोई सुख नहीं मिलेगा। परन्तु जब गाड़ियाँ जुतकर आ गईं और असबाब लादा जाने लगा, तो उनके हृदय में पुनः गुदगुदी हुई। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि जस्सो भी उनसे प्रेम करती है। अतएव यदि वह स्टेशन तक न जायेंगे तो सम्भव है, उसे दुःख हो और वह समझे कि इतनी जल्दी उदासीन हो गये। अतएव स्टेशन तक जाना उनका कर्त्तव्य है। यह ध्यान आते ही उन्होंने अपने पिता से कहा—यदि आप अनुचित न समझें तो मैं स्टेशन तक चला जाऊँ।

वकील साहब—नहीं, इसमें अनुचित क्या है—चले जाओ।

रामनाथ ने शीघ्रतापूर्वक वस्त्र पहने और चलने के लिए तैयार हो गये। विदा होते समय, जस्सो, चम्पा तथा चम्पा की माता के गले लगकर बहुत रोई। चम्पा और चम्पा की माता भी रोईं। नन्दराम ने भी रामनाथ की माता के चरण छुए और नेत्रों में आँसू भर के कहा—बहूजी, इस गरीब को भूल न जाना।

बहूजी बोली—हम तो भूलेंगे नहीं, पर भाई, तू भी कभी-कभी खबर लेते रहना। क्या कहें, हमारी तो यही इच्छा थी कि तू और जस्सो यहीं रहते; पर क्या करें, खैर अपने घर पर जा रहे हो, बरसों के बिछुड़े मिले हैं—यह बड़े आनन्द की बात है।

नन्दराम वकील साहब से भी विदा हुआ और चलते समय उनके भी पैर छूए।

सब लोग गाड़ियों पर बैठ कर स्टेशन की ओर चले। स्टेशन पर पहुँचने

पर ज्ञात हुआ कि गाड़ी आने में केवल ४५ मिनट की देर है। रामनाथ ने सबको उतार कर प्लेटफार्म पर पहुँचाया। नन्दराम टिकट खरीदने चला गया। प्लेटफार्म पर पहुँचकर रामनाथ इधर-उधर टहलने लगे। जस्सो तथा उसकी दादी प्लेटफार्म पर पड़ी हुई एक बैंच पर बैठ गईं। ठाकुर साहब और उनके दोनों आदमी एक दूसरी बैंच पर बैठ गये।

रामनाथ टहलते हुए उस ओर गये जिस ओर जस्सो बैठी हुई थी। उन्होंने जस्सो की ओर देखा। जस्सो का मुख प्रतिभाहीन हो रहा था। एक क्षण के लिए रामनाथ और जस्सो की आँखें चार हुईं; जस्सो ने अत्यन्त निराश तथा उदास होकर अपना मुँह दूसरी ओर घुमा लिया। रामनाथ के अन्तस्तल से एक दीर्घ निःश्वास निकली।

नन्दराम टिकट लेकर आ गया। नन्दराम के आने के पाँच मिनट पश्चात् ही गाड़ी आ गई। सब लोग गाड़ी में बैठ गये। जस्सो और उसकी दादी भी ठाकुर साहब के साथ ही मर्दाने इन्टर में बिठाई गईं।

सब के बैठ जाने पर नन्दराम हाथ जोड़कर रामनाथ से बोला—बाबूजी मुझसे भूल-चूक में कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिएगा। मैं आपका एहसान इस जन्म में नहीं भूलूँगा। आपके चरणों से अलग होते हुए मुझे बड़ा कष्ट हो रहा है। मेरी इच्छा तो यही थी कि शेष दिन आप ही की सेवा में व्यतीत हों, पर ईश्वर की जो इच्छा है, वही हो रहा है।

रामनाथ एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर बोले—हाँ, ईश्वर की इच्छा तो पूरी हो ही रही है। परन्तु अब भी जब तुम्हारी इच्छा हो, बिना संकोच चले आना।

नन्दराम—हाँ, सो तो मैं यहाँ अपना घर ही समझता हूँ।

ठाकुर साहब बोल उठे—बाबूजी, एक दफे आप हमारी कुटिया पवित्र कर दीजियेगा।

नन्दराम बोला—हाँ बाबूजी, एक बार तो अवश्य आइयेगा, मेरा चित्त प्रसन्न हो जायगा।

रामनाथ ने कहा—अच्छी बात है, आऊँगा।

नन्दराम—तो पहले चिट्ठी लिख दीजियेगा—जिससे स्टेशन पर सवारी भिजवा दी जाय।

रामनाथ—अच्छी बात है।

नन्दराम—तो कब आइयेगा ?

रामनाथ—अब यह तो अवकाश पर निर्भर है, पर आऊँगा अवश्य !

उस समय गार्ड ने सीटी बजाई। रामनाथ ने ठाकुर साहब और नन्दराम से कहा—बैठ जाइए, गाड़ी जाती है।

नन्दराम रामनाथ के पैर छूने के लिए झुका। रामनाथ पीछे हट कर बोले—यह क्या, यह बातें मुझे पसन्द नहीं।

ठाकुर साहब उठे—तो हरज क्या है—आप मालिक हैं।

रामनाथ—मालिक जब थे, तब थे, अब नहीं।

नन्दराम—मैं तो अब भी आपको वैसा ही समझता हूँ।

दोनों रामनाथ से विदा होकर गाड़ी में बैठ गए। गाड़ी ने सीटी दी।

रामनाथ की दृष्टि पुनः जस्सो पर पड़ी। जस्सो अपना आधा मुख घूँघट में छिपाये थी। रामनाथ ने देखा—जस्सो उनकी ओर स्थिर दृष्टि से देख रही है। नेत्रों में आँसू भरे हुए हैं, मुख शुष्क हो रहा है। बहुत-कुछ धैर्य रखने पर भी रामनाथ के नेत्रों में आँसू उमड़ ही आये।

ट्रेन चल दी, रामनाथ का हृदय बैठने लगा। मानो उसका सर्वस्व उस ट्रेन के साथ जा रहा है—उन्होंने जेब से रूमाल निकाल कर आँखों से लगा लिया।

उधर जस्सो को ऐसा प्रतीत हुआ कि उसके प्राण वहीं रह गये और उसका निर्जीव शरीर गाड़ी में जा रहा है। उसने खिड़की पर सिर धर दिया और उसके अश्रुभार-थकित नेत्रों से सावन-भादों की वर्षा की भाँति बड़ी-बड़ी बूँदें टपकने लगीं।

१५

उपरोक्त घटना हुए छह मास व्यतीत हो गये हैं। बाबू रामनाथ इस समय इलाहाबाद में एल-एल० बी० तथा एम० ए० साथ-साथ पढ़ रहे थे। यद्यपि जस्सो को गये हुए छह महीने व्यतीत हो गये थे, परन्तु अब भी उनके हृदय में जस्सो की मूर्ति स्पष्ट विद्यमान थी। समय के इतने दिनों में भी वह किंचित्-मात्र धुँधली नहीं हुई थी। रामनाथ हृदय से यह चाहते थे, और इसके लिए चेष्टा भी करते थे कि वह जस्सो को भूल जायँ, परन्तु इसमें उन्हें सफलता

नहीं मिल रही थी। दिन में अध्ययन में लगे रहने तथा मित्रों के साथ घूमते-फिरते रहने के कारण उनको जस्सो का स्मरण नहीं होता था; परन्तु रात में शय्या पर लेटते ही उनके सम्मुख जस्सो की मूर्ति, जो ट्रेन चलते समय उन्होंने देखी थी—उनकी आँखों के सामने उपस्थित हो जाती थी। उस मूर्ति को देखकर वह व्याकुल हो जाते थे। उस ओर से अपना ध्यान हटाने के लिए वह कोई पुस्तक उठाकर पढ़ने लगते थे; परन्तु थोड़ी देर तक पढ़ने पर पुस्तक के अक्षर लुप्त हो जाते थे और पृष्ठ पर वही मूर्ति प्रस्फुटित हो उठती थी। रामनाथ को कभी-कभी अपनी इस दुर्बलता पर बड़ा क्रोध आता था। परन्तु इसके अतिरिक्त और वह कुछ नहीं कर सकते थे। जस्सो को भूलना उन्हें एक असम्भव कार्य प्रतीत हो रहा था।

एक दिन प्रातःकाल की डाक में पत्र मिला। यह पत्र कानपुर के पते पर भेजा गया था और कानपुर से उनके पिता ने उनके पास भेजा था। रामनाथ ने पत्र खोलकर पढ़ा। पत्र में लिखा था—

'श्रीमान् बाबू रामनाथ जी को चन्द्रपुर से दास नन्दराम का प्रणाम पहुँचे। आगे यहाँ सब प्रकार से कुशल है। आशा है, आप भी कुशलपूर्वक होंगे। बाबूजी, आपने हमारी कुटिया पवित्र करने का वादा किया था; पर आप अभी तक नहीं आये। क्या कारण है? क्या आप मुझे भूल गये? आप जैसे सज्जन तथा प्रेमी पुरुष से यह आशा नहीं है कि आप अपने सेवक को भूल जायँ। मेरी प्रार्थना है कि आप एक दिन के लिए यहाँ हो जायँ। आशा है आप मेरी प्रार्थना अस्वीकार नहीं करेंगे। जस्सो आपको बहुत याद करती है। चम्पा बीबी की चिट्ठी से पता लगा कि आप आजकल इलाहाबाद में पढ़ रहे हैं। मुझे आपका इलाहाबाद का पता मालूम नहीं, इसलिए मैं कानपुर के पते पर ही यह चिट्ठी भेज रहा हूँ। आशा है, वहाँ से यह आपके पास पहुँच जायगी। पिताजी आपको 'जयरामजी' कहते हैं। बाबूजी, मैं एक बार फिर प्रार्थना करता हूँ कि एक बार तो अपने दास की कुटिया पवित्र कर जाइये। जिस दिन और जिस गाड़ी से आप आवें, उसकी सूचना मुझे भेज दें, जिससे स्टेशन पर गाड़ी भेज दी जाय।''

पत्र पढ़ चुकने पर रामनाथ को पत्र का केवल एक वाक्य याद रहा—'जस्सो आपको बहुत याद करती है।' यह वाक्य दिन-भर उनके मस्तिष्क में चक्कर खाता रहा। रात को जब शय्या पर लेटे, तो पुनः पत्र निकाल कर

पढ़ा। उस वाक्य पर पहुँचकर उनकी दृष्टि रुक गई। वह बार-बार उस वाक्य को पढ़ने लगे—'जस्सो आपको बहुत याद करती है।' इस पत्र के आने के पूर्व रामनाथ के हृदय में कई बार जस्सो को देखने की लालसा उत्पन्न हुई थी; परन्तु उन्होंने इस लालसा को बलात् हृदय में दबा दिया था। किन्तु आज पत्र के उक्त वाक्य को पढ़कर उनके हृदय में जस्सो को देखने की लालसा पुनः बलवान हो उठी। इस लालसा के बलवान हो उठने का मुख्य कारण यह था कि 'जस्सो आपको बहुत याद करती है'—इस वाक्य से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि जस्सो उन्हें देखने के लिए व्याकुल है। जस्सो की व्याकुलता का ध्यान आते ही उनकी अधीरता बढ़ गई। वह अपनी लालसा का दमन कर सकते थे, अपनी इच्छाओं का खून कर सकते थे, परन्तु जस्सो की लालसा का खून करना उनके लिए एक ऐसी बात थी, जिसके ध्यान-मात्र से उनका हृदय व्यथित होने लगता था। उन्होंने सोचा—'अब मुझे वहाँ अवश्य चलना चाहिए। इसीलिए नहीं कि मैं जस्सो को देखना चाहता हूँ, वरन् इसलिए कि जस्सो मुझे देखना चाहती है। यदि मैं वहाँ न गया तो बेचारी को कष्ट होगा। वह समझेगी कि रामनाथ मुझे भूल गये। इससे उसकी क्या दशा होगी? नहीं, मैं जस्सो की दृष्टि में निष्ठुर नहीं बनूँगा। मैं अपनी निष्ठुरता से उसको व्यथित नहीं करूँगा। वह बेचारी परतन्त्र है, कहीं आ-जा नहीं सकती, परन्तु मैं इस सम्बन्ध में स्वतन्त्र हूँ। अतएव मेरा यह कर्त्तव्य है कि वहाँ केवल जस्सो को प्रसन्न करने के लिए चलूँ। आह, जस्सो को एक क्षण के लिए प्रसन्नता पहुँचाने, उसे सुखी करने के लिए मैं अपने प्राण दे सकता हूँ।'

रामनाथ रात में बहुत देर जागते रहे और इसी सम्बन्ध में सोच-विचार करने लगे। अन्त में उन्होंने चन्द्रपुर जाने का पक्का निश्चय कर लिया। प्रातःकाल उन्होंने अपने सहपाठी मित्र रामचन्द्र शर्मा से कहा—अगले सप्ताह में तीन दिन की छुट्टियों में कहीं देहात में चलना चाहिए।

रामचन्द्र ने कहा—देहात में! देहात जाकर क्या करोगे?

रामनाथ—वाह! देहात ही में प्रकृति की पूर्ण छटा देखने को मिलती है। चलो, बड़ा आनन्द रहेगा। आजकल सरसों फूली होगी, चारों ओर बसन्त दिखाई पड़ेगा।

रामचन्द्र—तो एक शर्त पर चल सकता हूँ।

रामनाथ—वह क्या है ?

रामचन्द्र—वहाँ शिकार खेलने का प्रबन्ध कर दो तो चलूँ।

रामनाथ—बस इतनी सी बात ? चलिये; वहाँ क्या कमी है। चाहे रा
दिन शिकार खेलिए। बल्कि यदि बन्दूक न हो तो वहाँ बन्दूक भी मि
सकती है।

रामचन्द्र—बन्दूक तो मेरे पास है।

रामनाथ—तो बस आप बेखटके चलियें।

रामचन्द्र—एक-आध आदमी और साथ लें लूँ।

रामनाथ—यह तुम्हारी इच्छा की बात है।

रामचन्द्र—मेरे एक मित्र हैं, वह शिकार के बड़े प्रेमी है, उनके प
रायफल है—कहो तो उन्हें भी साथ ले लूँ।

रामचन्द्र—तो बस ठीक रहा ! किधर चलोगे ?

रामनाथ—चन्द्रपुर एक गाँव है, वहीं के जमींदार मेरे मित्र हैं, उन्हीं
यहाँ चलेंगे।

रामचन्द्र—तब तो सब तरह का आराम रहेगा।

रामनाथ—और नहीं तो क्या ! मैं ऐसा बेवकूफ थोड़ा ही हूँ कि बिन
अच्छा ठिकाना हुए ऐसे जाड़े में वहाँ मरने जाऊँ।

रामचन्द्र—तब तो आनन्द-ही-आनन्द है। अब तो अपने राम सौ का
छोड़कर चलेंगे। तो किस रोज चलोगे ?

रामनाथ—शनिश्चर, इतवार, सोमवार तीन दिन की छुट्टी है। शुक्रवा
को यहाँ से चलो—या शनिवार को सबेरे चलो और सोमवार को किसी ट्रे
से लौट आओ।

रामचन्द्र—शुक्रवार को तो लेक्चर होंगे, उस दिन कैसे चल सकते हो।

रामनाथ—शाम को कोई ट्रेन जाती हो तो चल सकते हैं।

रामचन्द्र—यहाँ से कितनी दूर है ?

रामनाथ—कुल तीन स्टेशन।

रामचन्द्र—तब तो दूर नहीं है—यदि पाँच बजे तक कोई ट्रेन जाती हो
तो पहुंच सकते हैं। अच्छा, जरा टाइम टेबुल तो देखो। चन्द्रपुर स्वयं
स्टेशन है ?

रामनाथ—नहीं, स्टेशन तो दूसरा है।

यह कहकर रामनाथ ने स्टेशन का नाम बता दिया और तत्पश्चात् टाइम-टेबुल देखकर उन्होंने कहा—ठीक साढ़े चार बजे एक गाड़ी जाती है।

रामचन्द्र—तो बस शुक्रवार को इसी गाड़ी से चलो।

रामनाथ—अच्छी बात है। आज मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ, शुक्रवार को स्टेशन पर सवारी आ जायगी।

इस प्रकार रामनाथ ने चन्द्रपुर जाने का पक्का निश्चय कर लिया और नन्दराम को दिन तथा समय की सूचना पत्र द्वारा भेज दी।

१६

शुक्रवार को रामनाथ ने रामचन्द्र तथा उसके दूसरे मित्र सहित साढ़े चार बजे की गाड़ी से चन्द्रपुर के लिए प्रस्थान किया। इनके साथ केवल इनके बिस्तर और एक दोनाली बन्दूक तथा एक रायफल थी। ६ बजे के लगभग ये तीनों व्यक्ति अपने निश्चित स्टेशन पर पहुँचे। स्टेशन पर स्वयं नन्दराम दो बहेलियाँ, जिनमें पश्चिमी बैल जुते हुये थे, लिए उपस्थित था। साथ में दो लालटेनें तथा बन्दूक भी थी। नन्दराम रामनाथ को देखते ही उनके पैर छूने के लिए आगे बढ़ा। रामनाथ ने पीछे हटकर कहा—नन्दराम ! मैंने तुमसे कहा था कि यह बात मुझे पसन्द नहीं, परन्तु तुम मानते नहीं। मुझे इससे दुःख होता है।

नन्दराम हाथ जोड़कर बोला—आप मेरे मालिक···?

रामनाथ रोककर बोले—फिर वही बात ! मैं तुम्हें अपना मित्र समझता हूँ, मालिक किस चिड़िया का नाम है। ऐसी बात अब कभी मत कहना, अन्यथा मुझे दुःख होगा।

नन्दराम के पास बन्दूक देखकर रामनाथ ने कहा—यह बन्दूक क्यों लाये ?

नन्दराम—बात यह है कि रात का वास्ता है और जंगल का रास्ता-सौ दोस्त, सौ दुश्मन ! इसलिए हथियार पास रहना अच्छा होता है।

रामनाथ—बन्दूक तो हमारे साथ एक छोड़ दो-दो हैं।

नन्दराम—अब मुझे क्या मालूम था। ऐसा जानता तो न लाता।

रामनाथ ने अपने दोनों साथियों की ओर संकेत करके कहा—यह
मित्र रामचन्द्र शर्मा हैं, मेरे साथ ही वकालत पढ़ रहे हैं। और यह उनके
बाबू राधाचरण हैं, आप इलाहाबाद के रईस हैं।

रामनाथ ने दोनों सज्जनों को प्रणाम किया और बोला—मेरे बड़े भ
हैं, जो ऐसे-ऐसे बड़े आदमी मेरी कुटिया पवित्र करने आये हैं।

सब लोग बहेलियों पर बैठकर चन्द्रपुर की ओर चले। रामनाथ ने नन्द
से पूछा—तुम्हारा गाँव यहाँ से कितनी दूर है?

नन्दराम—यहाँ से दो कोस है। आधे घण्टे में पहुँच जायेंगे।

रामनाथ—भाई नन्दराम! मेरे ये दोनों मित्र शिकार के प्रेमी हैं और
शिकार खेलने के लिए ही आए हैं। इनके शिकार खेलने का प्रबन्ध कर
पड़ेगा।

नन्दराम—शिकार यहाँ बहुत है। हिरन, सुअर, बत्तख, मुर्गाबी,
इधर सवन कहते हैं, हरियल सब मिलेंगे। जमुना की तराई की ओर तेंदुए
कभी-कभी मिल जाते हैं। शिकार की कोई कमी है? चाहे दिन-रात शिक
खेलें।

रामनाथ रामचन्द्र से बोले—भाई तुम्हारा काम बन गया। अब
प्रातःकाल ही शिकार खेलो।

रामचन्द्र ने रामनाथ से कहा—और तुम नहीं खेलोगे?

रामनाथ बोले—कौन मैं? अजी राम भजो। मुझे हिंसा से घृणा है।
मैं माँस खाऊँ, न शिकार खेलूँ।

रामचन्द्र—कण्ठी बाँध ली है क्या?

रामनाथ—हृदय में कण्ठी होनी चाहिए। ऊपर से कण्ठी बाँध भी
और हृदय में दया न हुई, तो ऐसी कण्ठी पर लानत है।

रामचन्द्र—तुम कैसी क्षत्री हो?

रामनाथ—हम जैसे हैं; अपने भले हैं। यदि हिरन और चिड़िया मा
में ही क्षत्रीपन रह गया है, तो ऐसे क्षत्रीपन को दूर ही से प्रणाम है। एक
कहीं। भला चिड़िया मारने में कौन-सी वीरता और क्षत्रीपन है? हाँ,
मारो, चीता मारो तो एक बात भी है।

रामचन्द्र—शेर-चीते मिलते कहाँ हैं? मिलें तो शर्तिया मारें।

रामनाथ—सूरत देख लो तो धोती बिगड़ जाय—शेर मारना हँसी-खेल नहीं है।

रामचन्द्र—तुम तो जैसे स्वयं बोदे हो वैसे ही सबको समझते हो।

रामनाथ—हाँ, तुम्हारी तरह चिड़ियाँ मारें तो बोदे न रहें।

रामचन्द्र—तुम चिड़ियों का स्वाद क्या जानो। माँस खाते होते तो जानते।

रामचन्द्र के दूसरे साथी दूसरी बहेली से बोल उठे—यार तुम व्यर्थ बहस करते हो, इसमें क्या ? यह तो अपना-अपना सिद्धान्त और अपनी-अपनी रुचि है।

रामनाथ—बिलकुल ठीक है। मुझे माँस से स्वाभाविक घृणा है। जब मैं माँस नहीं खाता, तब व्यर्थ हत्या करने से लाभ ?

रामचन्द्र के मित्र बोले—सही है।

इसी प्रकार की बातें करते हुए लगभग पौन घण्टे के अन्दर सब लोग चन्द्रपुर पहुँच गये। बहेलियाँ नन्दराम के विशाल भवन के सम्मुख जाकर खड़ी हो गयीं। नन्दराम के पिता ठाकुर अर्जुनसिंह प्रतीक्षा कर रहे थे। बहेलियों के आने का शब्द सुनकर वह बाहर आ गये। रामनाथ ने उन्हें प्रणाम किया। अर्जुनसिंह बोले—आपको बड़ा कष्ट हुआ।

रामनाथ सहर्ष मुख से बोले—कष्ट किस बात का ? आपके यहाँ कष्ट का क्या काम ?

अर्जुनसिंह—आपकी बड़ी दया है। हम तो समझे शायद आप कष्ट के विचार से न आवें।

रामनाथ—प्रथम तो कष्ट नहीं और यदि कष्ट होता भी, तब भी आप की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था।

अर्जुनसिंह—यह आपकी बड़ी लायकी है जो आप ऐसा सोचते हैं। हम तो आपके सेवक हैं। नन्दराम ! बाबू साहबों का असबाब बड़े कमरे में पहुँचवाओ। आइये बाबूजी, आप मेरे साथ आइये।

अर्जुनसिंह आगे-आगे चले। उनके पीछे ये तीनों व्यक्ति चले। अर्जुनसिंह उन्हें एक बड़े कमरे में ले गये। कमरे में भूमि पर एक बड़ी दरी बिछाई हुई थी। एक ओर तीन निबाड़ के पलँग बराबर-बराबर पड़े हुए थे। दूसरी ओर कोने में एक मध्याकार मेज रक्खी थी और उस पर एक लैम्प रक्खा हुआ

था। मेज के पास चार कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। कमरा पक्का बना हुआ था। रामनाथ ने अपने दोनों साथियों का परिचय ठाकुर साहब से कराया। इसके उपरान्त सबने अपने-अपने कोट उतार कर खूँटियों पर टाँगे। उसी समय दो आदमी इनके बिस्तर कमरे में ले आये।

ठाकुर साहब ने उन आदमियों से कहा—तीनों बिस्तर खोल के पलंग पर बिछाय देओ। नन्दराम कहाँ है ?

एक आदमी बोला—भीतर गये हैं।

ठाकुर—अच्छा जिउरखना, तैनी कहि देओ, हाथ-मुँह धोवें खातिर गरम पानी लै आवै।

रामनाथ बोल उठे—सब आ जायगा, आप क्यों कष्ट करते हैं ? यह तो हमारा घर है, हमें जो आवश्यकता होगी माँग लेंगे।

ठाकुर साहब दाँत निकालकर बोले—हमारे ऐसे भाग्य कहाँ जो आप लोगों की सेवा करने को मिले। हमें तो इसी में सुख मिलता है।

थोड़ी देर बाद नन्दराम आया। उसके साथ एक कहार था जो कि बड़े बर्तन में गरम पानी लिए था। नन्दराम ने रामनाथ से कहा—बाबूजी, गरम पानी हाजिर है, हाथ-मुँह धो डालिए।

तीनों व्यक्तिवों ने हाथ मुँह धोया। इसके पश्चात् तीनों आदमी कुर्सियों पर बैठ गये। एक कुर्सी पर ठाकुर साहब भी बैठ गये। अर्जुनसिंह ने नन्दराम से पूछा—भोजन में क्या देर है ?

नन्दराम—देर कुछ नहीं, तैयार है।

रामनाथ अपनी रिस्टवाच देखकर बोले—अभी तो शाम ही हुई है; सात बजा है।

नन्दराम—भोजन तैयार ही है, जब आपकी इच्छा हो, कह दीजिएगा।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—तुम्हें इन बातों के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हमें जो आवश्यकता होगी, स्वयं माँग लेंगे। हाँ, ठाकुर साहब, हमारे ये दोनों मित्र शिकार के बड़े शौकीन हैं और इसी वास्ते हमारे साथ आये हैं। इसलिए शिकार खिलाने का प्रबन्ध करा दीजिए।

अर्जुनसिंह—हाँ-हाँ, शिकार जितना जी चाहें खेलें, शिकार की क्या कमी है।

रामचन्द्र बोल उठे—हम कल मुँह अँधेरे ही शिकार के लिए जाना चाहते हैं। यहाँ कोई झील है ?

अर्जुनसिंह—हाँ झील भी है। झील में सवन, बत्तख, सुर्खाब बहुत मिलेंगे। सबेरे के बजे जाइयेगा। सवन तो सूरज निकलने के पहले ही मिलेंगे।

रामचन्द्र—इसीलिए तो मुँह अँधेरे जाना ठीक है बस यही कोई चार पाँच बजे। झील यहाँ से कितनी दूर है ?

नन्दराम बोल उठा—यही कोई डेढ़-दो मील है।

रामचन्द्र—तो बस चार बजे चल देना चाहिए। (अपने साथी की ओर देखकर) क्यों भई ? उनके साथी ने कहा—हाँ बस चार साढ़े-चार बजे तक चल देना चाहिए। दिन चढ़े तक झील पर चिड़ियों का शिकार खेलेंगे, उसके बाद हिरन का शिकार होगा।

अर्जुनसिंह ने पुकारा—अलगुवा रे !

अलगुवा कमरे के बाहर ही बैठा था। अतएव वह तुरन्त सामने जाकर बोला—काहे मालिक !

अर्जुनसिंह—तनी गुड़ँतवा को गोहराय ले (पुकार ले)।

थोड़ी ही देर में एक पासी हाथ में लट्ठ लिए आ पहुँचा।

अर्जुनसिंह उससे बोला—सुनरे अँगनुवाँ। सबेरे ई बाबू लोग शिकार खेलें जैहै। एहिते सबेरे चार बजे आठ आदमी लैकें हाजिर रह्यो—समझ्यो, एहि माँ फरक न पड़े, नाहीं चरसा उड़ाय दीन जैहैं।

अँगनुवाँ बोला—बहुत अच्छा मालिक हम तीनै बजे आय जाइबे।

अर्जुनसिंह—बाबू साहबों को खूब नीकी तना (तरह) शिकार खिलायो।

अँगनुवा—मालिक सूअर का शिकार खेलें तो रात का बारह एक बजे हमारे साथ चलें—रात माँ सूअर बहुत आवत हैं।

रामचन्द्र बोले—भई, आज तो नहीं, कल रात में सुअर का शिकार खेलेंगे।

अँगनुवाँ—बहुत अच्छा सरकार ! तो मैं तीन बजे हाजिर होइजैहौं।

यह कह कर अँगनुवाँ चला गया।

नन्दराम अपने पिता से मुस्कराकर बोला—देखा सूअर को कैसी जल्दी कहा—

अर्जुनसिंह—सूअर खातिर तो सारे प्रान दीने फिरत हैं।

रामनाथ ने पूछा—क्या बात है ?

नन्दराम बोला—ये पासी सूअर का शिकार बहुत खेलते हैं। सोई इ
समय भी कहा। जानते हैं कि सूअर मारा जायेगा तो हमीं को मिलेगा।

रामचन्द्र—हाँ, ये लोग शिकार के बड़े शौकीन होते हैं। और सूअ
पर तो जान देते हैं। खैर, कल रात में इनके लिए एक-आध सूअर मा
देंगे।

अर्जुनसिंह ने कहा—कहिए तो एक बहेली भी साथ कर दी जाए।

रामचन्द्र—बहेली का क्या होगा ?

अर्जुनसिंह—शायद शिकार में आप लोग थक जाएँ तो लौटते समय उस
पर बैठकर चले आइयेगा।

रामनाथ—बोल उठे हाँ, हाँ ठीक तो है ?

रामचन्द्र—नहीं जी, बहेली की क्या आवश्यकता है ? बहेली हमारे सा
कहाँ-कहाँ फिरेगी ?

नन्दराम—नहीं, रहेगी तो आपके साथ ही, खाली मील-डेढ़ मील क
फरक रहेगा—सो भी वहाँ, जहाँ बहेली जाने की राह न होगी। जहाँ रा
होगी वहाँ आपके ही पीछे रहेगी।

रामचन्द्र ने अपने मित्र की ओर देखकर पूछा—क्यों भई क्या राय है ?

वह बोले—मुझे तो कोई आवश्यकता नहीं। मुझे तो तुम जानते ह
हो—पन्द्रह-बीस मील तक चल सकता हूँ। हाँ, तुम अपने लिए सोच लो।

रामचन्द्र—तो मैं भी कमजोर नहीं हूँ।

रामनाथ बोले—यहाँ कमजोरी और शहजोरी का प्रश्न नहीं है, आराम
का प्रश्न है। बहेली से आराम रहेगा।

नन्दराम—यह बात तो पक्की है।

रामचन्द्र बोले—अच्छी बात है, यदि कुछ अड़चन न हो तो ।

नन्दराम—अजी सरकार, अड़चन काहे की—एक क्या चार बहेली क
प्रबन्ध हो सकता है। उसमें थोड़ा खाने को भी रख दिया जायगा। जब इच्छ
हो जलपान कर लीजियेगा।

रामनाथ—यह तुमने खूब सोचा—खाने को अवश्य रख देना, नहीं मा
भूखों के मर जायेंगे।

रामचन्द्र—कौन ? इस धोखे में न रहियेगा । हम लोग हैं शिकारी, बारह घण्टे तक भूखे रह सकते हैं—और शिकार मिल जाय तो वहीं भून खाँय ।

अर्जुनसिंह हँसकर बोले—हाँ साहब; शिकारी के माने यही हैं ।

यह कहकर अर्जुनसिंह ने उसी समय बहेलवान को बुला कर कहा—देखो सवेरे चार बजे बहेली जोत के दरवाजे पर लै आयो—ई बाबू लोग शिकार खेलें जैहैं, शिकार माँ इनके साथ-साथ रहो । और सुनो, अपने खातिर खायका राख लीन्ह्यो—न जाने कब लौटब होय ।

यह सब प्रबन्ध ठीक हो जाने के पश्चात् नन्दराम ने पूछा—कहिये, भोजन मँगवाऊँ ?

अर्जुनसिंह बोल उठे—अब तो भोजन का समय हो गया । अब क्या पूछना है—मँगा लेओ ।

नन्दराम—तो क्या यहीं ले आऊँ ?

अर्जुनसिंह—यहाँ क्या लाओगे, दल्लान में आसन बिछवाओ ।

पन्द्रह मिनट के पश्चात् नन्दराम आया और बोला—चलिये भोजन आ गया ।

तीनों व्यक्ति भोजन करने गये । दालान में तीन आसन बराबर बिछे थे और उनके सामने कलईदार मुरादाबादी थाल भोजन-सामग्री से भरे हुए रक्खे थे । भोजन-सामग्री में पूरी, कचौड़ी, तीन तरह का साग, पापड़, मलाई, रबड़ी, अचार तथा रायता था । रामनाथ थाल की ओर ध्यान से देखकर बोले— बड़ा तकल्लुफ किया ।

नन्दराम—अजी सरकार तकल्लुफ हो कहाँ सकता है । शहर में जो चीजें मिलती हैं, उनके यहाँ दर्शन भी नहीं होते ।

रामचन्द्र बोल उठे—इनसे अधिक अब और क्या होगा । शहर वाले कुछ मोती थोड़ी ही चुँगते है । सच पूछो तो शहर वालों को ऐसा शुद्ध स्वच्छ भोजन नसीब नहीं होता ।

तीनों आदमियों ने भोजन करना प्रारम्भ किया । भोजन करते जाते थे और प्रशंसा करते जाते थे । रामचन्द्र बोले—घी कितना सुन्दर है ऐसा तो घी शहर में देखने को नहीं मिलता ।

रामनाथ—मलाई देखिये। ऐसी मलाई शहर में कहाँ। वहाँ तो व
अरारोट चलता है।

रामचन्द्र के साथी बोले—इन चीजों का सुख तो यहीं है।

रामनाथ—सब चीजें स्वादिष्ट बनी हैं।

रामचन्द्र—क्या बात है!

नन्दराम रामनाथ से बोला—ये सब जस्सो ने अपने हाथ से बना
है। किसी दूसरे को हाथ नहीं लगाने दिया। पाँच बजे से इसी में जु
हुई थी।

रामनाथ ने कहा—राम राम, बेचारी को बड़ा कष्ट हुआ।

नन्दराम—कष्ट! आज जैसी प्रसन्न तो जब से यहाँ आई, तब
नहीं दिखाई पड़ी। जब से उसने सुना कि आप आवेंगे तब से दिन गि
करती थी।

रामनाथ ने मन में सोचा—इस भोजन में प्रेम का भी पुट है तभी य
इतना स्वादिष्ट बना है। प्रकट रूप में वह नन्दराम से बोले—मेरी ओर
उसे बहुत-बहुत धन्यवाद दे देना।

नन्दराम—मुस्कराकर बोला—कल सबेरे उससे आपकी भेंट ही होगी
उस समय आप खुद धन्यवाद दे दीजियेगा। और उसे धन्यवाद देने
आवश्यकता ही क्या है—यह सब तो उसने आप ही के घर में सीखा है।

'कल सबेरे आपकी भेंट होगी।' इस वाक्य से रामनाथ का शरी
रोमांचित हो उठा।

भोजन करने के पश्चात् सब लोग पुनः कमरे में आ बैठे। एक नौक
तश्तरी में पान इलायची ले आया। सब ने पान खाये और परस्पर वार्ताला
करने लगे।

अर्जुनसिंह और नन्दराम भी भोजन करने चले गये। एकान्त होने प
रामचन्द्र ने पूछा—मालूम होता है यह नन्दरामसिंह कुछ दिनों आपके यहाँ र
चुका है।

रामनाथ—हाँ, यह और इसकी लड़की दोनों रह चुके हैं।

सोते समय तीनों व्यक्तियों के लिए दूध आया। दूध पीकर सब लोग ले
रहे।

रामनाथ के दोनों मित्र तो लेटते ही सो गये, परन्तु रामनाथ बड़ी देर तक जागते रहे और यह सोचते रहे कि कल जस्सो से भेंट होने पर उससे क्या कहेंगे। नन्दराम के वही वाक्य उनके मस्तिष्क में गुंजार करते रहे—आज जैसी प्रसन्न तो वह जब से यहाँ आई तब से नहीं दिखाई पड़ी। जबसे उसने सुना कि आप आवेंगे तब से रोज दिन गिना करती थी।'

रामनाथ के लिए ये वाक्य कितने मधुर थे, उनके लिए इनमें कितना सुख अन्तर्निहित था। ज्यों-ज्यों वह इन वाक्यों पर मनन करते थे त्यों-त्यों उनके हृदय में जस्सो के दर्शन करने की उत्कण्ठा बढ़ती जाती थी। अन्त में इसी प्रकार विचार करते-करते वह सो गये।

17

प्रात: काल रामनाथ सोकर उठे। रामचन्द्र तथा उनके मित्र सवेरे मुँह अँधेरे ही शिकार के लिए चले गये थे। रामनाम ने शौचादि से निवृत्त होकर स्नान किया। नन्दराम ने पूछा—बाबूजी, चाय पीजियेगा या दूध ?

रामनाथ ने कहा—चाय हो तो अच्छा है, नहीं तो दूध ही सही।

नन्दराम—चाय भी बन सकती है—मैं अभी तैयार कराता हूँ।

थोड़ी देर में चाय, थोड़ा हलुवा और कुछ मिठाई रामनाथ के सम्मुख आई। रामनाथ ने किंचित मुस्कराकर कहा—चाय के साथ हलुवे की क्या आवश्यकता थी—खाली थोड़ी मिठाई काफी थी।

अर्जुनसिंह बोले—जो इच्छा हो खा लीजिये, बाकी रहने दीजिये।

चाय पीने के पश्चात् नन्दराम ने पूछा—बाबूजी, रसोई कैसी बनवाई जाय—कच्ची या पक्की ?

रामनाथ—कच्ची बनवाओ, इस समय पक्की का क्या काम ?

नन्दराम—मैंने केवल इसलिए पूछा कि शायद आप हमारे यहाँ की कच्ची न खावें।

रामनाथ—क्यों, न खाने का क्या कारण ? अरे भाई तुम भी खत्री, हम भी खत्री—खत्री भी तो क्षत्री हैं—फिर क्या हर्ज है ?

अर्जुनसिंह—बहुत लोग इसका विचार मानते हैं, इसलिए पूछना पड़ा।

रामनाथ—मैं इतनी संकीर्णता पसन्द नहीं करता मैं स्वयं तो हिन्दू जाति मात्र के हाथ का बना हुआ भोजन खा सकता हूँ, शुद्धता तथा स्वच्छता पूर्वक बनाना चाहिए—मैं केवल दो बातें देखता हूँ—एक तो भोजन बनाने वाला हिन्दू हो और भोजन शुद्ध तथा स्वच्छ हो—बस।

अर्जुनसिंह बोले—बाबूजी खता माफ कीजियेगा—कोरी चमार भी तो हिन्दू ही हैं।

रामनाथ—हाँ हैं, परन्तु उनके यहाँ इतनी शुद्धता तथा स्वच्छता नहीं हो सकती, जितनी कि ब्राह्मण, क्षत्रियों, वैश्यों के यहाँ होती है।

अर्जुनसिंह—मान लीजिए कोई चमार खूब शुद्धता पूर्वक और सफाई के साथ बनावे तो क्या आप खा लेंगे ?

अब रामनाथ बड़े असमंजस में पड़े। यद्यपि उन्हें स्वयं ऐसा करने में कोई आपत्ति नहीं थी, परन्तु उनके हृदय में इतना आत्मबल नहीं था कि वे इस बात को एक कट्टर और छुआछूत का विचार रखने वाले हिन्दू के सामने स्वीकार कर लेते। उन्होंने कुछ क्षणों तक सोचकर कहा—बात यह है कि होना तो ऐसा ही चाहिए कि भोजन शुद्धता तथा स्वच्छतापूर्वक बनाया जाय तो बनाने वाला चाहे चमार ही क्यों न हो उसे ग्रहण करना चाहिए। आप यदि समाचारपत्र पढ़ते होंगे तो आपको यह पता अवश्य होगा कि आजकल अछूतोद्धार का आंदोलन चल रहा है और अनेकों अवसरों पर कट्टर सनातन धर्मी हिन्दुओं ने अछूतों की छुई हुई मिठाई, पान इत्यादि खाई है। ऐसी दशा में यदि मैं भी ऐसा करूँ तो कौन पाप है ? होना तो ऐसा ही चाहिए, परन्तु बात यह है कि अभी हमारा समाज इस बात के लिए पूर्णतया तैयार नहीं हुआ है, इसलिए हिचक होती है।

अर्जुनसिंह—बाबूजी, हमसे यह कभी नहीं हो सकता कि चमार का छुआ हुआ खा लें—वह चाहे कैसा ही शुद्ध व साफ हो।

रामनाथ—हाँ आपसे तो होना असम्भव है। जो काम समस्त आयु नहीं किया उसे अब इस बुढ़ापे में करने से ग्लानि मालूम होती है।

अर्जुनसिंह—जो सब करने लगें तब तो करते अच्छा भी लगे। अब जो हम ऐसा करें तो जाति बाहर कर दिये जायँ—भाई बिरादरी में हुक्का पानी बन्द हो जाय।

रामनाथ—यही तो कठिनता है। इसीलिए तो, जो इसे बुरा नहीं समझते उनका भी साहस नहीं पड़ता।

अर्जुनसिंह—जो सच पूछिये तो आजकल धर्म-कर्म सब चौपट हो गया। शहरों में लोग पम्प का पानी पीते हैं, पम्प में चमड़ा लगता है—अब बताइये पम्प के पानी में और चमार के छुए पानी में क्या फरक है। सच पूछिये तो चमार का छुआ पानी उससे कहीं अच्छा है। काहे से कि चमार तो खाली बर्तन छुवेगा पर पम्प में तो चमड़े का धोवन आता है। चमड़ा हर समय पानी में डूबा रहता है—वह पानी लोग पीते हैं।

रामनाथ—यही तो खराबी है कि लोग ऐसी बातों की तो परवा नहीं करते और यदि कोई अछूत छू लेवे तो आकाश-पाताल एक कर दें।

अर्जुनसिंह ने नन्दराम से कहा—अच्छा जाओ, कच्ची रसोई बनवाओ।

नन्दराम के जाने के पश्चात् अर्जुनसिंह ने कहा—बड़ा बुरा समय है बाबूजी! जब से अंग्रेजों का प्रसार हुआ है, तब से धर्म-कर्म उठ गया।

रामनाथ इस बात पर मन ही मन कुछ खिन्न हुए। उन्होंने सोचा अर्जुनसिंह हमें भी उन्हीं लोगों में समझते हैं जिन्होंने अंग्रेजी पढ़कर धर्म-कर्म नष्ट करने का पाप किया। उँह! समझें तो समझा करें हमने सच्चे विचार प्रकट किये, अब जो चाहे समझें। यह तो मानी हुई बात है कि ये पुराने लोग ऐसी बातें कदापि नहीं समझ सकते।

इसके पश्चात् फिर इस विषय पर कोई वार्तालाप नहीं हुआ।

दस बजे के लगभग नन्दराम ने कहा—बाबूजी, भोजन तैयार है।

रामनाथ—इतनी जल्दी?

नन्दराम—दोपहर तो होने को आई है।

रामनाथ ने पूछा—क्या अन्दर चलना होगा?

नन्दराम—जी! यहाँ इच्छा हो तो यहाँ मगा दूँ।

रामनाथ—नहीं, कच्चा भोजन यहाँ क्या मँगाओगे।

नन्दराम रामनाथ को साथ लिए हुए अन्दर पहुँचे। अन्तःपुर के प्रांगण में पहुँचते ही पहले नन्दराम की माता से साक्षात्कार हुआ। रामनाथ ने उन्हें प्रणाम किया। नन्दराम की माता ने उन्हें आशीर्वाद देकर कहा—कहो बेटा अच्छे रहे।

रामनाथ ने कहा—जी हाँ, सब आपकी दया है, आप तो अच्छी रहीं।

नन्दराम की माता—हाँ, बेटा, अभी तक भगवान की दया है। घर में सब खैरसल्ला है।

रामनाथ—घर तो मैं इधर कई महीनों से नहीं गया। चिट्ठी-पत्री आती रहती है। उनके अनुसार तो अभी तक कुशल है।

नन्दराम की माता—बड़ी खुशी की बात है। मुझे चम्पा की बहुत याद आती है—बड़ी नेक लड़की है।

रामनाथ ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया, केवल मुस्कराकर रह गये।

नन्दराम बोल उठा—अच्छा, बातें पीछे कर लेना, पहले इन्हें भोजन कर लेने दो।

नन्दराम की माता—हाँ बेटा, पहले खा लेओ।

रसोई के निकट एक दालान था। वहाँ रामनाथ के लिये आसन बिछा था। रामनाथ वहीं बिठाये गये सामने रसोई घर में जस्सो बैठी हुई थी। रामनाथ ने एक बार जस्सो को दृष्टि भरके देखा। जस्सो का शरीर कृश हो रहा था। कानपुर में उसके मुख पर सुस्वास्थ्य की जो लालिमा थी—उसका इस समय कहीं चिह्न भी नहीं था। रामनाथ ने सोचा—ऐसे स्वस्थ खुले वायु मण्डल में रहकर भी जस्सो का स्वास्थ्य अधिक अच्छा होने की अपेक्षा और उल्टा खराब हो गया—इसका क्या कारण है?" रामनाथ यह सोच ही रहे थे कि जस्सो ने नतमस्तक किये किंचित लजाते हुए पूछा—बाबूजी अच्छी तरह रहे?

रामनाथ ने कहा—हाँ, मैं तो अच्छी तरह रहा, पर मेरा स्वास्थ्य अच्छा नहीं मालूम होता—बहुत दुबली हो गई। देहात में तो स्वास्थ्य और अधिक अच्छा होना चाहिए।

जस्सो ने इसका कोई उत्तर न दिया। नन्दराम की माता बोल उठीं—जब से यह तुम्हारे यहाँ से आई तब से इसका यही हाल होता चला जा रहा है। न अच्छी तरह खाना चले न दाना।

इसी समय नन्दराम ने रसोई से भोजन की थाली लाकर रामनाथ के सामने धर दी। नन्दराम की माता भी वहीं उनके सामने थोड़ी दूर पर बैठ गईं। रामनाथ ने भोजन करना आरम्भ किया। भोजन करते हुए, उन्होंने कहा—आखिर इसका क्या कारण है?

नन्दराम की माता—क्या जाने क्या कारण है ? तुम्हारी दया से यहाँ किसी बात की कमी नहीं, कोई दुख नहीं—फिर भी न जाने क्या बात है। तुम्हारे घर की बहुत याद किया करती है।

नन्दराम—हाँ जरूर याद करती होगी—इसका उसका बड़ा प्रेम है।

रामनाथ ने इस पर कुछ नहीं कहा ?

जस्सो ने पूछा—नमक-वमक सब ठीक है ?

रामनाथ—बहुत ठीक ! बड़ा सुस्वाद भोजन बना है।

नन्दराम की माता—यह सब इसने आप ही के यहाँ सीखा है। हमारे यहाँ ऐसा कौन बना सकता है। हम तो गँवार आदमी हैं—अच्छा बुरा जैसा बना पेट भर लिया।

रामनाथ—तो क्या यह जस्सो ने ही बनाया है।

नन्दराम की माता—हाँ, इसी ने तो बनाया ही है। हम भला ऐसे कहाँ बना सकती हैं। जो भला बुरा बनाती थीं सो भी आँख के मारे छूट गया।

रामनाथ—हाँ आँखों से आपको कम दिखाई देता है।

नन्दराम बोल उठा—आँख के मारे बेचारी दुखी हैं।

नन्दराम की माता—अब तुम इतने पास बैठे हो पर तुम्हारा मुँह हमें साफ नहीं दिखाई पड़ता। खाली बोली से पहचान मिलती है।

रामनाथ—राम ! राम ! यह तो बड़े दुख की बात है। किसी डाक्टर को दिखाओ।

नन्दराम—डाक्टर को दिखाया था, पर उसने कहा कि जब तक दिखाई देना बिल्कुल बन्द न हो जाय तब तक आँखें नहीं बन सकतीं।

रामनाथ—हाँ यह तो बिल्कुल ठीक है। जब तक थोड़ा-सा भी दिखाई देता रहेगा तब तक नहीं बनेंगी।

नन्दराम की माता—अरे बेटा ऐसा न कहो। आँखे चाहे बनें चाहे न बनें पर जितना दिखाई देता है उतना ही बना रहे।

इसी प्रकार रामनाथ ने बातें करते हुए धीरे-धीरे भोजन समाप्त किया भोजन में यद्यपि स्वाद मिला पर रामनाथ की आत्मा प्रसन्न नहीं हुई। क्यों ?

जस्सो से उनका कुछ वार्तालाप न हो सका। वार्तालाप होना तो दूर वह उसे भली-भाँति देख भी नहीं सके।

18

सन्ध्या को चार बजे के लगभग रामनाथ के मित्र रामचन्द्र अपने साथी सहित शिकार से लौटे। रामनाथ ने उन्हें देखते ही मुस्कराकर पूछा—कहो, कुछ मिला ?

रामचन्द्र बोले—शिकारी लोग भला कभी खाली लौटते हैं—कुछ न कुछ ले ही आते हैं।

रामनाथ—क्या लाये ?

रामचन्द्र—दो मुर्गाबी, चार हरियल और एक हिरन।

रामनाथ—तब तो बहुत अच्छा मिला, इससे अधिक और क्या मिलता।

रामचन्द्र के दूसरे मित्र बोले—क्या कहें, साथ के गुइँत की गलती से काम बिगड़ गया, नहीं तो कम से कम आधा दर्जन मुर्गाबियाँ मिलतीं।

रामनाथ—उसने क्या किया ?

मित्र ने बताया—

उससे कहा था धीरे-धीरे बैठे-बैठे शिकार की ओर जाय। थोड़ी दूर तक वह चला गया, परन्तु न जाने क्या समझकर खड़ा हो गया। उसके खड़े होते ही सब मुर्गाबियाँ भड़भड़ा कर उड़ गईं—जो यह खड़ा न हो जाय तब तो छह-सात से कम किसी दशा में न मिलतीं ?

रामनाथ—तो फिर यह दो कैसे मिलीं ?

रामचन्द्र—इनकी मौत भी इससे मिल गई। ज्यों ही सब उड़ी त्योंही इन्होंने लगातार दो फायर किये, उसी से दो गिर गईं।

रामनाथ—ईश्वर सबकी रक्षा करता है ऐसा न हो तो आप लोग एक ही दिन सबको यमपुरी पहुँचा दें।

इसी समय आदमियों ने हिरन लाकर आँगन में डाल दिया। रामनाथ ने पहले देखा परन्तु दूसरे क्षण उस ओर से मुँह फेर लिया और कमरे में भीतर चले गये।

रामचन्द्र भी उनके साथ ही अन्दर आये और बोले—कल आप भी चलियेगा ।

रामनाथ—मैं क्या करूँगा चलके । मुझे शिकार तो खेलना ही नहीं है ।

रामचन्द्र—शिकार न खेलना, घूम ही आना ।

रामनाथ—घूमने का वहाँ कौन सा स्थान है, यह मसल है कि 'शिकारी शिकार खेलें बेवकूफ साथ-साथ फिरें, तो जनाब मैं बेवकूफ तो हूँ नहीं ।'

रामचन्द्र—शिकारियों को और शिकारियों के साथ रहने वालों को जंगल के जो सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलते हैं वे सर्व साधारण को नसीब नहीं । किसी दिन साथ चलो तो पता लगे—ऐसे दृश्य देखने को मिलें कि चित्त प्रसन्न हो जाय ।

रामनाथ—साथ में हत्या का भी दृश्य देखें—क्यों ?

रामचन्द्र—हत्या के दृश्य से आपको क्या मतलब । हम अलग रहेंगे, आप अलग । हमारे साथ तो आप रह भी नहीं सकते ?

रामनाथ—क्यों ?

रामचन्द्र—हम लोगों का कोई ठीक है, कभी कहीं, कभी कहीं दौड़ना पड़ता है, कहीं बैठे-बैठे चलना पड़ता है; कहीं लेटे-लेटे । यह सब आप कहाँ कर सकेंगे । आप तो केवल बहेली पर बैठे रहियेगा—या जहाँ खड़ी रहे—उसके आसपास घूम फिर लीजिएगा ।

रामनाथ—मैं नहीं जाऊँगा ।

रामचन्द्र—अरे यार, देहात में आये हो तो देहात का कुछ आनन्द भी तो लूटो—यहाँ पड़े रहने से क्या लाभ । चले चलना; जरा जंगल की हवा खा आना ।

रामनाथ—अच्छा विचार करके बताऊँगा ।

रामचन्द्र—विचार करने की उसमें कौन सी बात है ?

रामनाथ—चलने में कोई हर्ज नहीं है, पर यदि तुमने मेरे सामने किसी पशु-पक्षी को मारा तो मेरा जी दुखेगा ।

रामचन्द्र—यदि यह बात है तो लीजिए हम आपसे वायदा करते हैं कि आपकी आँखों के सामने हम किसी जीव का शिकार न करेंगे—चाहे हमारी खोपड़ी पर क्यों न खड़ा हो । बस ! अब तो आप चलेंगे ।

रामनाथ—देखो, यदि इच्छा हुई तो चला चलूँगा ।

रामचन्द्र—इच्छा हो या न हो, पर कल तो आपको चलना ही पड़ेगा। हम लोग तुम्हारे साथ यहाँ तक आये, तुम जरा दूर चलने में भी नाक-भौं सिकोड़ते हो । यह बात ठीक नहीं उस्ताद ।

रामनाथ—यह तो अच्छी जबरदस्ती है ।

रामचन्द्र—जबरदस्ती नहीं, चलने की बात है । जब देहात में आये हो तो जरा जंगल की बहार लूटो । शिकार नहीं खेलते तो न खेलो । मैं यह तो नहीं कहता कि तुम शिकार खेलो ।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—कहो तो सब कुछ, परन्तु जब यह आशा हो कि मैं तुम्हारी बात मान लूँगा ।

रामचन्द्र— खैर, यों ही सही ।

इसी समय रामचन्द्र के साथी भी अन्दर आ गये और उनके साथ अर्जुनसिंह तथा नन्दराम भी आये । रामचन्द्र अपने साथी से बोले—जरा इनको देखिए यह दुबके पड़े हैं, मैंने कहा कि कल तुम भी शिकार में साथ चलना तो नाक-भौं सिकोड़ने लगे ।

रामचन्द्र के साथी बोले—हाँ घूमने-फिरने में तो कोई हरज नहीं है। जंगल में बड़े-बड़े सुन्दर दृश्य देखने को मिलते हैं ।

रामनाथ—अच्छा तो चला चलूँगा—बस ! अब तो आप लोग प्रसन्न हैं ?

रामचन्द्र—हमारी प्रसन्नता और अप्रसन्नता का प्रश्न थोड़ा ही है प्रश्न तुम्हारे मनोरंजन का है । आज ही एक दृश्य इतना रमणीक और सुन्दर मिला कि मुझे उस समय तुम्हारी याद आई । मैंने इनसे कहा भी था यदि इस समय रामनाथ साथ होते और इस दृश्य को देखते तो कितने प्रसन्न होते । मनुष्य जब कोई सुन्दर चीज देखता है तो उसकी इच्छा होती है कि वह चीज उसके इष्ट मित्र भी देखें । इसलिए तुमसे कहा । आप उलटा हमारी खोपड़ी पर एहसान लादते हैं ।

रामनाथ—नहीं, एहसान लादने की कोई बात नहीं ।

अर्जुनसिंह बोल उठे—हाँ, कल आप भी जरा जंगल की हवा खा आइ-येगा—इसमें तो कोई हर्ज है नहीं ।

रामनाथ—नही ठाकुर साहब, हर्ज काहे का । बात यह है कि मैं जीवों की हत्या का दृश्य देखना पसन्द नहीं करता, इसलिए कहता था । ये लोग

साथ में होंगे तो मेरे सामने शिकार अवश्य मारेंगे। इससे मुझे दु.ख होगा—इसलिए संकोच करता था। अब इन्होंने यह वादा कर लिया है कि मेरे सामने ये शिकार नहीं खेलेंगे, अतएव अब मुझे कोई आपत्ति नहीं, मैं चला चलूँगा।

दूसरे दिन प्रात:काल तीनों व्यक्ति बहेली पर सवार होकर चले। लगभग दो मील चलने के पश्चात् सब लोग ढाक के घने जंगल के पास पहुँचे। यहाँ पर बहेली रोक दी गई। रामचन्द्र ने रामनाथ से कहा—अच्छा अब हम लोग तो शिकार के लिए जाते हैं—आपकी इच्छा हो हमारे साथ चलिए या बहेली पर रहिये।

रामनाथ—तुम्हारे साथ कहाँ-कहाँ फिरूँगा।

रामचन्द्र—आपके साथ दो आदमी रहेंगे आप हमारे पीछे मजे-मजे से चले आइये। वैसे आनन्द तो हमारे साथ रहने में ही है।

रामनाथ—आज तुमने खूब बेवकूफ बनाया है!

रामचन्द्र—क्यों, बेवकूफ क्यों बनाया?

रामनाथ—और क्या? वहाँ से यह कहके लाये कि बहेली पर बैठे रहना—यहाँ अब कहते हो कि हमारे साथ चलो।

रामचन्द्र—मैं तो केवल इतना कहता हूँ कि हमारे साथ चलने में दृश्य देखने को मिलेंगे।

रामनाथ—परन्तु तुम तो शिकार खेलोगे।

रामचन्द्र—तुम्हारे सामने नहीं मारेंगे। तुम हमारे पीछे-पीछे रहना।

रामनाथ—आज बने और काफी बने! अच्छा चलिए, अब तो फँस ही गये—जहाँ ले चलोगे चलना पड़ेगा।

रामचन्द्र मुस्कराते हुए चल दिए। रामनाथ तथा अन्य लोग उनके पीछे-पीछे चले।

गुड़ैत ने रामचन्द्र से पूछा—पहले हिरन का शिकार होई न।

रामचन्द्र—हाँ। क्यों?

गुड़ैत—ई बन माँ सुवरौ मिलत है—हुकुम होय तो सुवर का हाँका कराई।

रामचन्द्र ने रामनाथ से पूछा—क्यों भाई, सुअर का शिकार खेलने में तो तुम्हें आपत्ति नहीं। सुअर तो हिंसक जन्तु है।

रामनाथ—हाँ जंगली सुअर का शिकार करना मैं बुरा नहीं समझता। सुअर, शेर, चीता इत्यादि का शिकार खेलने में हर्ज नहीं।

रामचन्द्र ने गुड़ैत से कहा—अच्छा तो हाँका कराओ।

गुड़ैत—अच्छा तो मालिक जहाँ-जहाँ हम बताई तहाँ-तहाँ आप दूनी जने ठाढ़ (खड़े) होई जाएँ।

रामचन्द्र—चलो।

गुड़ैत ने रामचन्द्र तथा उनके साथी को दो ऐसे नाकों पर खड़ा कर दिया जहाँ से सुअरों के भागते हुए निकलने की आशा थी। इसके पश्चात् हाँका हुआ।

रामनाथ दो आदमियों के साथ एक ऊँचे टीले पर जिसके एक ओर घनी झाड़ियाँ थीं, खड़े हो गये। लगभग 20 मिनट तक लोग हो-हल्ला करते रहे; परन्तु एक भी सूअर के दर्शन न हुए।

हाँका करने वाले हाँका करते हुए रामनाथ की ओर आ रहे थे। हठात् एक किसी पशु के भागने का पद-शब्द सुनाई पड़ा। रामचन्द्र और उनके साथी ने बन्दूकें सँभाली। इसी समय एक ने चिल्ला कर कहा—गोली न चलाना—नीलगाय है।

नीलगाय रामनाथ के पास से होकर भागती हुई निकल गई। रामनाथ ने उसे स्पष्ट देखा। अब रामनाथ को भी कुछ आनन्द आया। उन्होंने चिल्लाकर कहा—अरे भाई, कोई सूअर निकालो।

लोग पुनः हाँका करते हुए आगे बढ़े। हाँका करते हुए रामनाथ के पास की घनी झाड़ियों के निकट आये और उन्होंने झाड़ियों पर लाठी मारकर हो-हल्ला किया। ठीक इसी समय रामनाथ के पास की झाड़ी के अन्दर खड़खड़ाहट हुयी। हाँका करने वालों ने रामनाथ से कहा—'मालिक होशियार इसके भीतर सूअर है।' उनका यह कथन समाप्त भी न हो पाया था कि झाड़ी के भीतर से एक जंगली सूअर तीर की तरह निकला। उसी समय रामनाथ उछल कर टीले के बिलकुल किनारे आ गये, टीले की करार पर से उनका पैर फिसला और वह टीले से, जो समतल भूमि से बारह फीट के लगभग ऊँचा था, लुढ़ककर भूमि पर आ गिरे। सूअर तेजी के साथ नाक की सीध भागता हुआ चला गया। रामनाथ उछलकर अलग न हो जाते तो सूअर निस्सन्देह उन पर आक्रमण करता। रामनाथ को गिरते देखकर उनके साथ के दोनों

आदमी दौड़ पड़े और उन्होंने उनको उठाकर खड़ा करना चाहा; पर रामनाथ खड़े न हो सके। उन्होंने करहाते हुए कहा—मेरी टाँग गाँठ पर से उखड़ गई है. मैं खड़ा नहीं हो सकता।

यह सुनते ही दोनों पासियों के चेहरे का रंग उड़ गया। एक बोला—अरे दादा यह तो बड़ा गजब भवा; ठाकुर हमारे चमड़ी उखिलाय डरिहैं।

इसी समय दनादन दो फायरों का शब्द सुनाई पड़ा।

वे दो पासी रामनाथ को उठाकर बहेली की ओर चले। बहेली पर पहुँचकर दोनों ने रामनाथ को बहेली पर लिटा दिया। इसके उपरान्त एक बोला— 'जाई हम धौर के (दौड़ के) बाबू लोगन को खबर करी।' यह कहकर वह दौड़ता हुआ चला गया। दस मिनट के पश्चात् चार आदमी सुअर की लाश टाँगे हुए आये। उनके साथ रामचन्द्र और उनके मित्र भी आये। रामचन्द्र ने दूर ही से पुकार कर पूछा—अरे क्या हुआ?

रामनाथ के साथ के पासी ने कहा—बाबूजी, ई टिलवा पर से भरभराय परे तो टांग उखड़ (उखड़) गै है।

रामचन्द्र का मुँह फक हो गया, बोले—अरे यह कैसे गिर पड़े।

पासी—सरकार जौनी झाड़ी लगे (पास) ई ठाढ़ रहैं ओही झाड़ी माँ यो सार सुअरवा बैठ रहा, जब झाड़ी खड़खड़ान तो ई कुदि के हटे सोई पाँव पिसल गा और ढनक (लुढ़क) परे। वह बड़ी खैर हुई, नहीं आज सुअरवा इन्हें लै डारता।

रामचन्द्र—यह तो बहुत बुरा हुआ हम लोग जबरदस्ती लाये थे।

पासी—तो मालिक तुम्हार कौन कसूर? तुम नीतिन (वास्ते) लाये रहा।

रामनाथ करहाते हुए बोले—अरे भाई इसमें तुम्हारा क्या अपराध? तुम व्यर्थ ही अपने को दोषी समझते हो।

रामचन्द्र—परन्तु तुम्हारी इच्छा नहीं थी, हम लोगों के कहने से आये थे। क्या कहें—ऐसा जानते तो न लाते, राम! राम! अच्छा शिकार खेला।

रामनाथ—अरे हुआ सो हुआ, अब व्यर्थ पश्चात्ताप करते हो।

गुड़ैत—गुदा सुअरवा सरऊ को फल मिलिगा।

रामचन्द्र—अरे वह तो वैसे ही मारा जाता, फल क्या मिला। अच्छा इस सुअर को तुम ले जाओ। हमारे किसी काम का नहीं सब मिलकर बाँट खाओ, हम लोग अब गाँव जाते हैं।

यह कहकर उन्होंने बहेली वाले को गाँव की ओर चलने का संकेत किया। रामचन्द्र तथा उनके मित्र उदास भाव से बहेली के पीछे-पीछे चले।

19

सब लोग यथा समय गाँव पहुँचे। एक आदमी आगे-आगे चला आया था—उसने नन्दराम तथा अर्जुनसिंह को इस दुर्घटना की सूचना दी। दरवाजे पर बहेली पहुँचते ही अर्जुनसिंह तथा नन्दराम बाहर आ गये। अर्जुनसिंह ने पहले यह प्रश्न किया—बाबूजी के साथ कौन-कौन आदमी रहे।

एक पासी आगे बढ़कर डरता हुआ बोला—मालिक हम रहे और मैंकुवा रहे।

अर्जुनसिंह—तुम इन्हें ऐसी जगह काहे ठाढ़ कीन्हें रहो, जहाँ गिरे का खटका रहा।

पासी काँपता हुआ बोला—वह तनी ऊँची जगह रहे ई मारे हुआ ठाढ़ कर दीन गे रहैं।

अर्जुनसिंह—तुमका सरऊ यौ न सूझ पड़ा कि सुअर के शिकार का मामला है, कहूँ ऐसी वैसी भाग का पड़ा तो गिरपरि हैं।

पासी मौन खड़ा रहा।

अर्जुनसिंह चिल्लाकर बोले—बोलता नहीं हरामजादे।

पासी—अब ले मालिक हम यों का जानत रहन कि ओही ठाँय-सुअर बैठ होई।

अर्जुनसिंह नन्दराम से बोले—'जाओ हमार कोड़ा ले आओ तो, नन्दराम से यह कहकर पासी से बोले—अब आज तुम्हें नीकी तना मालूम हो जाई। वह सार मैंकुवा कहाँ है?

मैंकुवा बहेली की आड़ में छिपा खड़ा था। अर्जुनसिंह की बात सुनकर हाथ जोड़े हुए सामने आया।

नन्दरामसिंह कोड़ा ले आये। अर्जुनसिंह ने नन्दराम से कहा—बाबूजी को उतार कमरे में ले जाओ।

नन्दराम से यह कहकर अर्जुनसिंह पासियों की ओर कोड़ा लेकर बढ़े। यह देखकर रामनाथ ने चिल्लाकर कहा—ठाकुर साहब ये बेचारे निरपराध हैं—इनको कुछ मत कहिये, नहीं तो मुझे दुःख होगा।

अर्जुनसिंह रामनाथ की बात सुनकर ठिठुक गये और बोले—यह इन्हीं की गलती से हुआ, ये लोग यदि आपको ठीक जगह खड़ा करते तो यह काण्ड न होता।

रामनाथ—इनका कुछ अपराध नहीं, मैंने स्वयं वह स्थान पसन्द किया था।

नन्दरामसिंह भी बोल उठा—जाने दीजिए, जो होना था, सो तो हो ही गया। जरा इधर आकर इनकी टाँगें देखिए।

अर्जुनसिंह ने पासियों से कहा—"अच्छा जाओ, ई दफा छोड़ देहत है, आगे कबहुँ ऐसी गफलत करिहौ तो खाल उड़ाय दीन जाई।' अर्जुनसिंह बहेली के पास आये और रामनाथ की टाँग देखी। इतने समय में घुटना सूज आया था। अर्जुनसिंह ने गुड़ैत को बुलाकर कहा—जा दौड़ के बुधुवा को तो बुलाय ला।

बुधुवा गाँव का अहीर था। यह व्यक्ति उखड़े तथा टूटे अंग जोड़ने के लिए आस-पास दस-पन्द्रह कोस तक विख्यात था।

रामनाथ उठाकर कमरे में लाये गये और पलंग पर लिटा दिये गये रामचन्द्र ने कहा—अब क्या होगा, उनका घुटना किस तरह बिठाया जाय।

अर्जुनसिंह—वह सब अभी हो जायगा—मैंने आदमी बुलवाया है।

रामचन्द्र—कौन आदमी ?

नन्दराम बोल उठा—हमारे इसी गाँव का आदमी है।

रामचन्द्र—वह क्या बिठायेगा। कहीं कुछ अंट-शंट कर दे तो और दिक्कत हो।

रामनाथ—अरे भई, यहाँ का आदमी क्या बिठायेगा ? यदि इलाहाबाद पहुँचने का प्रबन्ध हो जाता है, तो किसी डाक्टर को दिखाते।

अर्जुनसिंह—आप घबराइये नहीं। अभी सब हुआ जाता है। बुधुवा बड़ा होशियार आदमी है।

थोड़ी देर में बुधुवा आ गया। बुधुवा की सूरत देखकर रामचन्द्र ने मन में सोचा—यह गँवार घुटना क्या बिठायेगा।

अर्जुन ने बुधुवा से कहा—देख रे, ई बाबूजी का घुटना उखरिगा है—जरा बिठाय तो दे।

बुधुवा ने कहा—अच्छा मालिक, अबहीं बैठि जाई। जरा मैं देख लेओं।

नन्दराम बुधुवा को रामनाथ के पलंग के पास ले गया। बुधुवा ने घुटने को भली-भाँति देख-भालकर कहा—अबहीं सब ठीक होई जाई। थोड़ा कपड़ा मँगा देओ और एक हाथ भरे का डंडा।

कुछ ही क्षणों में दोनों वस्तुएँ आ गईं। बुधुवा ने अपनी क्रिया आरम्भ की।

रामनाथ ने कहा—देखो भई, अगर तुम बिठा सको तो हाथ लगाना।

बुधुवा बोला—मालिक, ऐहिमाँ है का, खाली उखरिगा है।

अर्जुनसिंह—बाबूजी, इसने टूटी हड्डी तक जोड़ दी है, यह तो खाली उखड़ा हुआ है। आप किसी बात का खटका मत कीजिए—बड़ा उस्ताद आदमी है।

यह सुनकर रामनाथ चुप हो गए। बुधुवा ने दो-तीन मिनट में ही घुटना बिठा दिया और उसके नीचे डंडा लगाकर कपड़े से खूब कसकर बाँध दिया।

अर्जुनसिंह ने पूछा—एहिमां दवा का लगाई जाई?

बुधुवा—दवाई की कौनों जरूरत नहीं होवे, खाली कड़वा तेल लगाया जाय।

अर्जुनसिंह—तो तुम्हीं आप लगाय दीन करौ।

बुधुवा—हाँ, हमहीं लगाय दीन करब।

रामनाथ—क्यों भई बुद्धू, मैं कब तक चलने-फिरने लगूँगा?

बुधुवा—आज के चौथे दिन चलै-फिरै लगिहौ।

यह कहकर बुधुवा चला गया।

रामनाथ ने अर्जुनसिंह से कहा—निस्संदेह आदमी होशियार है। बड़ा मुलायम हाथ है; मुझे मालूम ही न हुआ।

अर्जुनसिंह—बड़ा होशियार है। इधर दस-बीस कोस के गिर्द में जहाँ किसी आदमी या जानवर का कोई अंग टूटता है या उखड़ता है, यही बुलाया जाता है।

रामचन्द्र—यह तो डाक्टरों के भी कान काटता है।

अर्जुनसिंह—हाँ साहब, है तो ऐसी ही बात।

रामनाथ रामचन्द्र से बोले—क्यों भई, अब मैं तो चार दिन यहाँ से हिल

नहीं सकता । तुम आज शाम को चले जाओ, क्योंकि कल लेक्चर्स होंगे । मैं एप्लीकेशन (अर्जी) लिख दूँगा वह दे देना ।

रामचन्द्र— मैं तुम्हें अकेला कैसे छोड़कर जा सकता हूँ ?

रामनाथ—अकेला क्यों ? यहाँ तो सब अपने ही आदमी हैं ।

रामचन्द्र—हाँ, यह तो ठीक है, परन्तु मेरा जी तो नहीं मानता । मेरा तो चित्त यहीं धरा रहेगा ।

रामनाथ—यह ठीक है, किन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं । तुम्हारा जाना बड़ा आवश्यक है । तुम यदि पहुँच जाओगे तो सब ठीक हो जायेगा, अन्यथा हम-तुम दोनों 'ऐबसेन्ट' (अनुपस्थित) लिख जायेंगे । यदि तुम पहुँच जाओगे तो यह न होने पायेगा ।

रामचन्द्र—हाँ यह ठीक है पर......।

रामनाथ— तुम मेरे लिए तो कोई चिन्ता करो ही नहीं । मैं तो एक तरह से अपने घर में पड़ा हूँ । इसके अतिरिक्त कोई ऐसी बात नहीं है, जिसमें प्राणों का भय हो । पैर उखड़ गया था—बिठा दिया गया, दो-तीन रोज में ठीक हो जायगा ।

रामचन्द्र– खैर, जैसा कहो वैसा करूँ ।

रामनाथ– कहना यही है कि तुम आज शाम की गाड़ी से चले जाओ ।

रामचन्द्र—अच्छी बात है, चला जाऊँगा ।

रामनाथ– आज से चौथे दिन मैं भी इलाहाबाद पहुँच जाऊँगा ।

रामचन्द्र तथा उनके मित्र ने स्नान इत्यादि करके भोजन किया । रामनाथ ने केवल थोड़ा-सा हलुआ खाया और दूध पिया । दोपहर को तीनों व्यक्ति परस्पर वार्त्तालाप करते रहे । रामचन्द्र ने कई बार कहा क्या बतावें, सब मजा किरकिरा हो गया । आये थे आनन्द उठाने, हो यह गया । ऐसा जानते होते तो तुम्हें शिकार में कदापि न ले जाते ।

रामनाथ—यह व्यर्थ की बातचीत क्यों करते हो ? पढ़े-लिखे होकर मूर्खों की सी बातें करते हो । भविष्य में क्या होने वाला है, यह कोई नहीं जान सकता है । यदि ऐसा होता तो संसार का इतिहास, जो ऐसी-ऐसी भूलों से भरा पड़ा है जिनके कारण कि युगान्तर उपस्थित हो गया, आज कुछ और ही होता ।

रामचन्द्र के मित्र बोल उठे— यह सब ठीक है; पर यह जो कह रहे हैं,

वह भी सदैव ही कहा जाता है और कहा जायगा। जब काम बिगड़ता है तो मनुष्य सदैव यही कहता है कि यदि हम जानते तो ऐसा न करते। यह तो मनुष्य का स्वभाव है। इस कारण यदि कुछ कह रहे हैं तो कोई पाप नहीं कर रहे हैं।

रामनाथ हँसकर बोले—यह बात भी पक्की है। आपने इस समय अच्छी वकालत की।

ये लोग इसी प्रकार की बातें करते रहे। तीन बजे के लगभग रामनाथ ने नन्दराम से कहा—भई इनके लिए गाड़ी तैयार करा दो, इन्हें स्टेशन जाना है।

नन्दराम ने कहा—बहुत अच्छा, अभी तैयार होती है।

दस मिनट के अन्दर बहेली दरवाजे पर आ गई। दोनों व्यक्तियों के बिस्तर उस पर रख दिये गये। रामचन्द्र ने रामनाथ से विदा होते समय आँखों में आँसू भर कर कहा—क्या कहें मित्र, साथ आये थे-अकेले रहे जाते हो। मेरी इच्छा तो नहीं थी कि तुम्हें छोड़कर जाऊँ; पर तुम्हारी आज्ञा मान कर जा रहा हूँ।

रामनाथ किंचित् मुस्कराकर बोले—ओफ ओह ! इस भावुकता का भी कोई ठिकाना है। यह तो एक साधारण-सी बात है। समझ लो कि मुझे कोई काम लग गया, इसलिए तुम्हारे साथ नहीं चल सकता, दो दिन बाद आऊँगा।

रामचन्द्र—खैर, अब जबकि जा रहे हैं, तब तो कुछ-न-कुछ समझना ही पड़ेगा। अच्छा प्रणाम; ईश्वर करे आज के चौथे दिन इलाहाबाद में दिखाई पड़ो।

रामनाथ—निश्चय !

अर्जुनसिंह तथा रामनाथ दोनों व्यक्तियों को बहेली तक पहुँचाने आये। अर्जुनसिंह ने कहा—आपको शिकार खेलने को नहीं मिला ?

रामचन्द्र—शिकार के पीछे ही तो यह दशा हुई कि तीन आये थे, दो जा रहे हैं।

अर्जुनसिंह—हाँ, होतव्यता की बात है। अब फिर कभी आइयेगा तब खूब जी भरके खेल लीजियेगा।

रामचन्द्र—देखिये, हम तो यदि आयेंगे तो रामनाथ ही के साथ आयेंगे।

नन्दराम बोल उठा—यह आपका घर है, जब आपका जी चाहे बिना संकोच के चले आइयेगा।

रामचन्द्र—यह आप लोगों की दया है; पर हम लोगों की सदैव तो छुट्टी रहती नहीं; जब छुट्टी मिलेगी तब आ जायेंगे। अच्छा, आज्ञा दीजिए। रामनाथ की देखभाल रखियेगा। और जब चलने-फिरने योग्य हो जायें, तभी उन्हें इलाहाबाद आने दीजिएगा। ऐसा न हो कि वह सनक में आकर बीच ही में चल दें।

अर्जुनसिंह—अरे राम! राम! ऐसा कहाँ हो सकता है। आप निश्चिन्त रहिये। यहाँ उनको किसी बात का कष्ट नहीं होगा। बाबू रामनाथ जी मेरे प्राणों के साथ हैं।

दोनों व्यक्तियों ने ठाकुर साहब से विदा माँगी और बहेली में बैठकर स्टेशन की ओर चल दिये।

रामचन्द्र तथा उनके मित्र के चले जाने के पन्द्रह मिनट पश्चात् नन्दराम की माता रामनाथ को देखने आईं। उनके पीछे-पीछे जस्सो भी थी। अर्जुनसिंह तथा नन्दराम दोनों रामनाथ के पलंग के निकट एक दूसरे पलंग पर बैठे हुए थे। नन्दराम की माता ने पति को देखकर सिर का कपड़ा किंचित् आगे को खिसका लिया।

कमरे में पैर रखकर उन्होंने कहा—यह कैसे क्या हो गया? मैंने तो जब से सुना तब से जी जाने कैसा हो रहा है।

अर्जुनसिंह बोले—हुआ यही कि एक टीले पर से पैर फिसल गया और गिर पड़े। पर कोई चिन्ता की बात नहीं है। घुटना उखड़ गया था, वह बिठा दिया गया।

ठकुराइन—तो इनके साथ कोई आदमी नहीं था?

अर्जुनसिंह—था क्यों नहीं, आदमी तो एक छोड़ दो-दो थे। पर समय की बात है।

ठकुराइन—कौन आदमी थे? उन दाढ़ी-जारों को यह न सूझा कि ऐसी जगह क्यों खड़ा करें जहाँ गिरने का खटका हो।

रामनाथ ने कहा—उन बेचारों का क्या अपराध? वह क्या जानते थे कि ऐसा होगा? उन्होंने तो अपनी समझ में ऐसी जगह खड़ा किया जहाँ कोई खटके की बात नहीं थीं; पर जो होनी है, वह तो टलती नहीं।

ठकुराइन—राम ! राम ! बैठे-बिठाये रोग खड़ा हो गया। वहाँ बाबू और बबुआइन सुनेंगे तो यही कहेंगे कि लड़कों को बुलाकर टाँग तुड़वा दी; मुझे तो तबसे डर खाये जा रहा है।

रामनाथ मुस्कराकर बोले—वह सुनेंगे ही काहे को ? मैं तो उनसे यह कहूँगा नहीं।

ठकुराइन—अरे बेटा, सुनने को क्या हुआ ? ऐसी बातें छिपती थोड़े ही हैं। वह जो तुम्हारे साथ आये थे, वह कह देंगे।

रामनाथ—वह दोनों तो इलाहाबाद में रहते हैं और बिना मुझसे पूछे वह कभी नहीं कह सकते।

ठकुराइन—और कोई बात नहीं--बदनामी का डर लगता है।

रामनाथ—बदनामी काहे की, बदनामी की कौन-सी बात है ?

ठकुराइन—बात क्यों नहीं है ! लोग कहेंगे कि खबरदारी न रखी।

रामनाथ—यह सब व्यर्थ की बातें हैं।

ठकुराइन—तो अब जी कैसा है ?

रामनाथ—जी बिल्कुल अच्छा है।

रामनाथ ने जस्सो पर एक दृष्टि डाली। जस्सो का मुखमण्डल उदा. नथा मलिन था। थोड़ी देर के पश्चात् ठकुराइन जस्सो-सहित अन्तःपुर की ओर चली गई।

२०

सबेरे के आठ बज चुके थे। रामनाथ का घुटना बिठाये आज तीसरा दिन था। अब उनका घुटना प्रायः अच्छा हो गया था। उसकी सूजन जाती रही थी और पीड़ा भी नहीं थी। बुद्धू ने आज प्रातःकाल पट्टी बाँधते समय कहा था—'बाबूजी आप कल चलने-फिरने के काबिल हो जायेंगे।' इस समय रामनाथ अपनी शय्या पर बैठे हुए थे। कमरे में और कोई नहीं था। इसी समय जस्सो ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में दूध का गिलास और सरे में मिष्ठान की तश्तरी थी। शय्या के पास ही मेज रक्खी थी—उस ज पर जस्सो ने दोनों चीजें रख दीं।

रामनाथ ने एक बार चारों ओर देखकर जस्सो से कहा—जस्सो !

जस्सो उनके सम्मुख सिर झुका कर खड़ी हो गई। रामनाथ ने पुनः कहा—जस्सो !

जस्सो ने सिर झुकाये हुए कहा—जी !

"कैसी हो !" रामनाथ ने अत्यन्त स्नेहपूर्ण स्वर से पूछा।

"किसी-न-किसी प्रकार जीवित हूँ।"

"तुम बहुत दुबली हो गई हो। क्या यहाँ तुम्हें कोई कष्ट है ?"

जस्सो सिर झुकाए खड़ी रही।

रामनाथ ने पुनः पूछा —तुम्हें यहाँ क्या कष्ट है जस्सो ?

जस्सो ने एक बार ऊपर सिर उठाया और एक क्षण के लिए रामनाथ से आँखें मिलाईं; इसके पश्चात् उसने पुनः आँखें नीची कर लीं। केवल इतने ही से उसने रामनाथ की बात का उत्तर दे दिया। रामनाथ जस्सो की उस भावपूर्ण दृष्टि का मर्म समझकर तड़प गये। उन्होंने कहा – जस्सो ! मैं जानता हूँ, तुम्हें क्या कष्ट है—मुझे सब मालूम है; परन्तु क्या कहूँ। विवश हूँ। तुम्हें जितना कष्ट है, उतना ही मुझे भी है, परन्तु वह कष्ट कैसे दूर हो, यह बात समझ में नहीं आती। इसका उपाय केवल एक है और वह यह है कि हम दोनों एक दूसरे को भूलने की चेष्टा करें। हम दोनों के लिए यही बात हितकर है।

जस्सो ने सिर झुकाये हुए कहा—परन्तु यह अपने बस की बात नहीं है।

"ठीक कहती हो ! परन्तु इसके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। हम दोनों जिस परिस्थिति में हैं उससे किसी प्रकार की आशा नहीं है।"

जस्सो चुपचाप खड़ी पैर के अँगूठे से भूमि खोद रही थी।

रामनाथ कुछ क्षणों तक उसकी ओर सतृष्ण नेत्रों से ताकते रहे, तदुपरान्त पुनः बोले—क्या कहती हो जस्सो ! यदि तुमने कुछ सोचा हो तो कहो।

"मैं सोच ही क्या सकती हूँ।" जस्सो ने उसी प्रकार सिर झुकाये हुए उत्तर दिया।

रामनाथ ने एक लम्बी साँस छोड़कर कहा—ठीक कहती हो, इस सम्बन्ध में और क्या सोचा जा सकता है। कोई उपाय नहीं सूझता।

दोनों पुनः कुछ क्षण मौन रहे। हठात् रामनाथ बोल उठे—मेरा पैर ठीक

हो गया है—सम्भवतः कल मैं चला जाऊँगा। कल नहीं तो परसों तो अवश्य ही जाना पड़ेगा। अब देखो कब भेंट हो।

रामनाथ ने देखा जस्सो के नेत्र से बड़ी-बड़ी बूँदें निकल कर उसके वक्ष-स्थल पर गिर रही हैं। रामनाथ के नेत्रों में भी अश्रु आ गये। उन्होंने व्याकुल होकर जस्सो का एक हाथ अपने हाथ में ले लिया और कहा—इस प्रकार दुखी होने से क्या लाभ। ईश्वर की यही इच्छा है कि हम दोनों निर्दयी प्रेम की बलिवेदी पर भेंट हो जावें। हमारा-तुम्हारा प्रेम ईश्वर को नहीं भाया।

हठात् किसी के आने की आहट पाकर रामनाथ ने जस्सो का हाथ छोड़ दिया। जस्सो भी हटकर कुछ दूरी पर खड़ी हो गई। इसी समय नन्दराम कमरे के भीतर आया! उसने आते ही एक बेर जस्सो को और एक बेर रामनाथ को सिर से पैर तक देखा। रामनाथ ने नन्दराम के मुख को ध्यान-पूर्वक देखा। उसका मुख गम्भीर था। उसने शुष्कतापूर्ण स्वर में पूछा—आपने दूध पी लिया?

रामनाथ ने कुछ घबराकर कहा—जी नहीं, अभी तो आया ही है—अब पीता हूँ।

नन्दराम ने जस्सो की ओर देखकर कहा—अच्छा तो तू जा—भोजन-वोजन का काम देख।

जस्सो चुपचाप वहाँ से चली आई।

नन्दराम एक कुर्सी पर बैठ गया और किसी विचार में डूब गया। रामनाथ ने मिष्ठान्न खाया और दूध पिया। इसके पश्चात् एक सिगरेट सुलगाकर चुपचाप धूम्रपान करने लगे। नन्दराम उसी प्रकार सिर झुकाये गम्भीर बैठा था। रामनाथ उसके मुख को ध्यानपूर्वक देखते रहे थे—मानो उसके मुख का भाव देखकर वह उसके हृदय की बात जानने का प्रयत्न कर रहे हों। हठात् नन्दराम ने कहा—बाबूजी आपका पैर तो अब ठीक हो गया।

रामनाथ ने कहा—हाँ, ठीक तो जान पड़ता है।

इस पर नन्दराम कुछ कहने ही वाला था परन्तु रुक गया। ऐसा प्रतीत हुआ कि वह बात कहना उसने उचित नहीं समझा। रामनाथ को नन्दराम के व्यवहार में कुछ परिवर्तन प्रतीत हुआ। उन्होंने सोचा—"नन्दराम इस समय रुखाई की बातें कर रहा है। कहीं इसने मेरा और जस्सो का वार्तालाप तो नहीं सुन लिया।' यह सोचकर उन्होंने कहा—मेरा

इलाहाबाद पहुँचना आवश्यक है। मेरी इच्छा है कि कल चला जाऊँ। पैर अब अच्छा ही है।

नन्दराम ने कहा —हाँ, अब तो पैर ठीक है। बुधुवा भी कहता था कि अब बाबूजी चल-फिर सकते हैं, कोई खटके की बात नहीं। आप कल जा सकते हैं।

रामनाथ को नन्दराम का यह कथन बुरा लगा। इसके पूर्व नन्दराम रामनाथ की बात का उत्तर सदैव बड़े आदर से मुस्कराकर दिया करता था। परन्तु आज उसके प्रत्येक वाक्य में रूखापन था। रामनाथ ने सोचा—"निश्चय ही इसने हमारी बातचीत सुन ली। अब यहाँ ठहरना उचित नहीं है।" अतएव उन्होंने कहा —तो बस यह ठीक है; मैं कल चला जाऊँगा।

नन्दराम—अच्छी बात है।

रामनाथ ने सोचा—यदि इसने हमारा वार्तालाप न सुना होता तो यह कहता—अभी दो-एक दिन और ठहर जाइये।

इसके पश्चात् रामनाथ मौन रहे।

रात में जब नन्दराम शयन करने के लिए अपनी चारपाई पर पहुँचा तो उसके हृदय में एक तूफान उठ रहा था। असली बात यह थी कि जिस समय रामनाथ तथा जस्सो की बातचीत हो रही थी, उस समय नन्दराम द्वार पर खड़ा उन दोनों की बातें सुन रहा था। वह रामनाथ के कमरे में आ रहा था। द्वार के निकट पहुँचने पर उनके कान में रामनाथ के ये शब्द पड़े—हम दोनों एक दूसरे को भूलने की चेष्टा करें। 'ये शब्द सुनकर नन्दराम द्वार पर ही ठिठुक गया और उन दोनों की बातें सुनने लगा। अन्त में जब उससे अधिक न सुना गया तो उसने पैरों से शब्द करके रामनाथ को पहले सचेत किया और इसके पश्चात् कमरे में प्रवेश किया।

नन्दराम अपनी शय्या पर बैठ गया और सोचने लगा। हठात् उसके मुख से निकला—"ओफ ! मैंने 'तो समझा था कि अब मेरा जीवन शान्तिपूर्वक बीतेगा। परन्तु सच बात तो यह है कि मेरे पापों का प्रायश्चित अब आरम्भ हुआ। ईश्वर ! क्या अभी तेरी संतुष्टि नहीं हुई ? मेरे हृदय की ज्योति सोना को तूने छीन लिया, बरसों मुझे क्षमा नहीं किया। क्या मेरा अपराध इतना गुरुतर था कि उसका प्रायश्चित होना अभी बाकी रह गया है ?" इतना कह कर नन्दराम रोने लगा। थोड़ी देर तक वह बिलख-बिलख कर रोता रहा। अन्त में उसने आँसू पोंछे और अपने-ही-आप बोला—"जान पड़ता है, जो मैंने

दूसरों के साथ किया था वही मेरे साथ भी होने वाला है। जो दुख: जो कष्ट सोना के पिता को उठाने पड़े, वे ही सब मुझे भी उठाने पड़ेंगे (कुछ क्षण सोचकर) परन्तु नहीं, ऐसा नहीं हो पायेगा। सोना की और मेरी बात दूसरी थी ---मैं और वह साथ-साथ खेले थे---एक जाति के थे। मेरा यह अधिकार था कि मैं उससे प्रेम करूँ और उससे विवाह करके उसे पत्नी बनाऊँ। इस खत्री के लड़के को कोई ऐसा अधिकार नहीं। इसकी यह अनुचित अभिलाषा है, अनाधिकार चेष्टा है। मैं इसे कभी पूरी नहीं होने दूँगा। ओफ ! मैंने कितना बड़ा धोखा खाया। मैं समझता था कि इसने जो कुछ मेरे साथ उपकार किया वह इसकी सहृदयता थी, इसका दयाभाव था। मुझे क्या पता कि इस दुष्ट की नीयत खराब है। इसने जो कुछ किया वह इस अभिप्राय से कि वह जस्सो............. ! ओफ (दांत पीसकर) यदि मुझे यह ज्ञात होता तो मैं सड़क पर पड़े-पड़े मर भले ही जाता, पर इस नीच के आश्रय में कभी न रहता। भगवान जाने जस्सो का इसका यह व्यवहार कब से है---तो क्या मेरी जस्सो का इस दुष्ट ने सर्वनाश कर डाला। यदि इसने ऐसा किया हो और मुझे विश्वास हो जाय, तो मैं इसे कभी जीवित न छोड़ूँ। परन्तु मुझे विश्वास नहीं होता। रामनाथ इतना नीच नहीं है--- मेरी जस्सो भी बड़ी नेक है--- अतएव यह आशा नहीं कि सर्वनाश हुआ हो। परन्तु इसका निश्चय कैसे हो ! ओफ, मेरा सिर चक्कर खाता है। कहीं मैं पागल न हो जाऊँ। क्या करूँ ! ईश्वर---दयामय, तू इस समय मेरी सहायता कर-- दीनानाथ तुम इतने रुष्ट क्यों हो गये ! क्यों मुझे पग-पग पर जलील कर रहे हो, अब तो क्षमा करो दीनबन्धु ! अब तो मेरी ओर निहारो।

इतना कहकर नन्दराम पुन: रोने लगा। परन्तु हठात् उसके कानों में जस्सो के आगमन की आहट सुनाई पड़ी। उसने झटपट अपने आँसू पोंछ डाले और गम्भीर होकर बैठ गया। इसी समय जस्सो हाथ में दूध का गिलास लिए हुए आई। उसने आते ही कहा---"लो पिताजी, दूध पीलो ! मुझे तो डर था कि कहीं सो न गये हों।"

नन्दराम ने गिलास हाथ में लेकर एक दीर्घ निश्वाँस छोड़ते हुए कहा ---हमारे ऐसे पापी को नींद कहाँ बेटी।

जस्सो पिता की यह बात सुनकर कुछ क्षणों के लिए हतबुद्धि सी हो,

गई। परन्तु फिर सँभलकर बोली--- क्यों पिताजी आज आप ऐसी बात क्यों कहते हैं ?

नन्दराम बोला —संसार की गति बड़ी विचित्र है बेटी। जिस पर विश्वास करो वही विश्वासघात करता है।

"किसने विश्वासघात किया ?"

"किसे बताऊँ ?"

"कुछ तो बताओ।"

"वैसे ही एक साधारण बात कह रहा हूँ।"

जस्सो चुप ही रही; परन्तु उसकी तुष्टि नहीं हुई।

जस्सो ने कहा—"लो, दूध पी लो।"

नन्दराम ने दूध पी लिया। दूध पीने के पश्चात् उसने कहा –"कल रामनाथ बाबू जायेंगे।"

यह वाक्य कहकर नन्दराम ने जस्सो के मुख को ध्यानपूर्वक देखा। नन्दराम की बात सुनकर जस्सो का मुख पीला पड़ गया। उसने घबरा कर कहा---"कल चले जायेंगे ?"

"हाँ चले जायेंगे ?"

"इतनी जल्दी क्यों ?" जस्सो ने अपने को किंचित् सँभाल कर कहा।

"यहाँ कुछ रहने तो आये नहीं थे—वह तो चोट लग गई इससे इतने दिन ठहर भी गये, नहीं तो अब तक कभी के चले गये होते।"

"टाँग बिल्कुल अच्छी हो गई ?"

"हाँ, अच्छी हो गई !"

"अभी एक-दो दिन और ठहर जाते तो अच्छा था।"

"क्या आवश्यकता है। अच्छे हो गये, अब जायँ। अपना काम-काज देखें !"

जस्सो ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। उसने गिलास उठाया और वहाँ से चली गई। नन्दराम दाँत पीसकर बोला –"रामनाथ के जाने की बात सुन-कर कैसी चौंकी। अवश्य दाल में काला है। अच्छी बात है; देखा जायगा।"

इतना कहकर नन्दराम सोने का प्रयत्न करने लगा।

दूसरे दिन, प्रातःकाल होते ही, रामनाथ ने अर्जुनसिंह से कहा—ठाकुर साहब, आज मैं जाऊँगा।

ठाकुर साहब ने कहा—आज ही ? ऐसी क्या जल्दी है ? अभी एक-दो दि
और ठहर जाइये। टाँग बिल्कुल ठीक हो जाने दीजिए।

"टाँग अब बिल्कुल ठीक है।"

"अभी एक दिन और बीत जाने दीजिए। बुधुवा अभी आता होगा—
उससे पूछ लें।"

यथा समय बुधुवा आया। उसने टाँग की पट्टी खोल दी।

अर्जुनसिंह ने उससे पूछा—बुधुवा आज बाबूजी घर जाने को कह र
हैं, तुम्हारी क्या सलाह है ?

बुधुवा बोला—कोई हरज नहीं, जाय सकते हैं, अब कोई चिन्ता की बा
नहीं है।

अर्जुनसिंह ने पूछा—अभी दो-एक दिन और न चलें-फिरें तो कैसा ?

"तब भी कोई हरज नहीं।"

"मेरी समझ में तो और अच्छा है। क्यों ?"

"हाँ, है तो अच्छा !"

रामनाथ बोल उठे - ठाकुर साहब ! अब मुझे जाने ही दीजिए, नहीं मेरी
बड़ी हानि होगी। मेरी टाँग अब बिल्कुल ठीक है। अब चलने-फिरने में को
हरज नहीं—क्यों बुद्धू ?

बुद्धू ने कहा—कोई हरज नहीं, सरकार।

"तो बस आज मैं चला जाऊँगा।"

अर्जुनसिंह म्लान-मुख होकर बोले—जैसी सरकार की मर्जी। हम तो
आपके ताबेदार हैं।

इसी समय नन्दराम आ गया। अर्जुनसिंह ने नन्दराम से कहा—नन्दू
बाबूजी आज जाने को कहते हैं। मैं चाहता था कि अभी एक दिन और ठहर
जाते, पर बाबूजी नहीं मानते।

नन्दराम बोला—तो जाने दीजिए। वहाँ पहुंचना भी तो जरूरी है।

अर्जुनसिंह हतोत्साहित होकर बोले—अच्छी बात है। तो किस गाड़ी से
जाइयेगा ?

"दो बजे गाड़ी जाती है, उसी से चला जाऊँगा।"

इस प्रकार रामनाथ का जाना निश्चय हो गया। ग्यारह बजे के लगभग
रामनाथ ने भोजन किया और चलने की तैयारी करने लगे।

चलते समय नन्दराम की माता रामनाथ से मिलने आईं; जस्सो भी साथ थी। नन्दराम की माता ने कहा—अरे बेटा, ऐसे एकदम से चलने की ठान दी, अभी दो-एक रोज तो और रहते।

रामनाथ के कुछ बोलने के पूर्व ही नन्दराम बोल उठा—कुछ घर के फालतू हैं जो यहाँ पड़े रहें। यहाँ पढ़ने का हरज हो रहा है।

रामनाथ ने भी कहा—ठीक बात है—बहुत हर्ज हो रहा है, नहीं तो वैसे मेरा घर है—दो-एक दिन क्या हफ्ते पड़ा रहता।

"तो अब कब आओगे?" ठकुराइन ने पूछा।

रामनाथ ने उत्तर दिया—देखो, समय की बात है। जब समय मिलेगा आ जाऊँगा।

"हाँ, आना जरूर—ऐसा न हो यहाँ से जाकर भूल जाओ।"

"भूल कैसे सकता हूँ! आप लोगों को भूलना मेरे बस की बात नहीं।"

इतना कहकर रामनाथ ने जस्सो पर दृष्टि डाली। जस्सो चुपचाप सिर झुकाये खड़ी थी।

अर्जुनसिंह ने नन्दराम से कहा—नन्दराम, तुम बाबूजी के साथ स्टेशन जाओ।

नन्दराम ने रुखाई से कहा—अच्छा चला जाऊँगा।

रामनाथ नन्दराम सहित बहेली पर बैठकर स्टेशन की ओर चले।

रामनाथ नन्दराम के व्यवहार-परिवर्तन से बहुत व्यथित थे। वह सोच रहे थे कि—नन्दराम के व्यवहार-परिवर्तन का एक कारण यही हो सकता है कि इसने मेरी और जस्सो की बातचीत सुन ली हो। पता नहीं इसने उस वार्तालाप के क्या अर्थ लगाये हों; ऐसी दशा में अच्छा यही है कि इसकी सफाई हो जाय। ऐसा न हो कि किसी प्रकार की दुर्भावना उत्पन्न हो जाय। यदि ऐसा हुआ तो इसका परिणाम कम-से-कम जस्सो के लिए तो अवश्य ही बुरा होगा?' यह सोचकर रामनाथ ने नन्दराम से कहा—नन्दराम, कल से तुम खिन्न चित्त हो रहे हो—इसका क्या कारण है?

नन्दराम कुछ क्षणों तक रामनाथ को स्थिर दृष्टि से देखकर बोला—नहीं, खिन्न-चित्त तो नहीं हूँ।

"हो क्यों नहीं—अवश्य हो।" रामनाथ ने कहा।

नन्दराम ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

रामनाथ ने पुनः पूछा—क्या बात है? मैंने तुम्हें इतना खिन्न-मन कभी

नहीं देखा; इसलिए पूछता हूँ। मेरे साथ तुमने कभी शुष्कता का व्यवहार नह
किया, परन्तु कल से तुम्हारा व्यवहार अत्यन्त शुष्क है। इससे मुझे कितन
क्लेश हो रहा है— जानते हो ?

नन्दराम ने विस्मित होकर कहा—क्लेश हो रहा है ?

"हाँ क्लेश हो रहा है। परसों तक तुम्हारा व्यवहार बड़ा नम्र तथ
स्नेहपूर्ण था; परन्तु कल से बहुत ही शुष्क हो गया क्या इससे मुझे क्लेश
होगा। वैसे तो मुझे कोई परवाह न होती, पर इतने दिनों में कुछ स्नेह ह
गया है। इसलिए मैं कभी सहन नहीं कर सकता कि तुम्हें मेरे कारण को
कष्ट पहुँचे। यदि तुम्हारी खिन्नता का कारण मेरा कोई व्यवहार है तो मु
बतलाओ।"

नन्दराम कुछ घबराकर बोला—"नहीं आपका कोई ......।"

रामनाथ बात काटकर बोले— "यह लोकाचार रहने दो। तुम मेरे यह
बहुत दिनों तक रहे हो—मैं तुम्हारा स्वभाव अच्छी तरह जान गया हूँ
अतएव यदि तुम मुझे लोकाचार की बातों से भ्रम में डालना चाहते हो त
यह तुम्हारी बहुत बड़ी भूल है। इसलिए या तो साफ-साफ बता दो या इन्का
कर दो।"

नन्दराम बड़े असमंजस में पड़ा। यद्यपि वह स्वयम् यह चाहता था कि उ
जस्सो और रामनाथ के सम्बन्ध में सब बातें ज्ञात हो जायँ; परन्तु उसमें इतन
साहस नहीं था कि वह रामनाथ से इस सम्बन्ध में हृदय खोलकर बातची
करे। इधर रामनाथ की निर्भीकता ने भी उसे कुछ हतबुद्धि कर दिया। उस
सोचा—'यह तो इस प्रकार की बातें कर रहे थे मानो इन्होंने कोई खोटा काम
नहीं किया है। ऐसी दशा में यदि मैंने कुछ कहा और मेरी धारणा गलत
निकली तो मुझे बहुत लज्जित होना पड़ेगा।' यह सोचकर नन्दराम संकोच म
पड़ा हुआ था। उसकी यह दशा देखकर रामनाथ ने कहा—"देखो नन्दराम
हृदय की सफाई हो जाना बहुत अच्छा है; चाहे इसमें थोड़े समय के लि
कटुता ही क्यों न उत्पन्न हो जाय। परन्तु यदि तुमने मेरे सम्बन्ध में को
भ्रमपूर्ण धारणा बना ली है और उसके कारण तुम मेरे प्रति अपने हृदय म
घृणा तथा द्वेष को स्थान दे रहे हो, तो यह तुम्हारी बड़ी-भारी भूल है—मैं त
यहाँ तक कहूँगा कि तुम यह बड़ा पाप कर रहे हो। यदि इसका कोई बुर
परिणाम हुआ तो उसके उत्तरदाता भी तुम्हीं होगे। इसलिए मैं एक बा

अनुरोधपूर्वक तुमसे कहता हूँ कि अपने हृदय को मेरे सामने खोलकर रख दो। मैंने अब तक तुम्हारा उपकार ही किया है—इसलिए मुझसे तुम्हें सदा अपनी भलाई ही की आशा रखनी चाहिए। तुम इसके विपरीत कर रहे हो, यह बड़े दुःख की बात है!"

नन्दराम रामनाथ की बात सुनकर व्याकुल हो गया। रामनाथ के प्रति उसके हृदय में पुनः वही पुराना स्नेह उमड़ने लगा। उसने रामनाथ के दोनों हाथ पकड़ कर उन्हें अपने दोनों नेत्रों से लगाते हुए कहा—"मेरे स्वामी, मेरे अन्नदाता! मैं आप से कुछ भी न छिपाऊँगा—मैं अपने पेट का सब पाप बताने को तैयार हूँ, परन्तु इस समय नहीं— एकान्त में।"

रामनाथ ने बहेली हाँकने वाले की ओर देखा और यह समझकर कि उसकी उपस्थिति के कारण नन्दराम संकोच करता है—उन्होंने बहेलवान से कहा—जरा बहेली रोक देना—हम दोनों पैदल चलेंगे। बहेली तुरन्त रोक दी गई। रामनाथ के उतर पड़ने उन्होंने बहेलवान से कहा—तुम चलो, हम पीछे आते हैं।

नन्दराम बोल उठा—गाड़ी को देर तो न हो जायगी?

"नहीं, मैं इसीलिए एक घण्टा पहले चल दिया हूँ। अभी गाड़ी में इतनी देर है कि हम कम-से-कम एक घण्टा इसी स्थान पर रुक सकते हैं।

नन्दराम ने बहेलवान से कहा—तुम यहाँ छाया में बहेली रोक लो—अभी बड़ी देर है, थोड़ा ठहरकर चलेंगे। आइये बाबूजी, सामने बाग में चलकर बैठें—वहाँ एकान्त में बात होगी।

दोनों आम के बाग में पहुँचे। वहाँ बाग की मेंड़ के ऊपर दोनों बैठ गये। रामनाथ ने कहा—हाँ, अब कहो। परन्तु सच-सच कहना।

"आप से झूठ बोलूँ—यह कभी नहीं हो सकता। जब बताने पर तैयार हुआ तो सच ही बताऊँगा। कल जिस समय जस्सो आपके कमरे में दूध लेकर गयी थी, उसी समय मैं भी आपके कमरे में आ रहा था। द्वार पर से मैंने आपको कुछ कहते हुए सुना। वे शब्द ऐसे थे कि मैं तुरन्त वहीं ठिठक गया। इसके पश्चात् मैंने और भी बातें सुनीं। अन्त में जब ...।"

रामनाथ ने उसे रोककर कहा—बस अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। मैं पहले से ही यह समझे हुए था कि तुमने हम दोनों का वार्तालाप सुन लिया

है—वही बात निकली। खैर —अब मैं तुम्हें बताता हूँ कि मेरा और तुम्हारी कन्या का क्या सम्बन्ध है।

इतना कहकर रामनाथ ने आदि से लेकर अन्त तक सब बातें नन्दराम को बता दीं और अन्त में कहा—मेरा और जस्सो का शुद्ध प्रेम है—हृदय में हम एक दूसरे को चाहे जो समझते हों और चाहे जिस दृष्टि से देखते हों, पर ऊपरी व्यवहार उतना ही पवित्र तथा शुद्ध रहा है, जितना कि सगे भाई-बहिन का होता है। कहो, तुम्हें मेरी बात पर विश्वास होता है ?

नन्दराम गद्‌गद् कण्ठ से बोला—आपकी बात पर अविश्वास करना ईश्वर पर अविश्वास करना है। बाबूजी मुझे क्षमा करो—कल से लेकर आज के घण्टे भर पहले तक मेरे हृदय में आपके विरुद्ध जो-जो विचार उत्पन्न हुए, उनके लिए मुझे क्षमा कर दो। मैं बड़ा नीच हूँ।

रामनाथ—नहीं नन्दराम, क्षमा करने की कोई बात नहीं; तुमने जो कुछ किया, स्वाभाविक किया। प्रत्येक मनुष्य इस दशा में ऐसी ही बातें सोचता, जैसी कि तुमने सोचीं। इसके लिए मैं तुम्हें तनिक भी दोषी नहीं ठहराता। हाँ, यदि तुम इस समय मेरे कहने पर भी अपने हृदय की बात न बताते तो तुम अवश्य दोषी हो जाते, पर अब नहीं हो। खैर, अब तुम सब बातें जान गये—अब तुम मेरे सम्बन्ध में जो धारणा बनाओगे, उसकी मुझे शिकायत न होगी; क्योंकि तुम्हें सच्ची बातें ज्ञात हो गई हैं। अच्छा अब चलना चाहिए।

यह कहकर रामनाथ उठ खड़े हुए, नन्दराम भी चिन्तित भाव से उठा और रामनाथ के साथ-साथ आकर बहेली पर बैठ गया।

बहेली चली। नन्दराम उसी प्रकार गम्भीर बैठा था, मानों वह किसी गहरी चिन्ता में हो।

रामनाथ ने पूछा—"क्या सोच रहे हो नन्दराम ?" नन्दराम ने एक दीर्घ निश्वाँस छोड़कर कहा—"बाबूजी जान पड़ता है मेरे लिए इस संसार में सुख शान्ति नहीं। न जाने किस बुरी घड़ी में मेरा जन्म हुआ था—जब से होश सँभाला, दुख ही झेलता रहा। सोचा था कि आपके यहाँ रहकर शान्ति मिलेगी परन्तु वहाँ भी न रह पाया। फिर सोचा कि अब अपने घर आ गया—माता-पिता से सफाई हो गई—अब जीवन शान्तिपूर्वक बीतेगा; परन्तु अब भी शान्ति न मिली और दूनी अशान्ति बढ़ गई।

रामनाथ विस्मित होकर बोले—अब अशान्ति का क्या काम है नन्दराम ?

"क्या आप समझते हैं कि ऐसी दशा में मुझे शान्ति मिल सकती है ?"

"किस दशा में ?"

'किस दशा में ? इस दशा में जब मैं देखूँगा कि मेरी जस्सो, जिसके लिए मैंने गली-गली ठोकरें खाकर, अनेक तरह के कष्ट झेलकर, अपने को जीवित रक्खा; जिसका मुख देखकर मैं भिखारी दशा में भी सुखी था, जिसको सुखी देखने के लिए मैं अपने समस्त दुखों को भूल गया, मेरी वही जस्सो दुखी है।"

रामनाथ नन्दराम की बात का मर्म समझकर बोले—"परन्तु इसके लिए तुम कर ही क्या सकते हो ?"

"इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि मेरे भाग्य में सुख-शान्ति नहीं है। सच तो यह है कि मेरे पापों का प्रायश्चित अब आरम्भ हुआ है। यदि ऐसा न होता तो यह दशा क्यों होती ?"

रामनाथ ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। यथा समय दोनों स्टेशन पर पहुँच गये। इनके पहुँचने के दस मिनट पश्चात् ही गाड़ी आ गई। रामनाथ गाड़ी में बैठ गये। नन्दराम विदा होने लगा। रामनाथ ने पूछा—"मेरी ओर से अब तो तुम्हारे हृदय में कोई बात नहीं है ?"

नन्दराम ने विषादपूर्ण स्वर से कहा—कोई नहीं, बिल्कुल नहीं। आप सब निर्दोष हैं; दोष केवल मेरे भाग्य का है। मैं जानता हूँ कि यह मेरे कर्मों का फल मिल रहा है ! खैर, ईश्वर आपका भला करे। आपने यह उपकार ही किया जो मुझे सब बातें बता दीं—अन्यथा और भी अधिक कष्ट होता। मेरा अपराध क्षमा कीजिएगा और मुझे सदा अपना दास समझकर कृपा-दृष्टि रखिएगा और यह मैं आप से कहता हूँ—इसे न भूलिएगा कि जस्सो को सुखी करने के लिए मैं सब कुछ करूँगा—कोई बात उठा न रक्खूँगा; चाहे मेरे प्राण भले ही चले जायें।

यह कहकर नन्दराम रामनाथ से विदा हुआ। रामनाथ अश्रुपूरित नेत्रों से उसकी ओर ताकते रह गये।

२१

बड़े दिन (क्रिसमस) की छुट्टियों में रामनाथ कानपुर गये। वहाँ पहुँचने पर पहली बात जो उन्हें ज्ञात हुई वह यह थी कि उनके विवाह की बातचीत हो रही है। पहले-पहल यह समाचार उन्हें अपनी भगिनी चम्पा से मिला। चम्पा ने उनसे कहा—"भाईजी, आपको एक शुभ समाचार सुनाऊँ ?"

"कैसा शुभ समाचार ?" रामनाथ ने विस्मित होकर पूछा।

"मिठाई खिलाने को कहो तो सुनाऊँ ?"

"जान पड़ता है बहुत दिनों से मिठाई खाने को नहीं मिली।" रामनाथ ने मुस्कराकर कहा।

चम्पा कुछ लज्जित होकर बोली—"वाह ! क्यों नहीं, मिठाई तो रोज ही खाती हूँ।"

"तो फिर मिठाई के लिए इतनी लालायित क्यों है ?"

"वह ऐसी मिठाई है जिसके लिए लालायित हुए बिना नहीं बनता।

रामनाथ सोचने लगे—जस्सो के सम्बन्ध की बात है क्या ? मेरे लिए तो संसार में केवल वही समाचार शुभ है जो जस्सो के विषय में हो। चलते समय नन्दराम ने कहा था—जस्सो को सुखी करने के लिए मैं कुछ उठा न रक्खूँगा। कहीं उसने तो कोई सन्देश न भेजा हो।' यह सोचकर उन्होंने चम्पा से पूछा—"क्या समाचार है ? कुछ बतावेगी।"

"पहले मिठाई खिलाने को कहो।"

रामनाथ अधीर होकर बोले—"अच्छा, यदि सत्य ही शुभ समाचार हुआ तो मिठाई खिलाऊँगा।"

"बाबूजी ने मेरे वास्ते एक बड़ी सुन्दर भाभी ढूँढ़ी है।"

रामनाथ का कलेजा धड़कने लगा। उन्होंने पूछा—"कहाँ ?"

"बनारस में !" चम्पा ने चञ्चलतापूर्वक उत्तर दिया।

रामनाथ पर मानो वज्रपात हुआ। उनके मुँह से केवल इतना निकला "दुर पगली !" यह कहकर शीघ्रतापूर्वक अपने कमरे में चले आये और कुर्सी पर बैठ गये। बड़ी देर तक सोचते रहे—कभी बीच में उठकर टहलने लगते थे। इस समय वह सोच रहे थे—"जिस बात का भय था वही सामने आ गई। अब इसे कैसे टालूँ ? यदि मैंने विवाह कर लिया तो जस्सो अपने

मन में क्या कहेगी—क्या उसे मैं मुँह दिखाने योग्य रहूँगा ? कदापि नहीं। क्या करूँ ? कोई परामर्श देने वाला भी तो नहीं है। ब्रजकिशोर मेरा कच्चा चिट्ठा जानता है। वह होता तो उससे सलाह लेता। परन्तु लखनऊ कुछ दूर नहीं है; ब्रजकिशोर से मिलकर इस सम्बन्ध में सलाह लेनी चाहिए। बस यही ठीक है। कल सबेरे की गाड़ी से जाऊँगा।' यह सोचकर उन्हें कुछ ढाढ़स बँधा।

उस दिन दोपहर को भोजन करने के पश्चात् उनके पिता ने उन्हें बुलाया और कहा—रामनाथ, बनारस में तुम्हारे विवाह की बातचीत पक्की हो रही है। बाबू जगदीशप्रसाद जी वहाँ के जमींदार और रईस हैं, अपनी कन्या का सम्बन्ध करना चाहते हैं। लड़की सुन्दर और पढ़ी-लिखी है। जहाँ तक मेरा अनुमान है, बसन्त पंचमी पर टीका चढ़ जायगा और गर्मियों में विवाह हो जायगा। तब तक तुम्हारी परीक्षायें भी समाप्त हो जायेंगी—क्यों, है न ठीक।

रामनाथ ने कहा—अभी विवाह की कौन जल्दी है।

"क्यों, जल्दी क्यों नहीं, क्या बुढ़ापे में विवाह होगा ?"

"मेरी इच्छा तो यही थी कि मैं एल-एल० बी० पास कर लेता, तब विवाह होता।"

"एल-एल० बी० पास हो ही जाओगे। प्रथम वर्ष की परीक्षा तो विवाह के पहले हो जायगी। रह गया दूसरा वर्ष, सो पारसाल हो जायगा। विवाह से उसमें कुछ बाधा नहीं पड़ेगी।"

रामनाथ ने सिर झुका कर कहा—"मैं अभी विवाह नहीं करना चाहता।"

"तुम नहीं चाहते; पर हम तो चाहते हैं। चारों ओर से तुम्हारे विवाह के तकाजे हो रहे हैं। अपना-पराया जो मिलता है, वह यही कहता है कि रामनाथ का विवाह क्यों नहीं हुआ। अभी तक तो शिक्षा का बहाना था—अब जबकि तुम्हारी शिक्षा समाप्त हो रही है, तो क्या कहा जाय ?"

"मैं कोई लड़की तो हूँ नहीं जो विवाह न होने से बदनामी हो।"

बाबू श्यामनाथ हँस पड़े! हँसते हुए बोले—क्या लड़के का विवाह न होने से बदनामी नहीं होती ? यह तुमसे किसने कहा ? भले आदमियों में तो चाहे लड़का हो या लड़की—उचित समय पर विवाह न होने से बदनामी होती ही है।

"वह समय अब नहीं रहा।"

"तो अभी वह समय भी नहीं आया कि यूरोपियनों की भाँति पुरुष तीस-चालीस वर्ष तक अविवाहित रहे।"

"आपकी जैसे इच्छा हो, मैं उससे बाहर नहीं हूँ; परन्तु मेरी इच्छा तो अभी विवाह करने की नहीं है।"

"इसमें तुम्हारी इच्छा नहीं चलेगी। यह कर्त्तव्य हमारा है, अतएव इसमें हमारी इच्छानुकूल कार्य होगा।"

पिताजी की इस बात पर रामनाथ को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ—यद्यपि हृदय में पिता की इस स्वेच्छाचारितापूर्ण बात पर बहुत कुढ़े।

बाबू श्यामनाथ पुत्र को मौन देखकर बोले—"कदाचित् तुम यह समझते हो कि जाने लड़की कैसी हो; सो उसके लिए मैंने बाबू जगदीशप्रसाद को लड़की का फोटो भेजने के लिए लिखा है। सम्भवतः दो-एक दिन में फोटो आया ही चाहता है।"

रामनाथ इस बात पर कुछ न कहकर बोले—"कल जरा मैं लखनऊ जाऊँगा।" "क्यों ?"

"एक मित्र से मिलना है।"

"लौटोगे कब ?"

"कल शाम को ही लौट आऊँगा।"

"अच्छी बात है, चले जाना।"

दूसरे दिन रामनाथ सबेरे साढ़े सात बजे की गाड़ी से लखनऊ पहुँचे। ब्रजकिशोर इन्हें देखते ही बोले—"हैलो रामनाथ ! तुम यहाँ कहाँ ?"

"तुम से मिलने आया हूँ।"

"असबाब कहाँ है ?"

"असबाब-बसबाब कुछ नहीं लाया। शाम को लौट जाऊँगा।"

"कौन, अब तुम आज थोड़े ही जा सकते हो।"

"यार पहले दम तो लेने दो—आते ही लड़ने को तैयार हो गये।"

"खूब दम ले लीजिए, परन्तु मुझे दम न देना, मैं आज आपको नहीं जाने दूँगा।"

रामनाथ ने पहले हाथ-मुँह धोया, तत्पश्चात् चाय पी।

इससे निवृत्त होकर उन्होंने ब्रजकिशोर से कहा—तुमसे एक बड़े ही गम्भीर विषय पर परामर्श लेने आया हूँ।

"फरमाइये ! परन्तु पहले यह बता दीजिए कहीं से भाग कर तो नहीं आये ?"

रामनाथ हँस पड़े और बोले—तुम्हारा हँसोड़पन नहीं जाता ?

"अच्छा खैर, अब बताओ क्या बात है।"

"यह तो तुम्हें मालूम ही है कि जस्सो का मेरा प्रेम बहुत ही सुदृढ़ है।"

"तो प्रेम हो गया ?"

"प्रेम हो गया के क्या अर्थ हैं ?"

"उस समय तुम कहते थे कि तुम अभी यही नहीं जान सके हो कि जस्सो से तुम्हें प्रेम है या आसक्ति।"

रामनाथ मुस्कराकर बोले—"खूब याद रखा।"

"वह बात ही याद रखने योग्य थी।"

"खैर, यह तो मैं तुम्हें अब ठीक-ठीक नहीं बता सकता—यद्यपि मैं स्वयं यह विश्वास करता हूँ कि वास्तव में जस्सो से सच्चा प्रेम करता हूँ। परन्तु अब एक बड़ी भारी मुसीबत यह आ पड़ी है कि पिताजी मेरा विवाह कर रहे हैं।"

"बिल्कुल ठीक है—उनका कर्त्तव्य है—वह अवश्य करेंगे।"

"परन्तु मैं तो जस्सो के अतिरिक्त और किसी से विवाह नहीं करना चाहता।"

"तुम भी बेजा नहीं कहते हो।"

"अजीब आदमी हैं आप—वह भी ठीक और यह भी ठीक ?"

"निस्सन्देह ! पिताजी अपना कर्त्तव्य कर रहे हैं, और तुम जो विवाह नहीं करना चाहते—यह तुम्हारा कर्त्तव्य है।"

"परन्तु दोनों व्यक्तियों के कर्त्तव्य पूरे होना असम्भव है। इसलिए अब यह बताओ कि ऐसे अवसर पर मुझे क्या करना चाहिए ?"

"मेरे हृदय की बात पूछते हो ?"

"हाँ हृदय की बात !"

"मेरे हृदय की बात तो यह है कि अपना विवाह कर डालो।"

रामनाथ चौंक पड़े। उन्होंने ब्रजकिशोर को सिर से पैर तक देखकर कहा—"क्या चाहते हो ! विवाह कर डालूँ ?"

"हाँ, विवाह कर डालो !"

"क्यों ?"

"इसलिए कि तुम्हें विवाह करना पड़ेगा। विवाह नहीं करोगे तो क्या जन्म भर अविवाहित रहोगे !"

"हाँ, विवाह होगा तो जस्सो के साथ, अन्यथा अविवाहित रहूँगा।"

ब्रजकिशोर मुस्कराने लगे। रामनाथ ने पूछा—"क्यों, आप मुस्कराते क्यों हैं ?"

"आप बातें ही ऐसी करते हैं। क्या आप समझते हैं कि जस्सो से आपका विवाह होना सम्भव है ?"

"क्यों, सम्भव होने को क्या हुआ ?"

"व्यर्थ बात है। जस्सो से आपका विवाह कभी नहीं होगा—यह आप नोट कर लीजिए।"

"क्यों ?"

"आप खत्री, वह ठाकुर ! ऐसी दशा में विवाह कैसे होगा ?"

"खत्री भी तो ठाकुर ही हैं।"

"हुआ करें; पर परस्पर विवाह नहीं होते।"

"हाँ, होते तो नहीं हैं।"

"इसके अतिरिक्त न तो आपके माँ-बाप और न उसके माँ-बाप यह स्वीकार करेंगे कि अपने भाई-बिरादरी को छोड़ कर अन्य जाति वाले से विवाह करें।"

"परन्तु एक बात है उस्ताद। महीना भर के लगभग हुआ मैं नन्दराम के गाँव गया था। वहाँ एक बड़ी मार्के की घटना हुई।"

ब्रजकिशोर ने उत्सुकतापूर्वक पूछा—"वह क्या ?"

रामनाथ ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

ब्रजकिशोर ने कहा—"ओफ ओह ! यहां तक नौबत पहुँच गई।"

रामनाथ मुस्कराकर बोले—"हाँ मित्र, परन्तु मैंने भी कितने जीवट का काम किया, न कहोगे !" नन्दराम से सब कह दिया।

"निस्संदेह बड़े साहस का काम किया और यह अच्छा हुआ, अन्यथा नन्दराम तुम्हारा शत्रु हो जाता ।"

"हाँ और क्या—यही सोचकर मैं तो जान पर खेल गया। हाँ तो, नन्दराम ने स्टेशन पर मुझसे विदा होते समय कहा था—'जिसमें जस्सो सुखी होगी मैं वही करूँगा।' इसके तुम क्या अर्थ लगाते हो ?"

"इसके अर्थ तो यही हुए कि यदि जस्सो केवल तुमसे विवाह करके सुखी हो सकती है, तो नन्दराम उसका विवाह तुम्हारे ही साथ करेगा।"

"अब कहिये, ऐसी दशा में मैं विवाह कैसे करलूँ। आज मैं विवाह कर लूँ और कल नन्दराम जस्सो का विवाह मेरे साथ करने को तैयार हो जाय तो फिर क्या होगा !"

ब्रजकिशोर हँस पड़े, बोले—"ये सब हवाई किले हैं। जब तक नन्दराम के पिता जीवित हैं, तब तक आपका और जस्सो का विवाह असम्भव है। इसलिए, आपके लिए सबसे उत्तम मार्ग यह है कि आप विवाह कर डालें और जस्सो को बिलकुल भूल जायँ।"

रामनाथ ब्रजकिशोर की बात पर विचार करके बोले—जस्सो को भूल जाऊँ ! यह तो इस जन्म में नहीं होगा। और मैं चाहे भूल भी जाऊँ, पर जस्सो भी मुझे भूल सकेगी, इसमें मुझे सन्देह है।

"सब भूल जायगी। इधर आप जहाँ नववधू के प्रेम में फँसे वहाँ आप भूल जाएँगे और उधर वह जहाँ अपने पति से मिली वह भी भूल जायेगी।"

"किससे मिली, अपने पति से ?"

"हाँ और क्या—आखिर जस्सो का भी तो ब्याह कहीं-न-कहीं होगा ही, क्वाँरी तो बैठी नहीं रहेगी।

"बस रहने दो ! मुझसे यह बात नहीं सुनी जाती। जस्सो का विवाह किसी दूसरे से हो, यह बात मैं सुनना तक नहीं चाहता।"

ब्रजकिशोर मुस्कराकर बोले—"सुनी जाय या न सुनी जाय, परन्तु होगा अवश्य।"

"मैं आया था तुमसे सलाह लेने—सोचा था कोई उपाय बताओगे, सो तुम उल्टा पाठ पढ़ा रहे हो।"

"भाई जो सच्ची बात होगी वही कहूँगा—तुम्हारी तुष्टि के लिए ऊट-पटाँग तो बकूँगा नहीं।"

रामनाथ हतोत्साहित होकर बोले—"यह तो तुम कुछ अच्छी बात नहीं बता रहे हो।"

"तो फिर आप क्या चाहते हैं? घर में रहोगे तो बिना विवाह किये बच नहीं सकोगे। यदि विवाह न करना चाहोगे, तो घर छोड़ना पड़ेगा। सो इसकी सलाह मैं तुम्हें कदापि न दूँगा। नन्दराम का उदाहरण तुम्हारे सामने है। यद्यपि वह अपनी प्रेमिका को पा गया परन्तु सब कर्म हो गये और प्रेमिका भी नहीं रही। उसने तो खैर अपनी प्रेमिका पा ली थी, परन्तु घर छोड़ने पर भी तुम्हें जस्सो नहीं मिलेगी। तुम अकेले ही चाहे जहाँ चले जाओ, पर जस्सो को साथ नहीं ले जा सकते—वह तुम्हारे बस के बाहर की बात है। इसलिए भाई साहब, यह इश्कबाजी छोड़िए—यह आपके बूते का रोग नहीं है। इसमें वही पड़ सकता है, जो माँ-बाप, घर-द्वार, लाज-शरम सबको तिलांजलि दे दे। आनन्द से घर जाकर बिवाह करो और भले आदमियों की तरह जीवन में प्रविष्ट हो जाओ।

"परन्तु जस्सो की क्या दशा होगी?"

"दशा क्या होगी—वह भी सब कर लेगी। इसके अतिरिक्त वह कर ही क्या सकती है। वह तो आपसे अधिक परतन्त्र है।"

रामनाथ एक दीर्घ-निश्वास खींचकर बोले—"पर इस हृदय को कैसे समझाऊँ, यह नहीं मानता।"

"नहीं मानेगा तो ज़लील भी होगा।"

"दो व्यक्ति मेरे अनुकूल हैं—एक तो स्वयं जस्सो, दूसरे उसके पिता। इससे कुछ आशा होती है कि कदाचित् कभी ऐसा समय आ जावे तो मेरा उसका विवाह हो सके।"

"परन्तु आपके विरुद्ध कौन-कौन है—यह भी सोचा है? आपके प्रतिकूल आपकी और उसकी जाति-भिन्नता है, नन्दराम का पिता और उसकी माता है। इधर आपके माता-पिता हैं जो आपके प्रतिकूल हैं। इसके अतिरिक्त क्या आप समस्त आयु प्रतीक्षा करेंगे?"

"हाँ, यह तो तुम्हारा कहना ठीक है; परन्तु"—

"परन्तु क्या? अच्छा तो यदि आपकी समझ में यह बात नहीं आती, तो जाइये जस्सो को किसी युक्ति से उड़ा लाइये—बन्दे का घर हाजिर है,

यहाँ लाकर उससे विवाह कीजिए। नन्दराम की जीवनी को दोहरा दीजिए। देखा जायगा—कहो अब तो तुम्हारे मन की बात कह दी।

रामनाथ लम्बी साँस खींचकर बोले—"यह भी तो मुझसे नहीं हो सकता—कठिनता तो यही है।"

"यह भी नहीं हो सकता, वह भी नहीं हो सकता—तो फिर हो क्या सकता है। विवाह न करोगे—बस यह हो सकता है; पर मैं कहता हूँ कि यह भी तुमसे न हो सकेगा। तुम विवाह अवश्य करोगे।"

रामनाथ ने मुस्कराकर कहा—"सम्भव है।"

"तो बस, जो सम्भव है वही होगा।"

रामनाथ मित्र के इस वाक्य पर बहुत हँसे और बोले—"यह अच्छी कही—यह भी सम्भव है कि मैं विवाह न करूँ।"

ब्रजकिशोर ने सिर हिलाते हुए कहा—"सम्भव तो एक ही बात हो सकती है।"

रामनाथ ब्रजकिशोर के मुख के पास अपना मुख लाकर बोले—नहीं, एक बात और भी सम्भव हो सकती है। वह तुम्हें नहीं सूझी—मैं तुम्हें बताता हूँ। वह बात यह है कि यह भी सम्भव हो सकता है कि मेरा और जस्सो का विवाह हो जाय। यदि प्रकट नहीं तो गुप्त रूप से ही सही। जब हम विवाह सूत्र में बँध जायेंगे, तब मुझे विवाह-सम्बन्धी बातें प्रकट कर देने में कोई भी भय न होगा। उस समय जो भी परिणाम होगा उसे मैं झेल लूँगा।

ब्रजकिशोर मुस्कराकर बोले—परन्तु जस्सो से विवाह हो कैसे? प्रश्न तो यह है।

"यदि जस्सो का पिता चाहे तो हो सकता है।"

रामनाथ की यह बात सुनकर ब्रजकिशोर विचार में पड़ गये। कुछ देर पश्चात् बोले—"हाँ" यदि पिता चाहे तो हो सकता है; पर मुझे आशा नहीं कि वह चाहेगा।"

"जस्सो को सुखी करने के लिए वह सब कुछ कर सकता है। यदि उसे विश्वास हो जाय कि जस्सो केवल मेरे साथ विवाह करके सुखी हो सकती है तो वह अवश्य विवाह करने पर तैयार हो जायगा। अब केवल प्रश्न यह है कि वह गुप्त रूप से तैयार होगा या नहीं।"

"उसे यदि विवाह करना होगा तो कदाचित् तैयार भी हो जाय। यदि वह अपने माता-पिता को राजी कर सका, तब तो उसे गुप्तरूप से विवाह करने की कोई आवश्यकता न रहेगी। परन्तु मुझे इसमें सन्देह है कि उसके माता-पिता राजी हो जायेंगे। इसलिए केवल एक ही उपाय है कि यदि नन्दराम गुप्तरूप से विवाह करना चाहे तो हो सकता है।"

"गुप्तरूप से ठीक भी होगा; क्योंकि नन्दराम चाहे अपने माता-पिता को उद्यत कर भी ले, पर मैं कदाचित् ही अपने पिता को राजी कर सकूँगा।"

"हाँ, यह बात भी पक्की है। परन्तु भाई गुप्तरूप से विवाह करने में भी कोई परिणाम नहीं निकलेगा।"

"उस दशा में मैं सब कुछ सहन कर लूँगा। अधिक-से-अधिक यह होगा कि पिताजी मुझे त्याग देंगे—मैं अलग हो जाऊँगा।"

ब्रजकिशोर ने आश्चर्य से नेत्र विस्फारित करके कहा—"तो जस्सो के लिए तुम अपने माता-पिता को छोड़ दोगे?"

"मैं क्यों छोड़ूँगा—छोड़ेंगे तो वे ही—मैं अपने आप तो अलग नहीं होऊँगा।"

"यह एक ही बात है। अलग होने का कारण तो तुम्हीं उत्पन्न करोगे।"

"हाँ, इससे तो मैं इन्कार नहीं कर सकता।"

इसके पश्चात् दोनों कुछ क्षणों तक मौन बैठे रहे।

तदुपरान्त रामनाथ बोले—"यदि नन्दराम से बातचीत हो सके तो कुछ उपाय निकल सकता है।"

"तो नन्दराम से बातचीत करके देख लीजिए—अरमान क्यों रह जाय।"

"तो मेरा बात करना ठीक न होगा—इस कार्य को कोई दूसरा करे तो ठीक है।"

"तो किसी दूसरे से कहलवाओ।"

"तुम्हारे अतिरिक्त और कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो मेरा यह रहस्य जानता हो। यदि तुम चाहो तो कर सकते हो।"

"कौन मैं? यार मुझे इस झगड़े में मत डालो।"

"देखो ब्रजकिशोर—मेरे घनिष्ठ मित्र तुम्हीं हो। तुम्हारे अतिरिक्त इस विषय में और कोई मेरी सहायता नहीं कर सकता। यदि तुम मेरी सच्ची सहायता करना चाहते हो तो तुम यह काम अपने हाथ में लो।"

ब्रजकिशोर विचार में पड़ गये। थोड़ी देर के पश्चात् बोले—"मैं व्यक्तिगत रूप से तो इसके विरुद्ध हूँ; परन्तु केवल तुम्हारे कहने से मैं ऐसा कर सकता हूँ।"

"खैर किसी तरह करो अवश्य—यही मेरी प्रार्थना है।"

"नन्दराम से कहाँ भेंट हो सकती है ?"

"उसके गाँव में।"

यह कहकर रामनाथ ने नन्दराम के गाँव का पूरा-पूरा पता बता दिया। ब्रजकिशोर बोले—"तो मुझे उसके गाँव जाना पड़ेगा।"

"हाँ, हाँ, कोई खटके की बात नहीं है। परेशानी तो तुम्हें कुछ अवश्य होगी।"

"परन्तु उन लोगों से मेरा कोई परिचय नहीं है।"

"चिट्ठी लिख दूँगा—परिचय हो जायगा।"

"वहाँ जाऊँ किस बहाने से ?"

"शिकार खेलने के बहाने से। बन्दूक तो तुम्हारे पास है ?"

"हाँ, बन्दूक तो है।

"तो बस, बन्दूक साथ लेते आना। वहाँ पहुँचकर अस्वस्थता का बहाना करके शिकार न खेलना—झगड़ा खतम। यह सब नन्दराम के पिता के कारण करना पड़ेगा, अन्यथा कोई आवश्यकता न थी। नन्दराम से एकान्त में यह सब वृत्तान्त कहना—और उसका उत्तर लेकर चले आना।"

"अच्छी बात है—जैसा कहोगे करना पड़ेगा। अच्छा जाऊँ कब ?"

"यह तुम्हारी सुविधा पर निर्भर है। परन्तु जहाँ तक जल्दी हो, अच्छा है।"

"अभी मेरी चार-पाँच दिन छुट्टी है। कहो तो कल चला जाऊँ ?"

रामनाथ प्रसन्न होकर बोले—"बहुत उत्तम ! कल चले जाओ।"

इसी समय ब्रजकिशोर के नौकर ने आकर कहा—"खाना तैयार है।"

"दोपहर को नन्दराम के नाम चिट्ठी लिख देना—मैं कल चला जाऊँगा।"

२२

शाम के चार बजे के लगभग ब्रजकिशोर चन्द्रपुर ग्राम के स्टेशन पर उतरे। उनके साथ एक नौकर था—जो उनका बिस्तर और बन्दूक लिये हुए था। स्टेशन से उन्होंने चन्द्रपुर [illegible] के लिए [illegible] किया और पाँच बजे [illegible] पहुँच गये। उस समय अर्जुनसिंह अपनी चौपाल पर बैठे थे। ब्रजकिशोर सीधे चौपाल में चले गये। अर्जुनसिंह से उन्होंने पूछा—"ठाकुर अर्जुनसिंह आप ही हैं ?"

अर्जुनसिंह ने उन्हें सिर से पैर तक देखकर कहा—"जी हाँ, कहिए।"

"कानपुर के बाबू रामनाथ ने मुझे भेजा है।"

"अच्छा !" कहकर अर्जुनसिंह उठे और बोले—"आइये।"

ब्रजकिशोर का नौकर बिस्तर लिये उनके पीछे था। उसकी ओर देखकर कहा—"आपके साथ है न ?"

ब्रजकिशोर के "हाँ" कहने पर अर्जुनसिंह ने अपने एक आदमी से कहा "जिउराखन—जाओ, कमरा खोलो और बिस्तर रखवाओ और नन्दराम को खबर करो। कहना, बाबू रामनाथ के पास से एक बाबू आये हैं (ब्रजकिशोर से) आप इधर निकल आइये—इस कुर्सी पर बैठ जाइए।"

ब्रजकिशोर चौपाल में पड़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गये। जिउराखन उनके नौकर को साथ ले गया। थोड़ी देर के पश्चात् नन्दराम आ गया। उसने ब्रजकिशोर को देखकर मुस्कराते हुए कहा—"अहो, बाबूजी हैं—कहिये सब आनन्द !"

ब्रजकिशोर मुस्कराकर बोले—"तुमने मुझे पहचान लिया ?"

"हाँ, कानपुर में बाबूजी के यहाँ एक बार आपको देखा था। आपने एक बार मुझसे हालचाल पूछा था।"

"ठीक है ! खूब याद रक्खा—मैं तो समझता था कि शायद भूल गा होगे।"

नन्दराम दाँत निकाल कर बोला—"वाह ! आपको कैसे भूल जाऊँगा— आपसे तो घण्टा भर बातचीत हुई थी।"

ब्रजकिशोर ने जेब से रामनाथ की चिट्ठी निकालकर दी। चिट्ठी हिन्दी में थी। नन्दराम ने पढ़ी। चिट्ठी में लिखा था—"प्रिय नन्दरामसिंह जयरामजी

की। मैं आजकल कानपुर हूँ—बड़े दिन की छुट्टियों में घर हो आया हूँ। मेरे मित्र बाबू ब्रजकिशोर तुम्हारे गाँव में शिकार खेलने के लिए आते हैं। आशा है, तुम उनका समुचित आदर-सत्कार करोगे। यहाँ सब प्रकार कुशल है। अपने पिताजी-माताजी से मेरा प्रणाम कह देना। चम्पा बीबी जस्सो को राम-राम कहती है। यहाँ के योग्य जो कार्य हो निस्संकोच लिखना। भवदीय—रामनाथ।

नन्दरामसिंह ने चिट्ठी अपने पिता को भी सुनाई और तत्पश्चात् ब्रजकिशोर से कहा—"आपका घर है, जब तक जी चाहे रहिये। और बाबूजी की चिट्ठी की क्या आवश्यकता थी—आप वैसे भी आ सकते थे।"

ब्रजकिशोर बोले—"मैं समझा शायद भूल गये होंगे और दूसरे, चिट्ठी तो वह वैसे भी लिखते—वहाँ के हाल-चाल की सूचना तो आपको देते ही।"

अर्जुनसिंह ने नन्दराम से कहा—"अच्छा जाओ, बाबूजी को ले जाओ, कपड़े-वपड़े उतारें—सफर के थके-माँदे आ रहे हैं।"

नन्दराम बोला—"चलिए बाबूजी, कमरे में चलिए।"

ब्रजकिशोर नन्दराम के साथ हमारे पूर्व-परिचित कमरे में पहुँचे। ब्रजकिशोर ने कमरे को देखकर मन में सोचा—"इसी कमरे में. प्रेमलीला का भण्डफोड़ हुआ था।"

रात में भोजन करने के पश्चात् ब्रजकिशोर के पास नन्दरामसिंह और अर्जुनसिंह आकर बैठे। अर्जुनसिंह ने पूछा—"शिकार के लिए सबेरे जाइयेगा ?"

ब्रजकिशोर एक क्षण सोचकर बोले—"कल तो नहीं जाऊँगा ! रास्ते में ट्रेन पर उतरते-चढ़ते पैर में मोच आ गई, इससे चलमें में पैर दर्द करता है।"

अर्जुनसिंह मुँह बनाकर बोले—"राम ! राम ! आपसे बाबू रामनाथ ने बताया होगा—उनका यहीं घुटना उखड़ गया था।"

"हाँ, वह सब उन्होंने बताया था। आप लोगों की बड़ी प्रशंसा करते थे—कहते थे बिल्कुल घर जैसा आराम दिया।"

अर्जुनसिंह सिर झुकाकर बोले—"यह उनकी दया है। शहर का आराम यहाँ कहाँ ?"

"अजी शहर से अधिक—शहर में क्या धरा है।"

नन्दराम बोल उठा—"पैर में अधिक कष्ट हो तो मालिश करा डालिये।"

ब्रजकिशोर जल्दी से बोले—"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है—कल तक अपने-आप ठीक हो जायगा।"

दूसरे दिन प्रातःकाल शौचादि से निवृत होकर तथा चाय पीकर ब्रजकिशोर ने नन्दराम से कहा—"शिकार तो आज रह गया—चलिए जरा घूम ही आवें, आपका गाँव देखें।"

नन्दराम हँसकर बोला—"अजी यहाँ गाँव में क्या धरा है—झोपड़ियाँ हैं। चलिये जंगल की तरफ चलें।"

"अच्छी बात है, मुझे तो घूमना है—चाहे जिधर चलिए।"

दोनों व्यक्ति चले। गाँव के अन्दर से होकर जिधर से लोग निकलते थे

उधर आदमी नन्दराम को झुक-झुक कर 'जुहार' तथा 'सलाम' करते थे। अपने द्वार पर बैठे हुए आदमी खड़े हो जाते थे। यह देखकर ब्रजकिशोर ने सोचा—यह आदमी भीख माँगता फिरता था; ईश्वर की गति कुछ समझ में नहीं आती।

गाँव के बाहर निकल जाने पर ब्रजकिशोर ने नन्दराम से कहा—"नन्द-रामसिह तुम्हें यह सुनकर बड़ा आश्चर्य होगा कि मैं शिकार खेलने के अभिप्राय से नहीं आया हूँ—मैं शिकार नहीं खेलता।"

नन्दराम चौंक पड़ा। उसने ब्रजकिशोर को ध्यानपूर्वक देखते हुए कहा—"अच्छा।"

ब्रजकिशोर बोले—"यह तो केवल एक बहाना था, परन्तु तुम्हारे लिए नहीं—तुम्हारे पिता के लिए। असली बात यह है कि मैं रामनाथ बाबू का एक सन्देश लाया हूँ, और यह सन्देश केवल तुम्हारे लिए है। मैं तुम्हें इस समय इधर एकान्त में इसलिए लाया हूँ कि वह सन्देश तुम्हें सुना दूँ! कहीं थोड़ी देर बैठो तो बताऊँ।"

नन्दराम ने इधर-उधर देखा। सामने थोड़ी दूर पर एक पक्का कुँआ था। उसे देखकर नन्दराम बोला—"चलिये इस कुँए पर बैठें।"

दोनों जाकर कुएँ पर बैठ गए। नन्दराम बोला—"कहिए।"

"रामनाथ तुम्हारी कन्या के अतिरिक्त और किसी से विवाह नहीं करना चाहते। इस समय उनकी वही दशा है, जो किसी समय तुम्हारी थी और जिसके कारण तुम उनकी दशा को भली-भाँति समझ सकते हो। तुम पर

बीत चुकी है। अतएव तुम इसकी गम्भीरता को समझ सकते हो—और इस लिए मुझे तुमसे यह बात कहने का साहस भी हुआ है।"

नन्दराम बोला—"यह तो सब ठीक है; पर मैं ठाकुर, वह खत्री—यदि मैं चाहूँ भी तब भी विवाह कैसे हो सकता है?"

ब्रजकिशोर ने कहा—"यह कोई बात नहीं; खत्री और क्षत्री एक ही बात है। यह मैं मानता हूँ कि ऐसे विवाह होते कम हैं, परन्तु यदि हों तो कोई हर्ज नहीं है।"

"हर्ज चाहे न हो; रिवाज तो नहीं है बाबूजी। यदि बाबू रामनाथ मेरी जाति के होते तब तो मैं उनके साथ अपनी कन्या का विवाह करने में अपना अहोभाग्य समझता—मेरे पिता भी खुशी से तैयार हो जाते, पर इस दशा में तो बड़ा कठिन है। विशेषत: जबकि मेरे पिता जीवित हैं।"

ब्रजकिशोर बोले—"अड़चन उधर भी है—रामनाथ के पिता भी इस विवाह को कभी स्वीकार न करेंगे।"

"तब फिर भी आप विवाह के लिए कैसे कहते हैं?"

"बात यह है कि इसमें तुम्हारी कन्या और बाबू रामनाथ दोनों के सुख का प्रश्न है। यदि दोनों का विवाह हो गया, तब तो दोनों का जीवन सुधर जायगा, अन्यथा दोनों का जीवन बिगड़ा समझो। यदि तुम्हारा विवाह सोना से न होता तो तुम्हारी और सोना की क्या दशा होती—यही बात इस समय इस सम्बन्ध में भी है। यदि तुम विवाह करने को तैयार हो तो गुप्त रूप से हो सकता है—न तुम्हारे पिता को खबर हो और न रामनाथ के पिता को।"

"विवाह हो जाने के बाद?" नन्दराम ने प्रश्न किया।

"विवाह होने के पश्चात् फिर प्रकट कर दिया जायगा—उस समय कोई कुछ न कर सकेगा।"

नन्दराम बड़ी देर तक चुपचाप सिर झुकाये बैठा सोचता रहा। अन्त में बोला—"बाबूजी, मैं अपने पिता को अब अधिक दुखी करना नहीं चाहता। एक बार मैंने अपनी स्वेच्छाचारिता से जो कष्ट उन्हें पहुँचाया, उसका अफसोस मुझको आज दिन तक है। अब फिर दूसरी बार स्वेच्छाचारिता करके उनका बुढ़ापा दुखमय बनाऊँ—इतना साहस मुझ में नहीं है।"

'यह तो ठीक है, परन्तु अपनी कन्या के दुख-सुख पर भी तुम्हारी दृष्टि

है। यदि तुम्हारी कन्या किसी दूसरे से विवाह करके सुखी हो सकती है, तब तो मैं पहला व्यक्ति हूँ, जो तुम्हें यह सलाह दूँगा कि तुम उसका विवाह रामनाथ के साथ कदापि मत करो। परन्तु यदि तुम्हारी कन्या सुखी नहीं हो सकती, तब तो इस पर विचार करना चाहिए।"

'जस्सो के हृदय की बात तो मुझे मालूम नहीं कि वह रामनाथ बाबू से कितना प्रेम करती है। इतना मैं जानता हूँ कि वह रामनाथ बाबू को बहुत ही आदर तथा प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखती है; परन्तु वह उनसे इतना प्रेम करती है कि बिना उनके सुखी नहीं हो सकती—यह बात मैं नहीं जानता।"

"वह बात तो आप जान सकते हैं ?"

"कैसे ? जस्सो मुझसे तो कभी बतावेगी नहीं; कन्या अपने पिता से—"

ब्रजकिशोर दाँत काटकर बोले—"नहीं, मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि आप उससे पूछें—ऐसे बहुत से ढंग हैं जिनसे आप उसके हृदय की बात जान सकते हैं।"

"आखिर एकाध बताइये", नन्दराम ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"एक तो यही है कि आप आज जस्सो से यह कहें कि रामनाथ बाबू का विवाह होने वाला है। इस वाक्य का क्या प्रभाव पड़ता है, इसे ध्यानपूर्वक देखिए।"

नन्दराम मौन होकर कुछ देर तक इस पर विचार करता रहा, तत्पश्चात् बोला—"खैर, यह मैं देखूँगा; पर यह मुझसे न होगा कि अपने माता-पिता से चुराकर उसका विवाह करूँ, ! मेरा यह अनुभव है कि ऐसी बातों का परिणाम अच्छा नहीं होता। बाबू रामनाथ को भी मैं यही सलाह दूँगा कि वह भी अपने माता-पिता से चुरा-छिपा कर यह काम न करें।"

ब्रजकिशोर मन में सोचने लगे—बात तो नन्दराम ठीक कहता है। मेरा विचार भी आरम्भ से यही है। पर क्या करूँ रामनाथ के कहने से विवश होकर यहाँ तक आया। नन्दराम से वह बोले—"तुम्हारा यह कथन ठीक है। मैंने भी यहाँ आने के पहले रामनाथ से यही कहा था, पर उसकी समझ में मेरी बात नहीं आई। खैर, अब मैंने सब बातें तुम्हारे सामने रख दी हैं। अब जो कहो वही उनसे जाकर कह दूँ।"

नन्दराम बोला—"कहना सुनना क्या है—केवल इतना ही कि मैं बिना अपने माता-पिता की अनुमति के कुछ नहीं कर सकता।"

"यह अन्तिम निर्णय है? तुम जस्सो की भावनाओं की भी कुछ परवाह न करोगे?"

नन्दराम कुछ घबराकर बोला—"जस्सो? जस्सो की भावनाओं का ध्यान तो मुझे सदा रहेगा, परन्तु जहाँ तक मेरा अनुमान है, जस्सो भी यह बात स्वीकार न करेगी कि इस प्रकार चुरा-छिपा कर उसका विवाह किया जाय।"

"यदि यह बात है, तब तो मैं इस विषय पर अधिक कुछ कहना बिल्कुल व्यर्थ समझता हूँ।"

"मैं जस्सो का स्वभाव जानता हूँ—वह इसे कभी स्वीकार न करेगी। परन्तु फिर भी मैं उसके मन की बात जानने की चेष्टा करूँगा।"

"हाँ, यही मेरी भी सलाह है कि उसके विचारों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है।"

"सो तो मैं जान लूँगा। इसके जानने में देर नहीं लगेगी। मैं उससे स्पष्ट रूप से यह कहूँगा कि रामनाथ बाबू ने यह सन्देश भेजा है। इस पर मैं उससे परामर्श करूँगा। जब से उसने होश सम्भाला है, तब से वह प्रत्येक बात में मुझे सलाह देती रही है—और उसकी सलाह सार्थक होती है। अतएव मुझे पूर्ण आशा है कि इस सम्बन्ध में भी वह अच्छी ही सलाह देगी।"

ब्रजकिशोर ने आश्चर्य से नन्दराम की ओर देखा; तत्पश्चात् कुछ मुस्कराकर कहा—"इस सम्बन्ध में तो कदाचित आपको वह कोई परामर्श न दे सकेगी। यह मामला तो वह आप ही पर छोड़ देगी।"

"कौन जस्सो? नहीं, ऐसा नहीं होगा—वह बहुत समझदार है—मुझसे अधिक समझदार है। मैं भूल कर सकता हूँ, पर उससे भूल न होगी, मेरा पैर डगमगा सकता है, पर उसका कभी न डगमगायेगा। अच्छा चलिये, चलें। कुछ और तो नहीं कहना?"

"नहीं, मुझे अब कुछ नहीं कहना है।"

२३

उस दिन रात में नन्दराम ने जस्सो को अपने पास बुलाया और कहा—"जस्सो ! कल शाम को जो बाबू आये हैं, वह बाबू रामनाथ के मित्र हैं, यह तो तुझे मालूम ही है। परन्तु वह आये किसलिए हैं, यह कदाचित् तू न जानती होगी।"

जस्सो ने कहा—"शिकार खेलने आये हैं।"

"नहीं, शिकार खेलने नहीं आये हैं--वह रामनाथ बाबू का एक सन्देश लाये हैं।"

जस्सो का हृदय धड़कने लगा, परन्तु उसने अपनी घबराहट को दबाकर गम्भीरतापूर्वक पिता से यह पूछा—"क्या सन्देश लाये हैं ?"

"पहली बात तो यह है कि रामनाथ के पिता रामनाथ का विवाह कर रहे हैं।"

"यह सुनते ही जस्सो का मुख पीला पड़ गया। नन्दराम कहता गया—वह सन्देश ऐसा है कि उस पर मैं तेरी सलाह जानना चाहता हूँ। यद्यपि पिता की हैसियत से मुझे उस सम्बन्ध में तुझसे सलाह लेना उचित नहीं है; पर तू यह जानती है कि प्रत्येक बात में तेरे सुख-दुख का ध्यान मैं रखता आया हूँ। तेरे ही कारण मैं फिर यहाँ आकर पड़ा हूँ—तू न होती तो मैं यहाँ कदापि न आता। इसलिए इस सम्बन्ध में तेरी इच्छा जानना चाहता हूँ। जो तेरी इच्छा होगी, जिसमें तुझे सुख मिलेगा, मैं वही करूँगा।"

इतने समय में जस्सो ने अपने को सम्भाल लिया था और वह पुनः गम्भीर हो गयी थी। अतएव उसने पूछा—"वह कौन-सी बात है ?"

"रामनाथ बाबू ने कहला भेजा है कि नन्दराम यदि तैयार हो तो मैं अपने माता-पिता से चुराकर उसकी कन्या से विवाह करने को तैयार हूँ। मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं थी, क्योंकि रामनाथ बाबू बहुत भले और योग्य आदमी हैं। पर पहली बात तो यह कि वह खत्री हैं और हम ठाकुर। यदि इसे भी छोड़ दिया जाय, तो दूसरी बात यह है कि तेरे बाबा इस विवाह के लिए कभी राजी न होंगे। रामनाथ की यह इच्छा है कि उनसे छिपाकर विवाह किया जाए। उन्होंने कहा है कि उधर उनके पिता को मालूम न हो और तेरे बाबा को भी न मालूम हो और विवाह हो जाए। इसके बाद जो होगा देखा

जायगा। रामनाथ बाबू के पिता भी इस विवाह के लिए कभी तैयार न होंगे, इसलिए उनसे भी छिपाना पड़ेगा। रामनाथ बाबू का हमारे ऊपर बहुत एहसान है। यह उन्हीं की कृपा का फल है कि आज हम-तुम यहाँ सुखपूर्वक बैठे हैं। नहीं तो ईश्वर जाने आज कहाँ पड़े होते। अतएव एहसानों का बदला चुकाने की दृष्टि से उनके इस प्रस्ताव पर विचार करना पड़ेगा। परन्तु विचार करने की बात यह है कि क्या इस प्रकार चुरा-छिपा कर विवाह करना ठीक होगा? यदि ऐसा किया जायगा तो इससे तेरे बाबा-दादी को घोर दुःख होगा—उधर रामनाथ का परिवार भी अत्यन्त कष्टित होगा। इस प्रकार दो परिवार दुखी हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त मुझे भी घर छोड़ना पड़ेगा; क्योंकि पिताजी के विरुद्ध कार्य करके फिर मैं यहाँ एक क्षण न रह सकूँगा। यद्यपि मेरी हार्दिक इच्छा तो यही है कि अब मुझसे कोई काम ऐसा न हो जो उन्हें इस बुढ़ापे में दुःख पहुँचावे। मैं उन्हें बहुत दुःख दे चुका हूँ—अब मुझ में इतना साहस नहीं कि दोबारा उन्हें कष्ट पहुँचाऊँ। बाबू ब्रजकिशोर मेरा उत्तर पाने के लिए ठहरे हुए हैं। मैं उन्हें क्या उत्तर दूँ—यह सोच रहा हूँ, तेरी क्या राय है?"

जस्सो को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि उसका पिता उससे ऐसी स्पष्ट बातें करेगा। अतएव पहले तो वह कुछ क्षणों के लिए हत्-बुद्धि-सी हो गई। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे ध्यान आया कि उसका पिता केवल उसके (जस्सो के) सुख-दुख के विचार से ऐसा कर रहा है। वह नहीं चाहता कि उससे कोई काम ऐसा हो जो उसके (जस्सो के) लिए दुखदायी हो। यह विचार आते ही जस्सो के हृदय में पिता के प्रति श्रद्धा तथा स्नेह का स्रोत बह निकला। उसके नेत्रों में आँसू छलछला आए, वह पिता के स्नेह से गद्गद् होकर बोली—"पिताजी, इस सम्बन्ध में आप मुझसे क्या पूछते हैं? जिसमें आपको सुख-शांति मिले, आप वह कीजिए—मेरे सुख-दुख का विचार छोड़ दीजिए। मुझे उसी में सुख है, जिसमें आप सुखी हैं! यदि मुझे सुख भी मिला और आप दुःखी हुए, तो भी मेरा वह सुख—सुख नहीं रहेगा। आपको दुःखी देखकर मैं किसी भी दशा में सुखी नहीं रह सकती। आपको मेरे पीछे कष्ट उठाने की आवश्यकता न पड़े—यही मेरी अभिलाषा है, यही मेरी कामना है।"

नन्दराम जस्सो की इस बात से बहुत प्रभावित हुआ। वह बोला—"

अपनी कोई चिन्ता नहीं बेटी ! मुझे केवल तेरी चिन्ता है । तुझे सुखी करने के लिए यदि मुझे नरक में भी जाना पड़े, तो सहर्ष जा सकता हूँ । मेरे सुख की बात कहाँ—मेरा सुख तो तेरी माता के साथ चला गया । । ओह ! यदि आज वह जीवित होती तो—उसने कोई आराम नहीं उठाया—कोई सुख नहीं देखा । हृदय की अभिलाषाएँ हृदय में ही लिए चली गई । मेरे साथ रहकर उसने इतने कष्ट उठाए कि अन्त में प्राण ही दे दिए । ओफ उस समय की उस प्रेम-प्रतिमा की याद आने से हृदय विदीर्ण होने लगता है ।" यह कहते-कहते नन्दराम की आँखों से आँसू बहने लगे । वह कुछ क्षण तक चुपचाप आँसू बहाता रहा । जस्सो भी अपनी माता को याद करके रोती रही ।

कुछ देर पश्चात् नन्दराम आँसू पोंछकर बोला—"बेटी ! तू अपनी माता की जीवित प्रतिमूर्ति है, उसकी जीती-जागती निशानी है । तेरे सुख के लिए मैं सब कुछ करूँगा । मेरा विश्वास है कि तुझे सुखी देखकर तेरी माता की आत्मा को सुख मिलेगा । अतएव जिसमें तुझे सुख मिले वह निस्संकोच कह देना ।"

जस्सो बोली—"मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं है । जो आप ठीक समझें मेरे लिए वही ठीक है ।"

"तो ब्रजकिशोर बाबू से क्या कहना चाहिए ?"

"यही कह दीजिये कि चुरा-छिपा कर कोई काम नहीं हो सकता ।"

नन्दराम—"हाँ, यही मेरी भी इच्छा है कि उनसे कह दूँ कि जब तक रामनाथ बाबू के पिता तथा मेरे पिता की सम्मति न होगी, तब तक विवाह करना ठीक न होगा । बस, यही ठीक है । सीधा और सच्चा रास्ता सदैव ठीक होता है । क्यों, है न ?"

"निस्सन्देह !" इतना कहकर जस्सो चली गई । नन्दराम अपने-ही-आप बोला—'मैं तो पहले ही कहता था । मेरी जस्सो बड़ी समझदार है । इतनी उमर में ऐसी बुद्धि ! इसकी माँ भी तो बड़ी समझदार थी । परन्तु प्रेम में पड़कर बेचारी की बुद्धि ने काम न किया । रामनाथ बाबू समझते होंगे कि जस्सो उनके साथ विवाह करने को झट राजी हो जायगी । (हँसते हुए) अपने धन, अपने रूप तथा विद्या का अभिमान है । वह समझते हैं कि एक भिखारी और उसकी लड़की उनके साथ विवाह करने के लिए उत्सुक हो

उठेंगे। यह उनकी भूल है। हाँ, वह यह भी कहते थे कि जस्सो उनसे प्रेम करती है और उन्हें छोड़कर और किसी से विवाह करने पर उद्यत न होगी। मुझे इसमें भी सन्देह होता है। यदि ऐसी बात होती तो जस्सो ऐसा रूखा उत्तर देने की सलाह कभी न देती। वह प्रेम-व्रेम भी नहीं करती। वह उनकी कृतज्ञ है: इसलिए उनका आदर और प्रतिष्ठा करती है—इसे ही उन्होंने प्रेम समझ लिया। खैर, अब उनकी आँखें खुल जायँगी—उनका भ्रम दूर हो जायगा। वैसे आदमी बुरे नहीं हैं। सब तरह अच्छे हैं। 'यदि सम्भव होता तो उन्हीं के साथ जस्सो का विवाह करता; पर सम्भव नहीं; पिताजी कभी स्वीकार नहीं करेंगे। उधर रामनाथ के पिताजी भी कभी स्वीकार न करेंगे।"

इधर नन्दराम यह सोच रहा था, उधर जस्सो अपनी चारपाई पर पड़ी सोच रही थी—मैंने यह क्या किया। पिताजी तो तैयार थे और अब भी हैं, केवल मेरे जीभ हिलाने की देर है। पर क्या कहूँ उनके सामने तो मैं कभी न कहूँगी कि तुम ऐसा करो। इसके अतिरिक्त वह ठीक भी तो न होगा। बाबा से छिपाकर कोई काम करना बुरा है। पिताजी कहते थे कि 'मुझे घर छोड़ना पड़ेगा।' मेरे पीछे वह इस उमर में फिर मारे-मारे फिरें, ओफ? उस समय के कष्टों को याद करने से रोयें खड़े होते हैं। यही कष्ट पिताजी को फ़िर उठाने पड़ेंगे। नहीं, चाहे मेरे प्राण भले चले जायँ, पर मैं पिताजी को कष्ट में कभी नहीं डालूँगी। उनकी सारी उमर कष्ट उठाते ही बीती है—अब तो उनके दिन सुख-शांतिपूर्वक बीतने चाहिए। यहाँ सब तरह का सुख है—ऐसा सुख उन्हें और कहाँ मिल सकता है। मैं अपने वास्ते उनका यह सुख छुड़ा दूँ—ऐसा कभी नहीं हो सकता। और बाबा-दादी को बड़ा दुःख होगा। दादी तो पिताजी के कारण अन्धी हो गईं—अब जो फिर वह चले जायेंगे और मैं चली जाऊँगी, तो उनकी क्या दशा होगी। उनको कितना दुःख होगा। वह मुझे कितना चाहती हैं, स्नेह करती हैं। मैं अपने वास्ते उनके स्नेह को ठुकराकर उन्हें कष्ट पहुँचाऊँ, तो मेरे समान संसार में और कोई नीच नहीं। मैंने जो कुछ किया अच्छा ही किया।"

सहसा उसके कान में किसी ने कहा—'परन्तु यदि रामनाथ बाबू का विवाह हो गया तो?' यह विचार आते ही जस्सो काँप उठी। थोड़ी देर के लिए ऐसा प्रतीत हुआ कि यदि रामनाथ ने किसी दूसरी स्त्री से विवाह कर

लिया तो उसका भविष्य सर्वथा अन्धकारमय हो जायगा। परन्तु फिर उसे ध्यान आया कि रामनाथ ऐसा कभी न करेंगे और यदि करें, तो मैं समझ लूँगी कि मेरे साथ उनका प्रेम सच्चा नहीं, बनावटी था। चलो यह भी अच्छा है—इसी बहाने उनके प्रेम की परीक्षा भी हो जायगी। यदि उनका प्रेम सच्चा होगा तो कोई-न-कोई युक्ति निकालेंगे और अपने पिता तथा मेरे बाबा को राजी कर ही लेंगे। पिताजी से कोई भय नहीं, वह जब अभी तैयार हैं, तो उस समय भी हो ही जायेंगे।

इसी प्रकार की बातें सोचती-सोचती वह सो गई।

दूसरे दिन प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर नन्दराम ब्रजकिशोर बाबू के पास पहुँचा। अर्जुनसिंह पहले ही उनके पास बैठे थे। नन्दराम को देखते ही अर्जुनसिंह बोल उठे—"आज भी बाबूजी शिकार में नहीं गये—कह रहे हैं तबियत ठीक नहीं। आज घर जाने को भी कह रहे हैं।"

नन्दराम ने ब्रजकिशोर की ओर देखकर पूछा—"क्यों बाबूजी ?" ब्रजकिशोर बोले—"हाँ, आज जाने का इरादा है। यहाँ आकर तबियत बिगड़ गई। रात में कुछ हरारत भी रही। इस समय सिर में दर्द है। अब जाना ही ठीक है। शिकार के लिए आया था, पर नहीं खेल पाया। खैर, फिर कभी सही।"

अर्जुनसिंह विषादयुक्त मुस्कराहट के साथ नन्दराम की ओर देखकर बोले—"न जाने क्या बात है। बाबू रामनाथ जब आये थे, तब भी ऐसा विघ्न हो गया कि उनके मित्र लोग शिकार न खेल पाये और यह बाबूजी आये तो यह बिचारे भी शिकार न खेल पाये। हमारे भाग्य ही खोटे हैं कि हमारे यहाँ आकर इन सब की तबियत खराब हो जाती है।"

पिता की इस बात पर नन्दराम को हँसी आने लगी; पर वह हँसी को दबाकर बोला—"बड़ी विचित्र बात है—क्या कहा जाय।"

ब्रजकिशोर बोल उठे—आप लोग व्यर्थ ही उदास होते हैं। यह इत्तफाक है। मुझे क्या मैं फिर आ जाऊँगा। जब जी चाहेगा, आकर शिकार खेल लूँगा।"

अर्जुनसिंह बोले—"सो तो बाबूजी आपका घर है। आप हर समय आ सकते हैं और आवेंगे ही; पर मैं समय की बात कहता हूँ—बाजा समय ही खराब होता है।"

ब्रजकिशोर हँसकर बोले—"हाँ, सो तो ठीक ही है। खैर।"

थोड़ी देर में अर्जुनसिंह स्नान करने के निमित्त उठकर चले गये।

एकान्त होने पर ब्रजकिशोर ने नन्दराम से पूछा—"कहिए, क्या तय किया ?"

"तय यह किया कि जब तक बाबू रामनाथ के पिता और मेरे पिता इस विवाह के लिए राजी न होंगे, तब तक विवाह नहीं हो सकेगा।"

"यह आपका उत्तर है; परन्तु जस्सो''''।'

नन्दराम बीच में ही बोल उठा—"नहीं, यह केवल मेरा ही उत्तर नहीं, वरन् जस्सो का उत्तर भी यही है।"

"अच्छा ! आपने पूछा था ?"

"हाँ मैंने पूछा था। उसने यही उत्तर दिया कि चुरा-छिपा कर कोई काम न होना चाहिए।"

ब्रजकिशोर के मुँह से केवल "खूब !" निकला। वह मन में सोचने लगे, 'क्या नन्दराम सच कहता है ? जस्सो ने क्या ऐसा कहा होगा ! यह सम्भव है कि वह रामनाथ से उतना प्रेम न करती हो जितना कि वह बेवकूफ समझे बैठा है। भावुक आदमी तो हुई—तिल का ताड़ बना लिया। खैर, अब बच्चे की आँखें खुल जायेंगी।' यह सोचकर उन्होंने नन्दराम से कहा—"तो बस ठीक है—यह उत्तर मैं उन्हें सुना दूँगा। मैं तो केवल दूत हूँ। जो उन्होंने कहा सो आपसे कह दिया और अब जो आप कह रहे हैं, यह उनसे यह दूँगा।"

नन्दराम बोला—"बाबूजी, आप खुद समझ सकते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है कि न उनके माँ-बाप जानें और न मेरे—और विवाह हो जाये। यदि वह मेरा उदाहरण सामने रखकर कहते हैं, तो भी भूल है। यदि मैंने किया तो कौन अच्छा काम किया। उसका फल तो मैं आज तक भोग रहा हूँ। बुरे काम का परिणाम बुरा ही होता है।"

ब्रजकिशोर ने कहा—"तुम बिल्कुल ठीक कहते हो नन्दराम, मेरा आरम्भ से ही यही विचार है, पर क्या कहूँ, रामनाथ मेरे बहुत ही प्रिय मित्र हैं—उनकी बात न टाल सका; इसलिये तुम्हारे पास दौड़ा आया। मैंने अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया—अब आगे आप जानें और वह।"

नन्दराम बोला—"आपने दोस्ती के नाते ठीक ही किया। ऐसे दोस्त बड़े

भाग्य से मिलते हैं। मेरा भी एक ऐसा मित्र था (दीर्घश्वास लेकर) उसने मेरा बहुत साथ दिया।"

"हाँ तुमने बताया था, उसके घर में तुमने सोना से विवाह किया था।"

"हाँ—वह इस समय बैकुण्ठ में बैठा होगा, मैं पापी यहाँ दुःख भोग रहा हूँ। ऐसे मित्र कहाँ मिलते हैं!"

"उनके बाल-बच्चे होंगे?" ब्रजकिशोर ने पूछा।

"हाँ हैं और मजे में हैं—उन्हें मेरी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं—यदि होती तो अवश्य उनकी सहायता करता।"

"तुम वहाँ कभी जाते हो।"

"किसके पास जाऊँ! वहाँ अब कोई मुझे अच्छी तरह पहचानता भी नहीं। केवल उसकी पत्नी है—वह जानती है कि उसके पति में और मुझमें कितना स्नेह था—सो वह बेचारी आवभगत करती है, और कोई नहीं। वह बात कहाँ, प्रत्येक आदमी इतना स्नेह थोड़ा ही कर सकता है—जिसकी बात उसके साथ!"

"अच्छा तो मैं आज शाम की गाड़ी से चला जाऊँगा।"

"जैसी आपकी इच्छा, अभी एकाध दिन बने रहते।"

"कोई हर्ज नहीं था—मेरा घर है; परन्तु वहाँ पहुँचना आवश्यक है—छुट्टियाँ समाप्त हो रही हैं। इधर रामनाथ भी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। कानपुर होता हुआ जाऊँगा—शायद एक दिन वहाँ भी ठहरना पड़े। इसलिए अब चलना ही ठीक है।"

"अच्छा, तो मेरी ओर से हाथ जोड़कर कह दीजिएगा कि मैं मजबूर हूँ। इस ढंग से कहियेगा कि उन्हें बुरा न लगे। मैं यह नहीं चाहता कि वह यह समझें कि मैं उनके साथ कोई अनुचित व्यवहार कर रहा हूँ।"

ब्रजकिशोर ने कहा—"नहीं, ऐसा नहीं सोचेंगे। मैं इस ढंग से कहूँगा ही नहीं।"

२४

ब्रजकिशोर कानपुर पहुँचे। रामनाथ उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। दोनों एकान्त में बैठे तो रामनाथ ने पूछा—"कहो, क्या कर आये?"

ब्रजकिशोर ने कहा—"भई, वह बिना अपने पिता की अनुमति के विवाह करने को तैयार नहीं।"

रामनाथ ने म्लानमुख होकर कहा—"सच कहते हो ?"

"खासे रहे। सच न कहूँगा तो क्या झूठ कहूँगा। उसने स्पष्ट कहा कि वैसे मैं रामनाथ का दास हूँ, परन्तु इस सम्बन्ध में सर्वथा अशक्त हूँ।"

"तो जान पड़ता है उसकी यह इच्छा नहीं कि मेरे साथ जस्सो का विवाह हो।"

"नहीं, ऐसी बात नहीं। उसकी बातों से यह प्रतीत होता था कि वह स्वयं तैयार है, पर उसी दशा में, जब उसके पिता तथा आपके पिता की अनुमति हो।"

"मेरे पिता की ?" रामनाथ ने आश्चर्य से पूछा।

"हाँ, आपके पिता की।"

"अच्छा! यह एक पंख और लगी।"

"मैंने आपसे पहले ही कहा था कि ऐसा होना कठिन है। आप भी शरीफ आदमी हैं और वह भी—ऐसी दशा में इस प्रकार चोरों की तरह विवाह कैसे हो सकता है।"

"अरे यार, होने को सब-कुछ हो सकता है। यदि नन्दराम चाहे तो विवाह हो सकता है।"

"हाँ, अपना घर-द्वार छोड़े, माँ-बाप छोड़े—तब हो सकता है।"

"घर-द्वार क्यों छोड़े ?"

"क्यों ? जब अपने पिता के प्रतिकूल होकर जस्सो का विवाह आपके साथ करेगा तो क्या फिर वह घर में रह सकता है ?"

"अच्छा, और क्या-क्या बात हुयी—अब ब्योरेवार कहो।"

ब्रजकिशोर ने सब बता दिया। अन्त में उन्होंने कहा—"जिसके प्रेम पर आपको बहुत बड़ा गर्व था—वह भी आपसे इस प्रकार विवाह करने को प्रस्तुत नहीं है।"

रामनाथ सन्नाटे में आ गये। बड़ी देर तक चुपचाप बैठे रहे। तदुपरान्त सिर ऊपर उठाकर बोले—"कम-से-कम जस्सो से मुझे ऐसी आशा नहीं थी।"

"तो क्या यह आशा थी कि जब आप कहेंगे वह अपना घर छोड़कर आपके पास आ जायगी ?"

"नहीं, ऐसा तो नहीं; पर यह आशा अवश्य थी कि वह मेरे साथ विवाह करने से इन्कार नहीं करेगी।"

"तो इन्कार उसने कब किया। वह तो यही कहती है कि इस प्रकार चुरा-छिपा कर विवाह के लिए वह तैयार नहीं है—इसके अर्थ इन्कार तो होते नहीं।"

"यह इन्कार ही-सा है।"

"अच्छी बात है—यदि आप इसे इन्कार समझते हैं तो इन्कार ही सही। आप उसके स्वभाव से परिचित हैं, अपने प्रति उसके प्रेम की गहराई को जानते हैं; इसलिए आपकी बात माननी ही पड़ेगी।"

ब्रजकिशोर की अन्तिम बात से रामनाथ कट गये। उन्होंने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"हाँ, हाँ, यह तो मैं अब भी कहता हूँ कि वह मुझसे प्रेम करती है।"

"तब तो यदि आप यह समझते हैं कि उसने इन्कार किया, तो आप उसके साथ बड़ा अन्याय करते हैं।"

"खैर, जो होगा—हटाओ।"

"तो अब आप क्या करेंगे ?" ब्रजकिशोर ने पूछा।

"मैं अब उसे भूलने की कोशिश करूँगा। जितना प्रयत्न मैं कर सकता था, उतना करके देख लिया। अपने पिता से छिपाकर विवाह करने के लिए भी तैयार था—इससे अधिक और मैं क्या कर सकता हूँ ?"

"तुम्हारा विवाह होने जा रहा है—सो ?"

"जो होगा, होने दूँगा—जब उधर कोई आशा ही नहीं, तब ख्वाम-ख्वाह इधर क्यों दिक्कत पैदा करूँ। परन्तु दोस्त, बड़ा ही कटु अनुभव हुआ है। इसे जन्म भर न भूलूँगा।"

"क्या कटु अनुभव हुआ ?"

"जो देख रहे हो, यही कटु अनुभव है—इससे अधिक और क्या होगा ?"

"जिसे तुम कटु अनुभव समझते हो, वह अवश्यम्भावी था ! इसके लिए तो तुम्हें पहले से ही प्रस्तुत रहना चाहिये था।"

"प्रस्तुत तो अब भी हूँ—आखिर कर ही क्या सकता हूँ ?"

"पहले से प्रस्तुत होते तो यह कटु अनुभव न होता।"

रामनाथ ने मुस्कराकर कहा—"खैर, जो हुआ सो अच्छा हुआ ! इतना सन्तोष है कि मैंने कोई काम ऐसा नहीं किया, जिसके लिए मुझे कभी पश्चात्ताप करना पड़े। मुझे उससे प्रेम था और अब भी है—मैं उससे विवाह करना चाहता था। वह नहीं हुआ—न सही ! (एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर)—

"तबियत को होगा कलक चन्द रोज,
बहलाते-बहलाते बहल जायगी।"

ब्रजकिशोर मन-ही-मन हँसकर सोचने लगे—"यह इनके प्रेम की दशा है—इसे यह सच्चा प्रेम समझते हैं। एक साधारण-सा धक्का लगते ही ठण्डे पड़ गये। सारा प्रेम काफूर हो गया—विवाह करने को तैयार हैं, कहते हैं—बहलते-बहलते बहल जायगी। मैं तो पहले ही से जानता था कि बहल जायगी और खूब बहलेगी। ऐसी बहलेगी कि ज़स्सो बेचारी का ध्यान तक नहीं आयेगा। पता नहीं, उसकी क्या दशा होगी। वह भी बदल जायगी ! संसार इसी का नाम है।"

थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने कहा—"तुम्हारा काम कर दिया, मैं घर जाऊँगा।"

"आज ही ?" रामनाथ ने चौंक कर पूछा।

"हाँ और क्या ?"

"अजी नहीं—आज क्या जाओगे। आज रहो, कल जाना।"

"क्या फायदा ?"

"रात में कुछ बातें होंगी।"

"अच्छा, अभी कुछ बातें बाकी हैं ?"

"हाँ, हाँ, सम्भव है, अभी कोई युक्ति सूझ जाय।"

"सूझ चुकी।"

"अच्छा तो एक रात ठहरने में कौन आफत है ?"

"खैर ठहर जाऊँगा—सबेरे चला जाऊँगा।"

"हाँ यह ठीक है।"

रात में ब्रजकिशोर तथा रामनाथ एक ही कमरे में लेटे। रामनाथ ने

ब्रजकिशोर से कहा—"मित्र कोई और ही युक्ति सोचो। इतनी सरलतापूर्वक जस्सो को हाथ से निकल जाने·······?"

ब्रजकिशोर बोल उठे—"आप तो हैं वही आदमी। व्यर्थ की बातें करते हो—मुझे इन बातों से नफ़रत है, आनन्द से विवाह करो। बस—यही युक्ति है।"

"विवाह तो करना ही पड़ेगा—चाहे आनन्द से हो, चाहे बेआनन्द से, परन्तु—।"

"अरन्तु-परन्तु को अब उठाकर ताक पर रख दीजिए।"

"कोई तरकीब निकालो उस्ताद! तुमने तो हजारों नावेल चाट डाले हैं।"

"परन्तु जितने नावेल पढ़े, सबका प्लाट अलग-अलग था।"

"इसीलिए तो कहता हूँ कि तुम्हें बहुत-सी भिन्न-भिन्न घटनाओं का ज्ञान है—तुम सोच सकते हो कि ऐसी स्थिति में क्या होना चाहिए?"

"अच्छा एक युक्ति और है—बोलो करोगे।"

"बताओ।"

"करोगे?"

"पहले बताओ तो।"

"नन्दराम के द्वार पर जाकर धरना दो—कहो या तो मेरे साथ जस्सो का विवाह करो—नहीं तो मैं यहीं अपने प्राण त्याग दूँगा।"

"बौड़म हो!!"

"और सुनिए, तरकीब बताई तो गालियाँ देने लगे।"

"तरकीब बताते हो या उल्लू बनाते हो।"

"क्यों जनाब, इसमें उल्लू बनाने की कौन बात है?"

"क्यों? ऐसा करना मुझे शोभा देगा?"

"शोभा। उँहुँ! यदि आपको अपनी शोभा रखनी है तो उसका ध्यान छोड़ दीजिए।"

"ऐसी युक्ति हो कि काम भी हो जाय और शोभा भी न बिगड़े।"

"चिरंजीव—प्रेम-लीला में शोभा ढूँढ़ते हो—अरे, इसमें तो आदमी की हस्ती मिट जाती है, शोभा किस खेत की मूली है। शोभा रखने वाले क्या खाके इश्कबाजी करेंगे। प्रेम-पथ बड़ा विकट है भाई साहब, इस पथ मे

छोर तक कोई बिरला ही पहुँचता है। अन्य सब थोड़ी-थोड़ी दूर जाकर भाग खड़े होते हैं। बहादुरशाह जफर ने क्या अच्छा कहा है—

"बुलहवस आया था मेरे साथ राहे इश्क में,
ऐ 'जफर' देखी जो उसने सख्त मंजिल, फिर गया।"

"समझे! इस पथ पर बुलहवस नहीं जा सकते।"

"मैं बुलहवस हूँ?"

"बातें तो, कम-से-कम, वैसी ही करते हो।"

"अच्छा भाई, जो चाहे कह लो—समय की बात है।"

"हाँ समय तो हैई है—अच्छा अब सोइये। मुझे भी नींद आ रही है—सफर का थका हुआ हूँ।"

"तुम कुछ आदमी नहीं हो—कोई अच्छी तरकीब न निकाली।"

"मैं कभी इस फेर में ही नहीं पड़ा, तरकीब क्या निकालूँगा—आप जो जो कहते जायें वह मैं करता जाऊँ। इस सम्बन्ध में तो आपके दिमाग को अच्छा काम करना चाहिए था, परन्तु वह इसी समय बहुत ही कुन्द हो रहा है—बेचारा क्या करे—हृदय की सहायता पावे तो कुछ जोर लगावे।"

"तो जनाब मैं पागल तो हूँ नहीं, जो कोई वाही-तबाही काम कर बैठूँ।"

"तो महाशयजी, ऐसे कामों में बुद्धिमानों को सफलता भी बहुत कम मिलती है—बहुधा पागल हो जाने वाले ही बाजी मार ले जाते हैं। रामनाथ चुप रहे—कुछ न कहा। थोड़ी ही देर में ब्रजकिशोर खर्राटे लेने लगे—रामनाथ ने भी एक दीर्घ-निश्वास छोड़कर दूसरी ओर करवट ली और लिहाफ ओढ़ लिया।

प्रातःकाल नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर दोनों मित्र बैठे चाय पी रहे थे। उसी समय हरद्वारी ने आकर रामनाथ से कहा—"बड़े सरकार आपको बुलाते हैं।"

रामनाथ उठकर चलने लगे—ब्रजकिशोर बैठे रहे। हरद्वारी ने ब्रजकिशोर की ओर देखकर कहा—"आपको भी बुलाया है?"

रामनाथ चौंककर बोले—"इन्हें भी बुलाया है।"

हरिद्वारी "जी हाँ....."कहकर चला गया। रामनाथ ब्रजकिशोर की ओर देखकर बोले—"हम दोनों को क्यों बुलाया? कहीं कुछ खबर तो नहीं लग गई।"

ब्रजकिशोर हँसकर बोले—"चोर की दाढ़ी में तिनका।"

दोनों बाबू श्यामनाथ के पास पहुँचे। ब्रजकिशोर को देखकर श्यामना मुस्कराकर बोले—"आओ भाई, तुम अच्छे आ गये। रामनाथ के विवाह क बातचीत हो रही है। लड़की के पिता ने लड़की का फोटो भेजा है। तुम देख लो, रामनाथ भी देख लें। पीछे कोई शिकायत न हो। आजकल शिक्षित लड़के बड़े नुक्ताचीन होते हैं। इन्हें सन्तुष्ट करना बड़ा कठिन जाता है।"

यह कहकर श्यामनाथ ने एक फोटो ब्रजकिशोर के हाथ में दिया ब्रजकिशोर कुछ क्षणों तक फोटो देखकर बोले—"लड़की तो अच्छी है।"

श्यामनाथ प्रसन्नता का भाव दिखाते हुए बोले—"हाँ, लड़की बहुत अच है। मुझे तो इस लड़की से विवाह-सम्बन्ध करने में कोई आपत्ति नहीं इनसे तुम पूछ लो। मैं तो स्नान करने जाता हूँ—कोर्ट का समय निकट रहा है।"

यह कहकर श्यामनाथ चले गये। ब्रजकिशोर रामनाथ के हाथ में फो देखकर बोले—"देखिए, लड़की तो बहुत सुघर है।"

रामनाथ ने फोटो हाथ में लेकर देखा। ब्रजकिशोर ने पूछा—"कहि क्या राय है?"

रामनाथ मुँह बनाकर बोले—"हाँ, बुरी नहीं है।"

"बुरी नहीं है? आपकी वह जस्सो अधिक सुन्दर है?"

"उसकी इसकी कोई तुलना नहीं हो सकती।"

अर्थात् वह अधिक सुन्दर है।"

"नहीं—सुन्दर तो इससे अधिक नहीं है, पर वह वही है।

"केवल इसीलिए कि उसे आपने प्रत्यक्ष देखा। इसको प्रत्यक्ष देखने पश्चात् मैं आपसे फिर पूछूँगा। अच्छा तो इससे विवाह करने के लिए अ तैयार हैं न? अभी जो आपत्ति हो बता दीजिए।"

"आप कौन हैं? पहले यह बताइये।"

"मुझे आपके पिता ने आपकी स्वीकृति लेने के लिए नियुक्त किया है— अभी आपके सामने कह गये हैं।"

रामनाथ हँस पड़े, बोले—"बड़े बने हुए हो।"

"इसकी शिकायत आप अल्लाह मियाँ से कीजियेगा। मुझे इस समय यह बताओ कि क्या इरादे हैं ?"

रामनाथ मुस्कराकर बोले—"जैसी सलाह दो।"

"मेरी सलाह तो यह है कि ऐसी सुन्दर लड़की से यदि तुम विवाह न करो तो तुमसे बड़ा अभागा बेवकूफ कोई नहीं है।"

"चढ़ जा बेटा सूली पर भगवान् सब भला करेगा। यही बात है न ?" रामनाथ ने हँसकर पूछा।

"यह सूली नहीं है चिरंजीव, यह तुम्हारे हृदय के घाव के लिए मरहम है। इस मरहम से बहुत जल्दी चंगे हो जाओगे—समझे ?"

'चंगा तो खाक होऊँगा; परन्तु खैर, जब विवाह करना ही है, उससे बचत हो ही नहीं सकती, तब तक यही सही।"

ब्रजकिशोर मन-ही-मन हँसकर सोचने लगे—'कैसे चिट्टागुलखैरू हैं, फोटो को देखकर लौट हो गये। जरा विवाह हो जाने दो, यह तो जस्सो का नाम तक न लेंगे।'

२५

उपर्युक्त घटना हुए दो मास व्यतीत हो गये। रामनाथ के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं। सगाई हो चुकी थी। रामनाथ यद्यपि जस्सो को भूले नहीं थे; पर अब उसके लिए उतने व्याकुल न थे। वह अपनी समझ में जस्सो के प्रति, और जस्सो के लिए उनके हृदय में जो प्रेम था, उसके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन कर चुके थे। उनकी यही धारणा थी कि जस्सो ने उनसे विवाह करना अस्वीकार कर दिया—यह जस्सो का बड़ा भारी अपराध है। इसके लिए उनके मन में जस्सो के प्रति रोष भी उत्पन्न हो गया था। साथ ही यह अभिमान भी उत्पन्न हो गया था कि जब उसे उनकी परवाह नहीं तो वह उसके लिए क्यों इतने व्याकुल हों ? जस्सो के आदर्श को वह नहीं समझे—उन्होंने उसकी कुछ कद्र न की।

इधर अर्जुनसिंह को भी जस्सो के विवाह की चिन्ता उत्पन्न हुई और उन्होंने इसके लिए प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया। एक दिन उन्होंने नन्दराम से कहा—"जस्सो के विवाह की बातचीत तीन जगह हो रही है—एक तो

मुकुन्दपुर के ठाकुर के बड़े लड़के से; दूसरा शिवपुर के नम्बरदार का लड़का है, तीसरा शीतलपुर की ठकुराइन का लड़का है। इनमें से जिसे पसन्द करो, उसके लिए पक्का-पोढ़ा कर लिया जावे। तीनों लड़के मेरे देखे-समझे हुए हैं। मेरी राय तो शीतलपुर की ठकुराइन के लड़के के लिए है। वह बहुत खानदानी है, उसके पास जमींदारी भी काफी है—दस हजार सालाना मालगुजारी की ज़मींदारी है। लड़का देखने-सुनने में अच्छा है और सुशील है।''

नन्दराम ने कहा—''जिसे आप ठीक समझें, वही ठीक है। जो आपकी राय है, वही मेरी भी राय है।''

''तो इसी लड़के से ठीक कर लिया जाय। अब देर करना उचित नहीं, लड़की बहुत सयानी है।''

बस उसी दिन से जस्सो के विवाह की तैयारी होने लगी। क्रमशः यह समाचार जस्सो ने भी सुना। यह समाचार उसके लिए वज्रपात के समान प्रमाणित हुआ। वह अपनी ओर से रामनाथ के अतिरिक्त और किसी से भी विवाह करने के लिए प्रस्तुत न थी। तीन-चार दिनों तक वह बड़ी अधीर रही। उसे इस मुसीबत से छुटकारा पाने का कोई समुचित उपाय न सूझा। अन्त में उसने स्थिर किया कि अपने पिता से वह अपने हृदय की बात कहे परन्तु इसके लिए भी उसके हृदय में साहस का अभाव था। कैसे कहे और क्या कहे ? पिता अपने जी में क्या सोचेंगे ? मैं इतनी निर्लज्ज कैसे बनूँ ? क्या पिताजी मेरी बात मानकर कोई उपाय निकालेंगे ? यदि उन्होंने मेरी बात न सुनी तो क्या होगा ? इत्यादि प्रश्न उसके हृदय में उठते थे। कई दिन वह इसी उधेड़बुन में पड़ी रही। इधर विवाह की बातचीत प्रतिदिन अधिक गम्भीर होती जा रही थी। जस्सो के सामने ही जस्सो की दादी बड़े हर्ष तथा आनन्द से आने वाली स्त्रियों से कहती थी—''जस्सो के विवाह की बातचीत पक्की हो रही है। शीतलपुर की ठकुराइन के यहाँ बातचीत हो रही है। लड़का बड़ा अच्छा है। बड़े ठाकुर (अर्जुनसिंह) का देखा हुआ है। अब तो जस्सो का विवाह हो जाय, तब चैन पड़े। न जाने कितने देवी-देवता मनाये, तब यह दिन आया है।''

स्त्रियाँ इस पर अपनी प्रसन्नता प्रकट करतीं। परन्तु जस्सो के लिए यह प्रसंग बड़ा अरुचिकर होता। उसके पेट में खलबली मच जाती थी और आँसू बहाकर थोड़ी देर के लिए अपना जी कुछ हल्का कर लेती। परन्तु जब उसने

देखा कि समस्या प्रतिदिन अधिक जटिल होती जा रही है और शीघ्र ही मामला उस सीमा तक पहुँचने वाला है, जहाँ पहुँचकर वह असाध्य और बस से बाहर हो जाएगा, तब उसने निश्चय किया कि कम-से-कम पिता को यह प्रकट कर देना चाहिए कि वह इस विवाह से सुखी नहीं होगी—फिर जो भाग्य में बदा होगा—होता रहेगा।

जिस दिन जस्सो ने यह निश्चय किया, उसी दिन एक ऐसी घटना घटी, जिसके कारण परिस्थिति सर्वदा बदल गई। अर्जुनसिंह अपनी चौपाल में बैठे हुए थे। उसी समय एक कृषक उनके सम्मुख आकर बैठ गया। अर्जुनसिंह ने पूछा—"कहो लछमन, कहाँ गये थे, बहुत दिनों में दिखाई पड़े।"

लछमन बोला—"इधर जरा शीतलपुर चला गया था।"

शीतलपुर का नाम सुनकर अर्जुनसिंह बोले—'शीतलपुर ? अच्छा वहाँ क्या काम था ?"

"वहाँ हमारे एक रिश्तेदार रहते हैं।"

"अच्छा ! वहाँ का कुछ हाल तो बताओ। वहाँ की ठकुराइन के लड़के से हमारी पोती की बातचीत हो रही है।"

"हाँ, मुझे मालूम है।"

"तुझे कहाँ मालूम हुआ ?'

"वहीं सुना था।"

"क्या सुना था।"

"मालिक, हमने तो यह सुना कि ठकुराइन ब्याह नहीं करेंगी।"

अर्जुनसिंह घबराकर बोले—"ऐं, नहीं करेंगी क्यों ?"

"अब क्या कहें – मालिक।"

"नहीं, कहो क्यों नहीं। जरूर कहो !"

"अरे सरकार, वह कहने लायक नहीं है।"

अर्जुनसिंह अधिक चिन्तित तथा उत्सुक होकर बोले—"नहीं, तुम बेखटके कहो।"

लछमन केवल दाँत निकाल कर रह गया। अर्जुनसिंह ने पुनः कहा—"तुम डरते क्यों हो, तुमने तो जो सुना होगा वही कहोगे, फिर डर काहे का ?"

"मालिक, हमारे वही रिश्तेदार कहते थे कि ठकुराइन ब्याह नहीं करेंगी

उनको पता लग गया है कि छोटे ठाकुर गाँव की लड़की सोना को लेकर भाग गये थे, उसी से यह लड़की पैदा है। ठकुराइन कहती थीं कि ऐसी लड़की से वह अपने लड़के का ब्याह नहीं करेंगी।"

इतना कहकर लछमन भयभीत नेत्रों से अर्जुनसिंह की ओर ताकने लगा। उसे यह आशंका थी कि ऐसा अशुभ समाचार सुनाने पर अर्जुनसिंह उस पर नाराज न हो जायँ।

अर्जुनसिंह का चेहरा फक हो गया, उन्होंने "हूँ" कहकर सिर झुका लिया।

लछमन पुन: डरते-डरते बोला—"और भी न जाने क्या-क्या कहते थे, मुझे तो सब याद नहीं रहा।"

अर्जुनसिंह बोले—"और क्या कहते थे ?"

"कहते थे कि ठकुराइन को यह पता लग गया है कि लड़की अपने बाप के साथ बहुत दिनों तक भीख माँगती फिरती रही।"

अर्जुनसिंह सहसा उत्तेजित होकर बोले—"कौन ससुरा कहता है कि भीख माँगती रही ? हमारे सामने कहे तो मूछें उखाड़ लूँ। रही सोना को भगा ले जाने की बात, सो वह कोई गैर-जाति की तो नहीं थी, अपनी ही जाति की थी—थी कि नहीं ?"

वह व्यक्ति अर्जुनसिंह को क्रोध में देखकर मन-ही-मन काँप रहा था। उसने कहा—"हाँ सरकार, यह तो सारा गाँव जानता है।"

अर्जुनसिंह कुछ नम्र होकर बोले—"अपनी जाति की लड़की थी, विधिपूर्वक उसके साथ ब्याह हुआ था; कोई बैठाली, घरडाली भी तो नहीं थी।"

"बिलकुल ठीक बात है।"

"उन्हें ब्याह नहीं करना है तो न करें, कोई उनकी खुशामद नहीं करता। लड़कों की कमी है - एक नहीं तो दूसरे सही।"

"हाँ सरकार, लड़के एक छोड़ हजार मिल जायेंगे।"

इसी समय नन्दराम आ गया। उसने अर्जुनसिंह को उत्तेजित देखकर पूछा—"क्या बात है ?"

"शीतलपुर की ठकुराइन ब्याह करने पर राजी नहीं।" अर्जुनसिंह ने उत्तर दिया।

"क्यों ?"

"उनसे किसी ने कह दिया कि लड़की अपने बाप के साथ भीख माँगती फिरती रही और भगाई हुई स्त्री से पैदा है।"

यह सुनते ही नन्दराम सन्न रह गया।

अर्जुनसिंह बोले—"न करें ब्याह—एक नहीं, सौ दफै न करें। हमें क्या लड़का नहीं मिलेगा ? अब तो हम खुद उनके लड़के से ब्याह नहीं करेंगे।"

नन्दराम चुपचाप वहाँ से हट गया। उस दिन अर्जुनसिंह के घर में इस बात की बड़ी चर्चा रही। जस्सो के कान तक भी यह बात पहुँची, इस समाचार से उसे हर्ष तथा विषाद दोनों हुआ। हर्ष इस बात के लिए हुआ कि उसका ब्याह रुक गया। विषाद इस कारण से कि ठकुराइन ने अपने लड़के का ब्याह अस्वीकार करके उसका अपमान किया।

सबसे अधिक दुःख नन्दराम को हुआ। उसके हृदय में इस बात ने बड़ा आघात पहुँचाया। वह अकेला अपने कमरे में बैठा हुआ सोच रहा था—"क्या मेरे पापों का फल मेरी जस्सो को भोगना पड़ेगा ? इसमें सन्देह नहीं कि यह बात जो फैली है, तो जहाँ-जहाँ जस्सो से ब्याह की बातचीत लगेगी, वहाँ तक यह अवश्य पहुँचेगी और जो यह बात सुनेगा, वह फिर कदापि विवाह न करेगा। तो क्या मेरे पाप के कारण मेरी जस्सो कुँआरी ही रहेगी ?"

यह एक ऐसी बात थी, जिस पर कि नन्दराम ने आज से पहले कभी विचार ही न किया था। आज उसने इसकी गम्भीरता को समझा। आज उसके कानों में कोई विकट व्यंग्य के साथ कह रहा था—'नन्दराम देख अब तेरे पापों का प्रायश्चित आरम्भ हुआ। जिसे प्राणों से भी अधिक प्यार करता है, वह संसार द्वारा तिरस्कृत की जा रही है—जिसे तू सुखी बनाना चाहता है, उसके सामने दुःख का समुद्र लहरें मार रहा है।" नन्दराम चिल्ला उठा—' मैंने पाप किया—कदापि नहीं, कौन कहता है मैंने पाप किया ? मैंने कौनसी बात ऐसी की जिसे पाप कहा जा सकता है ?"

उसके कानों में पुनः किसी ने एक विकट हास्य के साथ कहा—"मूर्ख तूने अपने स्वतन्त्रतापूर्ण कार्य से सोना के माता-पिता को कितना-कितना क्लेश पहुँचाया, यह तू नहीं जानता ? तेरे वियोग में तेरे माता-पिता ने कितना दुःख भोगा —तेरी माता रोते-रोते अन्धी हो गई—उसको अन्धी बनाने का उत्तरदायी कौन है ? तू है नन्दराम ! क्या तू इसे पाप नहीं समझता ? और

अपनी प्यारी कन्या को इस परिस्थिति में डालने का जिम्मेदार कौन है ? तू है !

नन्दराम व्याकुल होकर रोने लगा और अपने-ही-आप बोला—"हाँ, हाँ मैं मानता हूँ यह पाप है, उसका दण्ड मुझे मिले, मैं उसे सहन करने को तैयार हूँ; परन्तु मेरी निरपराध जस्सो का क्या दोष है ? यह अन्याय है ! यह अत्याचार है !"

२६

उपर्युक्त घटना के पन्द्रह दिन पश्चात् अर्जुनसिंह को रामनाथ के विवाह का निमन्त्रण-पत्र मिला। साथ में रामनाथ के पिता का लिखा एक पत्र भी था। पत्र में अर्जुनसिंह से परिवार-सहित आने का अनुरोध किया गया था। अर्जुनसिंह ने नन्दराम से कहा—"मैं तो जाऊँगा नहीं—तुम चले जाओ।" नन्दराम ने इस बात को स्वीकार कर लिया।

नन्दराम उसी समय अन्तःपुर में पहुँचे और अपनी माता से बोले—"माँ, रामनाथ बाबू का विवाह है—वहाँ से बुलावा आया है। चलोगी ?"

नन्दराम की माता बोली—"चलूँ तो सब कुछ, पर मुझे तो सूझ पड़ता ही नहीं—वहाँ जाके करूँगी क्या ! किसे-किसे बुलाया है ?"

"उन्होंने तो घर भर को बुलाया है।"

"वह क्या कहते हैं ?"

'वह' का तात्पर्य नदराम के पिता से था।

नन्दराम ने उत्तर दिया—"वह तो कहते हैं कि मैं और जस्सो चले जायँ।"

"बस, यह ठीक है। मैं तो जस्सो को भी न भेजती, पर वहाँ इतने दिनों रही है, न जायगी तो उन्हें बुरा लगेगा।"

नन्दराम ने किंचित् मुस्कराकर कहा—"तुम न चलोगी ?"

"बेटा, मेरे में तो और अब कहीं परदेश में आने-जाने का बूता नहीं रहा। वहाँ जाने से उन पर और बोझ बन जाऊँगी। ब्याह-कारज का घर है—वहाँ जाऊँ और उनका हाथ बटाऊँ तो अच्छा भी लगे—उलटे उनसे अपनी सेवा कराऊँ—यह क्या अच्छा लगेगा ?"

नन्दराम ने कहा —"बात ठीक है। अच्छा मैं और जस्सो चले जायेंगे।"

"कब जाओगे, ब्याह कब का है ?"

"तीन-चार दिन में जाना चाहिए—ब्याह के दस दिन हैं। बारात जाने के दो-तीन दिन पहले पहुँचना चाहिए।"

"हाँ और क्या, अच्छी बात है। दो-तीन दिन में तैयारी कर दूँगी।"

"तैयारी ! क्या तैयारी करोगी ?"

"रामनाथ की बहू के लिए कुछ भेंट भी ले जायगा या यों ही हाथ हिलाता जा बैठेगा ?"

नन्दराम बोल उठा—"हाँ, यह तो तुमने ठीक कहा, इसका तो मुझे ध्यान ही नहीं था।"

"तुझे ध्यान कैसे रहे, तूने कभी अपने हाथ से कोई काम-काज किया हो तो ध्यान रहे—तू इन बातों को क्या जाने ?"

"तो कोई बढ़िया चीज होनी चाहिए। हमने उनका नमक खाया है—यह ध्यान रखना !"

"मुझे सब ध्यान है; तेरे बताने की जरूरत नहीं।"

इधर तो नन्दराम रामनाथ के विवाह में जाने की तैयारी में लगे, उधर जस्सो ने सुना कि रामनाथ का विवाह हो रहा है तो उस अबला पर वज्रपात सा हुआ। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि रामनाथ अपना विवाह किसी अन्य स्त्री से करने के लिए तैयार हो जावेंगे। रामनाथ किसी अन्य स्त्री से कभी विवाह नहीं करेंगे—इस आशा के सुदृढ़ गढ़ में वह एक प्रकार से निश्चिन्त-सी बैठी थी। परन्तु आज वह गढ़ ताश के पत्तों के मकान की भाँति ढेर हो गया और निराशा के भीषण आक्रमण से वह अधीर हो उठी। उसने सोचा—"क्या पुरुषों में प्रेम की सीमा यहीं तक होती है ? क्या पुरुषों की बातें इतनी बनावटी तथा कपटपूर्ण होती हैं ?"

वह रात-भर पड़ी यही बातें सोचती रही। कभी रोती थी, कभी संसार की अस्थिरता पर हँसती थी। पहले उसने यह स्थिर किया कि वह रामनाथ के विवाह में जाने से इन्कार कर दे। परन्तु फिर उसने सोचा कि यह बात उचित न होगी। प्रथम तो यदि उसका पिता, बाबा, दादी उससे वहाँ न जाने का कारण पूछेंगे, तो वह क्या उत्तर देगी। दूसरे उसके हृदय में यह उत्सुकता

भी उत्पन्न हुई कि वह अपनी आँखों से देखे कि रामनाथ को इस विवाह से कितना हर्ष तथा आनन्द प्राप्त होता है। वह स्त्री, जिसे रामनाथ की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है, कैसी है ? उसके (जस्सो के) साथ अब रामनाथ का क्या व्यवहार होगा ?

यह सब सोच-समझ कर जस्सो ने अपने पिता के साथ जाना निश्चित कर लिया।

२७

बाबू रामनाथ की बारात जाने में चार दिन शेष थे। घर में विवाह की चहल-पहल थी—बाहर से मेहमानों का शुभागमन हो रहा था। आज ब्रजकिशोर आने वाले हैं। रामनाथ बड़ी बेचैनी के साथ उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। ब्रजकिशोर पेशावर मेल से पौने चार बजे कानपुर स्टेशन पहुँचे। बाबू रामनाथ की गाड़ी स्टेशन पर उनके लिए पहले ही से खड़ी थी। उस पर सवार होकर सवा चार बजे के लगभग ब्रजकिशोर रामनाथ के मकान पर पहुँच गये। रामनाथ ने उन्हें देखते ही कहा—"क्यों जनाब, अब आपको फुर्सत मिली ?"

ब्रजकिशोर बोले—"क्या कहूं ! इसके पहले आ ही न सका।"

"बड़े नालायक हो ! यहाँ प्रतीक्षा करते-करते आँखें पथरा गईं।"—रामनाथ ने मुँह बनाकर कहा।

"तो भले आदमी क्या महीना भर पहले बुलाकर बिठाने का इरादा था ? अभी तो बारात जाने में चार दिन बाकी हैं। बल्कि सच पूछो तो मैं अब भी जल्दी आया—मुझे परसों आना चाहिएं था।"

"जी हाँ, सीधे वहीं आ जाते— यहाँ क्यों आये।"

"क्यों जनाब, मेहमानों का स्वागत इसी तरह किया जाता है ?" ब्रज-किशोर ने मुस्करा कर कहा।

"मेहमान ! तुम मेहमान हो ? ऐसे मेहमान की ऐसी-तैसी !"

"हाँ, हाँ, गालियाँ भी दे लो। (अपने हाथ की छड़ी रामनाथ की ओर बढ़ाकर) और यदि पीटने की इच्छा हो तो यह छड़ी हाजिर है।"

"अमाँ जाओ, बड़े खराब आदमी हो। तुमसे न जाने कितनी बातें करनी थीं।"

"तुम्हारी बातों का थैला तो कभी खाली हो नहीं सकता।"

"अच्छा चलो कपड़े-वपड़े उतारो। फिर बातें होंगी।"

ब्रजकिशोर ने कपड़े बदले, हाथ-मुँह धोया और कुछ जलपान करने के पश्चात् पहले बाबू श्यामनाथ से भेंट की। बाबू श्यामनाथ ने उन्हें देखकर पूछा—"आ गये बेटा! घर में सब खैरियत है?"

"जी हाँ, सब आपकी कृपा है।"

"डिप्टी साहब कब आवेंगे?"

"वह तो शायद यहाँ न आ सकें—एक रोज के लिए सीधे वहीं आवेंगे।"

"आवेंगे?"

"हाँ, अवेंगे तो अवश्य!"

"अच्छा हुआ तुम आ गये—अब सब प्रबन्ध तुम्हारे ही जिम्मे है। जैसा उचित समझो, करो।"

"वह सब हो जायगा, आप कुछ चिन्ता न करें।"

रात में रामनाथ और ब्रजकिशोर एक कमरे में लेटे।

रामनाथ ने कहा—"आखिर तुमने घेर-घारकर विवाह करा ही दिया।"

"तो अच्छा ही किया, कुछ बुराई तो की नहीं।"

"बुराई तो नहीं की परन्तु—।"

"परन्तु क्या?"

"कुछ अच्छाई भी नहीं की।"

"क्यों?"

"यार, क्या बताऊँ, मेरा अन्तःकरण कह रहा है कि मेरा विवाह करना उचित नहीं है।"

"बेवकूफ हो। हाँ, खूब याद आया। नन्दराम को निमन्त्रण भेजा कि नहीं?"

"हाँ, पिताजी ने भेजा है। मेरी कोई इच्छा नहीं थी, पर मैं अपनी इच्छा प्रकट कैसे करता? पिताजी से यदि कहता कि वहाँ निमन्त्रण मत भेजो, तो वह अपने मन में मुझे बड़ा नीच समझते। जिसने इतने दिन काटे, जिसके

यहाँ मैं रह आया, उसे निमन्त्रण न भेजा जाय, यह बात पिताजी कभी अच्छी न समझते।"

"अच्छी थी भी नहीं। नन्दरामसिंह को जब पता लगता कि तुम्हारा विवाह हो गया तो उसे कितना दु:ख होता! अपने जी में कहता कि देखो, हमें सूचना तक न दी, इतनी जल्दी भूल गये। निमन्त्रण भेज दिया गया, यह अच्छा हुआ। कौन-कौन आवेगा?"

"बुलाया तो घर भर को है—देखो कौन-कौन आता है।"

"आखिर तुम निमन्त्रण भेजने के खिलाफ क्यों थे?"

"मैं नहीं चाहता कि जस्सो को मेरे विवाह की सूचना मिले।" रामनाथ ने एक दीर्घ नि:श्वाँस छोड़कर कहा।

"सूचना तो उसे निमन्त्रण न भेजने पर भी मिल ही जाती।"

"हाँ, पर विवाह हो जाने के बहुत दिनों पश्चात् मिलती। वहाँ कौन कहने जाता?"

"नहीं रामनाथ, यह किसी भी दशा में ठीक न होता। नन्दरामसिंह तुम्हारे यहाँ कितने दिनों रहा है—यह तो सोचो! वह अब भी तुमको उसी दृष्टि से देखता है और तुम्हारा उतना ही आदर तथा सम्मान करता है। वह तुम्हारी प्रसन्नता में प्रसन्न और तुम्हारे दु:ख में दु:खी होने वाला आदमी है। इस अवसर पर उसे भूल जाना बहुत बड़ी गलती होती।"

"हाँ, यह तो तुम्हारा कहना ठीक है। परन्तु क्या बताऊँ मित्र! इस विवाह से मैं सुखी नहीं हूँ।"

"पागल हो! सुखी न होने के कारण?"

"मैं जस्सो के प्रति अन्याय कर रहा हूँ!"

"बिल्कुल गलत है। यह जो कुछ हो रहा है—स्वाभाविक हो रहा है। तुम किसी के प्रति अन्याय नहीं कर रहे हो।"

इसी प्रकार दोनों मित्र बहुत रात गये तक बातें करते रहे!

प्रात:काल उठकर और नित्य-क्रिया से निवृत्त होकर ब्रजकिशोर दावत के प्रबन्ध में लग गये। आज विवाह के उपलक्ष में दावत थी। उसका सारा प्रबन्ध-भार ब्रजकिशोर पर था।

दिन के ग्यारह बजे के लगभग, जबकि रामनाथ अपने कमरे में बैठे हुए

समाचारपत्र पढ़ रहे थे, हरद्वारी ने आकर उनसे कहा—"बाबूजी, नन्दरामसिंह आ गये।"

रामनाथ चौंक पड़े। उन्होंने पूछा—"और कौन-कौन आया है?"

"खाली नन्दरामसिंह और जस्सो बीबी आई हैं—और कोई नहीं आया।"

जस्सो का नाम सुनकर रामनाथ का कलेजा धक् से हुआ। हृदय में एक मीठी टीस उत्पन्न हो गई।

वह शीघ्रतापूर्वक उठे और सीधे ब्रजकिशोर के पास पहुँचे। ब्रजकिशोर उस समय मीठी तथा नमकीन तश्तरियाँ लगवा रहे थे। रामनाथ के उन्हें अलग ले जा कर कहा—'भाई ब्रजकिशोर, जिस बात का मुझे भय था, वही बात आगे आई।"

"कौन सी बात?" ब्रजकिशोर, ने भृकुटी चढ़ाकर पूछा।

"जस्सो आई है।"

"और कौन आया है?"

"नन्दरामसिंह आया है।"

"तो फिर? आये हैं तो आने दो।"

"यार मैं जस्सो के सामने क्या मुँह लेकर जाऊँगा?"

फिर वही बेढंगी बातें करने लगे?"

"मित्र तुम नहीं जानते कि मेरे हृदय पर क्या बीत रही है। जस्सो के आने से हृदय का घाव जो सूख चला था, फिर हरा हो गया है।"

"तुम्हारी इन व्यर्थ की बातों को सुनने के लिए मेरे पास समय नहीं है। मुझे अभी बहुत काम करना है।

इतना कहकर ब्रजकिशोर पुनः अपने काम में लग गये। रामनाथ म्लान मुख होकर अपने कमरे में लौट आये और बेचैनी के साथ टहलने लगे।

थोड़ी देर पश्चात् नन्दरामसिंह आया। उसने आते ही रामनाथ के चरण छूने के लिए हाथ बढ़ाया।

रामनाथ उसे बीच ही में रोककर बोले—"नन्दराम, तुम अपनी यह हरकत नहीं छोड़ते—मुझे यह बात बुरी लगती है।"

नन्दराम हाथ जोड़कर बोला—"बाबूजी आप मेरे मालिक—।"

रामनाथ मुँह बनाकर बोले—"यह बात अब भूल जाओ।"

"वह तो मैं इस जीवन में कभी नहीं भूल सकता।"

"अच्छा खैर, घर में सब कुशल है?"

"हाँ, सब आपकी दया है।"

"पिताजी, माताजी, सब मजे में हैं?"

"हाँ, सब अच्छी तरह हैं।"

"वे क्यों नहीं आये?"

"माताजी को तो, आप जानिए, दिखाई ही नहीं पड़ता—पिताजी भी कुछ अस्वस्थ रहते हैं।"

"अच्छा जाओ, कपड़े-वपड़े उतारो, सफर से आ रहे हो।"

नन्दराम चला गया।

रामनाथ चुपचाप कमरे में टहलते रहे। हठात् चम्पा ने उनके कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"भइया, जस्सो आ गई।"

रामनाथ चौंक पड़े; परन्तु चम्पा को सामने देखकर उन्होंने स्वयं को सँभाला और बोले—"आ गई तो अच्छी बात है।"

"इस बार तो बड़े ठाट-बाट से आई है।"

"तो क्या हुआ? जमींदार की लड़की है।"

"ठाट-बाट से चाहें जितनी हो, पर पहले से दुबली हो गई है; यहाँ जब थी, बहुत स्वस्थ थी, वहाँ जाकर तो रोगी-सी हो गई। जिस पर लोग देहात की जलवायु अच्छी बतलाते हैं।',

रामनाथ के हृदय में एक टीस उठी। उन्होंने चम्पा से उत्सुकतापूर्वक कहा—"आखिर उसके रोगी होने का कारण तो कुछ होगा ही। तूने उससे पूछा नहीं?"

"अभी तो आकर बैठी है—अब पूछूँगी।"

"हाँ पूछना।"

चम्पा जाने लगी। रामनाथ ने कहा—"देख, उसे आराम से रखना; कोई कष्ट न होने पावे।"

"आपके कहने की आवश्यकता नहीं, मुझे स्वयं इसका ध्यान है," इतना कहकर चम्पा चली गई। रामनाथ एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर कुर्सी पर बैठ गये।

२८

जस्सो के आने से रामनाथ का हृदय डावाँडोल हो उठा । विवाह के प्रति उनके हृदय में अरुचि उत्पन्न हो गई । परन्तु अब वह इतना आगे बढ़ गये थे, जहाँ से लौटना उनके लिए असम्भव था । अन्य अवसर पर तो वह कदाचित् चेष्टा करते, जस्सो से बातचीत करते; परन्तु इस अवसर पर तो वह इस बात की चेष्टा करते कि जस्सो से उनका साक्षात् न हो, परन्तु व्यावहारिक रसूमात के अवसर पर अन्य स्त्रियों के साथ जस्सो भी उनके सम्मुख आई । रामनाथ ने उसकी दृष्टि बचाकर उसकी ओर देखा । जस्सो के मुख पर उदासीनता के स्पष्ट चिह्न थे; परन्तु उसकी उदासीनता में सात्विकता थी—रोष तथा क्रोध लेशमात्र भी नहीं था । रामनाथ को वह मूर्तिमान करुणा दिखाई पड़ी । रामनाथ का कलेजा हिल गया । आज उन्होंने पूर्णरूप से यह अनुभव किया कि विवाह करके वह जस्सो के साथ विश्वासघात कर रहे हैं । रसूमात से छुट्टी मिलते ही वह अपने कमरे में आकर बैठ गये और अपने कार्य पर मनन करने लगे ।

सोचते-सोचते उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे । हठात् इसी समय ब्रज-आ गये । इन्हें आते देख रामनाथ ने झटपट आँसू पोंछ डाले । ब्रजकिशोर ने किशोर ने पूछा—"यहाँ अकेले कैसे बैठे हो ?"

रामनाथ ने सिर झुकाये हुए कहा—"कुछ नहीं—ऐसे ही बैठा हूँ ।"

ब्रजकिशोर ने रामनाथ की ठोड़ी पकड़कर उनका मुँह ऊपर उठाया—रामनाथ ने नेत्र लाल हो रहे थे और उनमें आँसू छलछला रहे थे । ब्रजकिशोर ने विस्मयपूर्ण स्वर में पूँछा—"यह क्या मामला है ?"

रामनाथ ने गद्गद् कंठ से कहा—कुछ नहीं ।"

"कोई बात तो अवश्य है । जान पड़ता है कि जस्सो से भेंट करके आये हो ।"

"नहीं, मैं अब इस योग्य ही नहीं जो उससे बात तक करने का साहस कर सकूँ ।"

"अच्छा ! यह क्यों ?"

"जब मैं उसके प्रति अपने प्रेम के प्रति विश्वासघात कर रहा हूँ, तो उससे क्या मुंह लेकर भेंट करूँ ?"

ब्रजकिशोर समझ गये कि जस्सो की उपस्थिति से रामनाथ के हृदय ने पुनः पलटा खाया है। ब्रजकिशोर ने कहा—"तुमने तो सब प्रकार के उपाय करके देख लिया—इससे अधिक तुम कर ही क्या सकते थे?"

"हाँ, परन्तु कम-से-कम एक कार्य मुझे और करना चाहिए था।"

"वह क्या?"

"विवाह न करना चाहिए था। यदि मैं विवाह न करता तो कोई बात नहीं थी, परन्तु अब तो मैं विश्वासघाती बन गया।"

"विवाह कुछ तुम थोड़ा ही कर रहे हो, तुम्हारे माता-पिता कर रहे हैं।"

"यदि मैं करना स्वीकार न करता तो माता-पिता क्या कर सकते थे?"

"यदि तुम विवाह करना अस्वीकार करते तो जानते हो क्या होता?"

"क्या होता?"

"बहुत बुरा होता। तुम में और माता-पिता में वैमनस्य हो जाता। उनको दुःख होता और यह स्वर्ग-तुल्य घर नर्क-तुल्य हो जाता।"

"मेरे लिए तो अब भी नर्क-तुल्य ही है।"

"यह तुम्हारी भावुकता है।"

'सम्भव है ऐसा ही हो, परन्तु ब्रजकिशोर, मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि मैं सुखी नहीं हूँ।"

"सुखी न हों तुम्हारे शत्रु; कैसी व्यर्थ बात मुँह से निकालते हो।"

"यदि तुम जस्सो की दशा देख लो तो तुम्हें पता लगे।"

"क्या दशा है?"

"वह सुन्दर पुष्प, जिसे इस अवस्था में पूर्ण विकसित तथा सौरभपूर्ण होना चाहिए था—इस समय शुष्क तथा कुम्हलाया हुआ है।"

"परन्तु उसे विकसित तथा सौरभपूर्ण करना तुम्हारे बस की बात नहीं है।"

"है ब्रजकिशोर! यदि मैं विवाह न करूँ तो—।"

"विवाह तो अब रुक नहीं सकता।"

"हाँ, और इसलिए कि मैं कायर हूँ—स्वार्थी हूँ।"

"नहीं! इसलिए कि तुम प्रेम करते हो, परन्तु प्रेमान्ध नहीं हो; इसलिए कि तुम माता-पिता के प्रति अपना कर्त्तव्य समझते हो; इसलिए कि जस्सो से तुम्हारा विवाह होने की कोई आशा नहीं।"

"परन्तु यदि मैं विवाह न करता तो जस्सो को सन्तोष रहता और सम्भव है कि कभी ऐसा समय आ जाता जब हम दोनों स्वतन्त्र हो जाते।"

"यह सब व्यर्थ की बातें हैं। ऐसा समय तभी आ सकता था, जब न तुम्हारे ऊपर कोई बड़ा-बूढ़ा होता और न उसके ऊपर! तो क्या, रामनाथ, मैं यह समझूँ कि तुम अपना स्वार्थ साधन करने के लिए अपने और जस्सो के परिवार का नाश चाहते हो? क्या तुम उस दिन की प्रतीक्षा करते हो जब तुम्हारे परिवार में केवल तुम और जस्सो के परिवार में केवल जस्सो रह जाय? रामनाथ मुझे विश्वास है कि अभी तुम इतने पतित नहीं हुए हो।"

रामनाथ व्याकुल होकर बोले—"नहीं भाई, ऐसा तो मैं कभी भी न चाहूँगा।"

"तो फिर इन बातों से क्या लाभ? ईश्वर की जो इच्छा है, वह हो रहा है। तुम भी वीरता और साहस के साथ सब सहन करो। रही जस्सो, सो उसका भी कहीं-न-कहीं विवाह हो जायगा। यदि तुमसे उसे इतना प्रेम होता कि तुम्हारे बिना वह संसार में रह ही न सकती तो वह तुम्हारे विवाह के प्रस्ताव को इस लापरवाही से कभी न ठुकरा देती। तुमने तो सब कुछ करके देख लिया—तुम्हारा अब कोई दोष नहीं।"

"परन्तु मेरी आत्मा कहती है कि मुख्य दोषी मैं ही हूँ।"

"मैं फिर कहता हूँ, यह तुम्हारी भावुकता है।"

"अच्छा भाई, भावुकता ही सही।"

ब्रजकिशोर अत्यन्त गम्भीर होकर बोले—"रामनाथ ईश्वर की दया से तुम सुशिक्षित हो, बुद्धिमान हो। तुम्हें इस प्रकार किंकर्त्तव्यविमूढ़ होना शोभा नहीं देता। यदि तुम अपनी ऐसी दशा बनाओगे तो जानते हो क्या होगा? जस्सो भी तुम्हें दोषी समझेगी। तुम्हें तो उचित है कि अपना व्यवहार ऐसा रक्खो, जिससे जस्सो तुम्हें दोषी न समझकर अपने ही को दोषी समझे।"

"यह कैसे हो सकता है, ब्रजकिशोर? जब मैं उसके सामने जाता हूँ तो मेरी आँखें नीची हो जाती हैं। मैं उस समय अनुभव करता हूँ कि मैं विवाह करके जस्सो के साथ अन्याय कर रहा हूँ।"

"तुम्हें उस समय यह अनुभव करना चाहिए कि जस्सो ने तुम्हारे विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करके तुम्हारे साथ अन्याय किया है।"

"परन्तु उसने अस्वीकार तो कभी नहीं किया। उसने केवल यह कहा कि वह अपने घर वालों की अनुमति के बिना विवाह नहीं कर सकती।"

"तुम भी तो अपने माता-पिता के जोर देने से विवाह कर रहे हो। जो उसने किया, वही तुम भी कर रहे हो।"

"हाँ, यह बात तो तुम्हारी किसी अंश तक ठीक है।"

"तो फिर यह स्त्रियों की भाँति टसुए बहाना छोड़ो। मर्दों की तरह काम करो।"

"आह, ब्रजकिशोर, तुम नहीं जानते—यह दुष्ट प्रेम बड़े-बड़े वीरों को तिनके चुनवा देता है, बड़े-बड़े बलवानों को स्त्रियों की भाँति निर्बल बना देता है।"

"बना देता होगा। मैंने तो कभी किसी से प्रेम नहीं किया। अतएव मैं ये बातें क्या जानू ? मेरे लिए तो प्रेम का दूसरा नाम आत्मा की कमजोरी और भावुकता है।"

"इसीलिए तुम सुखी हो।

"यदि मेरे जैसे विचार तुम्हारे भी हो जायँ तो तुम भी सुखी हो सकते हो।"

"हाँ, परन्तु मेरा हृदय तुम्हारे हृदय की भाँति प्रेम-शून्य नहीं है। अतएव मेरे विचार तुम्हारे जैसे नहीं हो सकते।"

"अच्छा, विवाह हो जाने दो, फिर तुम्हारे विचारों को देखूँगा।"

२८

निश्चित समय पर बरात ने कानपुर से प्रस्थान किया। उस दिन रामनाथ के कुछ रिश्तेदार भी बाहर से आ गये थे। इन रिश्तेदारों में दो रामनाथ के समवयस्क थे। उन्होंने तथा कुछ स्थानीय मित्रों ने रामनाथ की उदासीनता को ताड़ा। उनमें से एक ने प्रश्न किया—"क्यों भाई रामनाथ, तुम कुछ उदास दिखाई पड़ते हो ?"

"उदास कैसा ?" रामनाथ ने आश्चर्य का भाव दिखाते हुए पूछा।

"यही कि विवाह के प्रति तुम कुछ उत्साहित तथा आनन्दित नहीं दिखाई पड़ते।"

"उत्साह तथा आनन्द दिखाने के लिए क्या करना होता है ?"

'करना कुछ नहीं होता—वह तो मुख से ही प्रकट हो जाता है।"

"हो जाता होगा। मैं कुछ बच्चा तो हूँ नहीं जो खुशी के मारे कूदने लगूँ।"

इस पर सबने अट्टहास किया। एक बोला—"यह हमने आज ही सुना कि विवाह की खुशी के मारे कोई कूदने भी लगता है।"

रामनाथ कुछ लज्जित होकर बोले—"आप लोगों को तो सूझा है मजाक और मैं इस समय मजाक के 'मूड' (मौज) में नहीं हूँ।"

"हो भी कैसे सकते हो, नोन-तेल-लकड़ी की चिन्ता जो सवार हो गई।"

इस पर पुनः सबने अट्टहास किया।

"भई, यह उन लोगों में नहीं हैं, जो गा-बजा कर काठ में पाँव देते हैं।" एक बोला।

दूसरे ने पूछा—"तो यह किन लोगों में हैं ?"

"यह उन लोगों में हैं, जो रोते-झींकते भविष्य की चिन्ता के बीच में पड़कर विवाह करते जाते हैं।

"इसलिए बाल-विवाह को पुराने लोग अच्छा समझते हैं। उस समय कुछ चिन्ता न रहती— विवाह का पूरा आनन्द मिलता है।

"बिल्कुल ठीक कहते हो— यही कारण है।'

इसी प्रकार सब मित्र-मण्डली रामनाथ का उपहास कर रही थी, केवल ब्रजकिशोर इस मण्डली में सम्मिलित नहीं थे। वह प्रबन्ध-कार्य में इतने मग्न थे कि उन्हें इन बातों के लिए अवकाश ही नहीं था।

बेचारे रामनाथ चुपचाप बैठे अपने हँसते हुए मित्रों का मुँह ताक रहे थे और सोच रहे थे—'इन लोगों को क्या पता कि मेरे हृदय पर क्या बीत रही है। ये लोग तो मुझमें भी उत्साह तथा हर्ष देखना चाहते हैं, जो ऐसे समय में बहुधा नवयुवकों में हुआ करता है। परन्तु मुझमें वह बात कैसे हो सकती है? मेरा तो हृदय बैठा जाता है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं वह काम करने जा रहा हूँ जो मुझे नहीं करना चाहिए। ब्रजकिशोर दुष्ट इसे भावुकता बताता है। परन्तु मेरा हृदय कहता है, यह भावुकता नहीं। चौबीस घण्टों के पश्चात् मेरे और जस्सो के बीच में एक ऐसी गहरी खाई खुद जावेगी कि मेरा और उसका विवाह-सम्बन्ध सदैव के लिए असम्भव हो जायगा।"

इसी समय उनके कानों में यह शब्द सुनाई पड़े—"भई इस समय यह गहरी चिन्ता में हैं—अधिक मत छेड़ो।"

रामनाथ चौंक पड़े। उन्होंने जबरदस्ती हँसने की चेष्टा करते हुए कहा, "समझ में नहीं आता कि आप लोग चाहते क्या हैं ?"

"हम लोग यह चाहते हैं कि आप जब हँसें या मुस्करायें तो उसमें कुछ आनन्द और प्रसन्नता की झलक हो। आपकी हँसी देखकर तो रोने को जी चाहता है। ऐसी रोनी-सूरत हँसी तो मैंने आज तक किसी दूल्हे के मुख पर नहीं देखी।"

"देखी क्यों नहीं, मेरे मुख पर तो देख रहे हो।" रामनाथ ने विषादपूर्ण मुस्कान के साथ कहा।

"यह एक नया तथा विचित्र अनुभव हुआ है।"

"अनुभवों का कभी अन्त नहीं होता और नये अनुभव सदैव विचित्र प्रतीत होते हैं।" रामनाथ ने कहा।

एक मित्र अन्य साथियों की ओर देखकर बोला—"सुना आपने, क्या तत्त्व की बात कही है।"

दूसरा बोला—"ज्ञानवायु में आदमी ऐसी ही बातें करता है।"

इस पर पुनः सबने कहकहा लगाया।

रामनाथ बेचारे पुनः लज्जित होकर मौन हो गये।

उचित समय पर बरात निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गई। बरात का स्वागत खूब धूमधाम से हुआ।

पाणिग्रहण-संस्कार के लिए जाने के कुछ समय पूर्व रामनाथ ने सोचा—'अब भी समय है।' परन्तु दूसरे ही क्षण उन्हें ध्यान आया, 'अब समय कहाँ रहा ? पीछे लौटना असम्भव है। चले चलो, ईश्वर की यही इच्छा है।'

पाणिग्रहण-संस्कार से लौटकर रामनाथ ने ब्रजकिशोर से बड़े नैराश्यपूर्ण स्वर में कहा—"ब्रजकिशोर आज समाप्त हो गया !"

"क्या ?" ब्रजकिशोर ने पूछा।

"मेरे जीवन का सुख-स्वप्न ! मेरे जीवन का वह नाटक, जिसका मैं नायक और जस्सो नायिका थी।"

"नाटक समाप्त होने के लिए ही आरम्भ होता है।"

"यहाँ परन्तु यह शीघ्र ही समाप्त हो गया—और जानते हो क्या हुआ ! मैं अपना पार्ट खेलने में असमर्थ रहा। यदि मैं अपना पार्ट उचित रूप से करता तो यह नाटक इतना शीघ्र समाप्त न होता।

"उस दशा में तुम्हारा नाटक सुखान्त नहीं, दुखान्त होता।"

"दु:खान्त तो अब भी हुआ है।"

"अभी तुम्हें ऐसा ही प्रतीत होता है।"

"अभी क्या सदैव प्रतीत होता रहेगा।"

"आगे क्या होगा यह कोई नहीं बता सकता। यह भविष्य के गर्भ में अन्तर्निहित है।"

"अधिकतर भविष्य वर्तमान पर निर्भर होता है। वर्तमान समय में जो कुछ किया जाता है, भविष्य उसी के अनुसार होता है।"

"हाँ ऐसा भी होता है; पर सदैव नहीं। अतएव ऐसे नियम नहीं बना सकते।

"जब नहीं होता तब वह अपवाद कहा जाता है। प्रत्येक नियम में अपवाद है—और अपवाद ही नियम का अस्तित्व प्रमाणित करता है।"

"देखिए—आगे चलकर पता लगेगा।"

"जिसे पता लगेगा वह जानेगा—तुम्हें क्या ?

"मुझे ? मुझे सबसे पहले पता लगेगा।"

"ब्रजकिशोर, एकाध बेर मेरे हृदय में यह प्रश्न उठता है कि तुम मेरे मित्र हो या शत्रु।"

"अच्छा ! यह क्यों ?"

"मेरे तथा जस्सो के प्रेम पर सदैव कुठाराघात करते रहे हो।"

"मैं कुठाराघात करता रहा हूँ ! अरे क्यों अन्धेर करते हो, तनिक ईश्वर से डरो ! तुम्हारे लिए मैं चन्द्रपुर गया था—यह कदाचित् तुम भूल गये।"

"परन्तु उससे लाभ क्या हुआ ?"

"अब इसे मैं क्या करूँ; यह तुम्हारे भाग्य का दोष है।"

"यह विवाह कराने में तुम्हारी भरपूर कोशिश रही है।"

"यह भी बिल्कुल ग़लत है। वह काम तुम्हारे पिताजी का है !"

"नहीं मेरा तात्पर्य यह है कि तुम्हीं ने विवाह के लिए उद्यत किया।"

"नहीं तो तुम विवाह न करते ?"

"न करने का प्रयत्न करता।"

"अजी बस बैठे भी रहो, प्रयत्न करते अपनी ऐसी-तैसी। पिताजी के सामने बोलते तो घिग्घी बँधती है—प्रयत्न करते और क्यों जनाब, मैंने जो समझाया तो क्या बुरा किया ? यदि और कुछ हिमाकत कर बैठते तो—"

"इससे तो फिर भी अच्छा ही होता।"

"होता तुम्हारा सिर ! न कुछ होता न हवाता—होता वही जो हुआ है। मेरे समझाने से इतना हुआ कि, तुम्हें मुझ पर दोषारोपण करने का बहाना मिल गया।"

"बहाना क्यों, सच्ची बात है।"

"तो भाई साहब—यदि आप मुझसे यह आशा रखते थे कि मैं आपको यह परामर्श देता कि आप विवाह न करें—यदि पिताजी न मानें तो नन्दराम की तरह घर छोड़कर भाग जायँ—तो यह आपकी भूल थी। मैं ऐसी सलाह कभी नहीं दे सकता। ईश्वर की दया से अभी मेरा दिमाग खराब नहीं हुआ है। इसके अतिरिक्त मैं यह भी जानता था कि तुमसे वह होगा भी नहीं। अतएव तुम्हें उसके लिए प्रोत्साहित करना व्यर्थ था। जब मैं चन्द्रपुर से लौट कर आया था—उस समय तुमने क्या कहा था—याद है !"

"मुझे इस समय कुछ याद नहीं है। मैं केवल एक बात जानता हूँ। और वह यह है कि मैंने विवाह करके अच्छा नहीं किया।"

"यह तो तुम तीन सौ आठ बार कह चुके हो, और विवाह होने के पहले से कहते चले आ रहे हो ; परन्तु मित्र विवाह तो अब हो ही गया और इस विवाह से आपकी कोई बहुत बड़ी हानि नहीं हुई। यदि अवसर मिले तो जस्सो से विवाह कर लेना। हिन्दुओं में, तुम्हारे भाग्य से अभी बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित है।"

"परन्तु वह कोई अच्छी प्रथा नहीं।"

"अच्छी प्रथाएँ तो बहुत-सी नहीं हैं परन्तु वे सब चालू हैं। इसी प्रकार यह भी चालू है।"

"परन्तु मैं तो उस प्रथा के अनुसार कार्य नहीं करना चाहता।"

"यदि तुम्हारे प्रेम में कुछ बल होगा तो झक मार के करोगे।"

इसी समय कुछ अन्य लोग आ गये—अतएव दोनों मित्रों का वार्तालाप समाप्त हो गया।

उधर तो यह हो रहा था, इधर जस्सो बेचारी पर जो बीत रही थी उसे वह जानती थी। रामनाथ की तरह उसे इतनी सुविधा भी प्राप्त नहीं थी कि वह अपने हृदय की बात किसी से कहे। इस कारण रामनाथ की अपेक्षा उसकी दशा अधिक दयनीय थी। परन्तु वह अपने मानसिक क्लेश को जिस धैर्य तथा दृढ़ता के साथ सहन कर रही थी वह सर्वथा प्रशंसनीय था। वह विवाह के आनन्दोत्सव में भाग लेती थी, स्त्रियों साथ गाती थी, हँसती थी। परन्तु जितना वह सबके साथ हँसती थी उससे अधिक एकान्त में बैठकर रोती थी। उसे ऐसा जान पड़ता था कि मानो संसार में उसका कोई नहीं है। रामनाथ बाबू पर उसने अपना भविष्य अपना सुख, अपना जीवन, अपना सर्वस्व निर्भर किया था, परन्तु अन्त में उन्होंने भी आँखें फेर लीं। अब संसार में उसका कौन है! परन्तु इतना होते हुए भी रामनाथ के प्रति उसका प्रेम किंचिन्मात्र भी कम न हुआ था। वह रामनाथ को सर्वथा निर्दोष समझती थी—दोष समझती थी वह केवल अपने भाग्य का।

उचित समय पर बारात लौट आई। नव-वधू का दखकर सबको प्रसन्नता हुई। वह यथेष्ट सुन्दर थी। जस्सो ने मुँह दिखाई में नव-वधू को एक सुन्दर नेकलस हार, जिसका मूल्य तीन सौ रुपये के लगभग होगा और एक जरी के काम की सुन्दर साड़ी भेंट की। रामनाथ की माता बोली—"अरे बेटी इतनी भारी चीज देने की क्या जरूरत है!"

जस्सो ने उत्तर दिया—"माता जी मैं आपको देने योग्य कब हूं मैं तो खुद आपका अन्न खाकर पली हूँ।"

"बस, तेरी यही बात मुझे बूरी लगती है। तू यह बात न कहा कर।"

चम्पा बोल उठी—"इसे वही बात कहने में आनन्द आता है—जो हमें बूरी लगे।"

"अच्छा अब न कहा करूँगी—बस ? और, यह तो दादीजी ने दिया है—मैं देने वाली कौन हूँ ?"

"दादीजी का नाम लेती है, कर्त्ता-धर्त्ता तो तू ही है, उन्हें तो आँखों से नहीं सूझता।" चम्पा ने कहा।

रामनाथ की माता बोलीं—"लाख आँखों से न सूझे, मुँह से तो बता सकती हैं। जब घर का बड़ा बूढ़ा मौजूद है तो उसके होते हुए छोटा कर्त्ता-धर्त्ता कैसे हो सकता है ? यह जो कुछ करती होगी उन्हीं की आज्ञा से।"

माता की बात से चम्पा निरुत्तर हो गई।

बारात लौटने के पाँचवें दिन सोहाग-रात थी। इस दिन जस्सो सबेरे से ही चैतन्य हो गई। दासियों के रहते हुए भी उसने अपने हाथ से नव-वधू के उबटन लगाया, उसे नहलाया। चम्पा ने पूछा—"अरी यह क्या करती है।" जस्सो ने विषादयुक्त मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया—"जिसमें मुझे सुख मिलता है वही करती हूँ।"

"इसमें क्या सुख है पगली ?"

"तुम्हें क्या बताऊँ ?"

चम्पा ने अपनी माता स जाकर कहा—"यह जस्सा बड़ी पागल है। सबेरे से भूत की तरह जुटी है। और किसी को हाथ ही नहीं लगाने देती।"

माता ने आकर कहा—"अरी बेटी तू क्यों हलकान हो रही है—यह तेरा काम थोड़े ही है।"

"माताजी आज मुझे जी भर के सेवा कर लेने दो—ऐसा सौभाग्य फिर कहाँ मिलेगा ?"

इतना कहते-कहते जस्सो के नेत्रों में आँसू छलछला आये। अपने आँसुओं को छिपाने के लिए उसने सिर झुका लिया।

नव-वधू का सिर गूंथने में उसने काफी समय लगाया। चोटी गूंथते-गूंथते वह ज्ञान शून्य सी हो जाती और उसकी उँगलियाँ रुक जातीं उस समय नव-वधू कहती—"क्या कर रही हैं—मैं तो बैठे-बैठे थक गई।" उस समय जस्सो चौंककर पुनः जल्दी-जल्दी उँगलियाँ चलाने लगती। नव-वधू सोचती यह लड़की पागल सी जान पड़ती है।

सिर गूंथकर उसने हाथ फेरते हुए कहा—"बहू, तुम बड़ी भाग्यवान हो।"

नव-वधू ने कुछ विस्मित होकर उसकी ओर देखा और कहा—"क्यों ?"

जस्सो मुस्कराकर बोली—"भाग्यवान न होती तो इस घर में ब्याह कर क्यों आतीं।"

"दुर पगली।" कहकर नव-वधू उठ खड़ी हुई।

हठात् जस्सो घबरा उठी। उसने कहा—"ओ! जरा ठहरो।"

"क्यों ?"

"एक कसर रह गई।"

"कौन सी कसर ?"

"माँग तो भरी नहीं।"

"अच्छा, चल बैठ रहने दे।"

"तुम्हें मेरी कसम दो मिनट का काम है।"

नव-वधू मुस्कराकर बैठती हुई बोली—"तूने तो आज मेरे प्राण ले ाए।"

"तो बदले में अपने प्राण भी तो सौंप रही हूँ।"

"मैंने तो तुझसे कहा नहीं, तू अपने आप ही जुटी है।"

जस्सो हँसकर मौन हो गई। वह शीघ्रतापूर्वक जाकर सिन्दूर लाई और ाँग भरने बैठी। सिन्दूर में उँगली डुबोकर उसने नव-वधू को दिखाते हुए हा—"देख कितना लाल है—बिल्कुल रक्त मालूम होता है।"

नव-वधू बोली—"सिन्दूर लाल तो होता ही है।"

"हाँ लाल ही होता है।" यह कहते हुए जस्सो ने माँग में सिन्दूर भरना ारम्भ किया।

हठात् उसने पूछा—"भला कोई रक्त से माँग भरता होगा ?"

"रक्त से भला कौन भरेगा ? क्यों ?"

"ऐसे ही पूछती हूँ। जब सिन्दूर का चलन न हुआ होगा तब काहे से माँग ारी जाती होगी।"

"यह तो कोई इतिहास का जानने वाला ही बता सकता है। मैं क्या ानूँ।"

"छोटे बाबू जानते होंगे, उन्होंने इतिहास पढ़ा है। पूछना तो।"

नव-वधू ने कुछ लज्जित होकर जस्सो के गाल मसल दिये और बोली— 'तू ही न जाकर पूछ ले।"

"मुझे भला वह क्यों बताने लगे।" जस्सो ने कुछ उदास होकर कहा।

माँग भर जाने के पश्चात् जस्सो ने अपनी लाई हुयी साड़ी भी पहनाई ाड़ी का प्रश्न उठने पर उसने स्वयं चम्पा की माता से यह प्रार्थना की कि ही साड़ी पहनाई जाए। चम्पा की माता ने कह दिया—"जो तेरा जी चाहे पहना, आज तो तू ही सब कर रही है—साड़ी भी अपने मन की पहना।"

पूर्ण शृंगार हो जाने के पश्चात् जस्सो एक बेर नव-वधू को सिर से पैर तक देखकर बोली—"आज तुम्हें देखकर छोटे बाबू सब कुछ भूल जायेंगे।"

नव-वधू ने जस्सो की इस बात का मर्म न समझकर कोई उत्तर न दिया, केवल मुस्कराकर रह गई।

रात में पत्नी को देखकर रामनाथ सन्तुष्ट हुए। साड़ी को देखकर रामनाथ ने पूछा—"यह साड़ी तो बड़ी सुन्दर है, कहाँ से मिली ?"

"यह साड़ी जस्सो ने दी और यह नेकलस दिया है।"

"अच्छा।" कहकर रामनाथ मौन हो गये—उनका मुख मलिन हो गया हठात् पत्नी पूछ बैठी—"यह जस्सो कौन है ?"

"कोई नहीं।" रामनाथ ने अन्यमनस्कता से उत्तर दिया।

"कोई नहीं। कोई तो होगी ही।"

रामनाथ चौंक पड़े और सिटपिटा कर बोले—"हाँ वह जाति की ठाकुर है। उसका बाप घर से लड़कर हमारे यहाँ चला आया था और कुछ दिनों नौकरी करता रहा था, फिर उसका बाबा आकर सबको ले गया।"

"लड़की है मुहब्बत वाली। आज सबेरे से मेरी ही सेवा में लगी रही। नहलाया-धुलाया, कंघी-चोटी की, कपड़े-वपड़े पहनाये—सब उसी ने किया।"

रामनाथ के हृदय पर एक छनका लगा। वह भीतर ही भीतर तिलमिला उठे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जस्सो ने उनकी पत्नी के शृंगार में अपना हृदय ओत-प्रोत करके उनके सामने रख दिया है। उन्होंने इस समय महसूस किया कि जस्सो कितनी महान है और वह कितने क्षुद्र ? उनके हृदय में अशान्ति की ज्वाला धधक उठी। सुसज्जित तथा विद्युत पूर्ण कमरे में कोमल शय्या पर नव यौवन सुन्दरी के समीप बैठे हुए भी उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वह किसी मरुभूमि में अकेले पथ-भ्रष्ट बैठे हैं। चारों ओर शृंगार की सामग्री होते हुए भी उनके हृदय में इस समय वैराग्य उमड़ रहा था।

उनकी पत्नी ने उनकी इस अन्यमनस्कता तथा उदासीनता को देखा; परन्तु वह नव-वधूचित लज्जा के कारण उसका कुछ कारण न पूछ सकी, सर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

रामनाथ सोच रहे थे—"क्या सोचा था। क्या हुआ। विधना के लेख को कौन मेट सकता है। मैंने बहुत चेष्टा की; परन्तु भाग्य में वही लिखा

था। अभागी जस्सो को दुःख भोगना ही बदा है, और, मेरे हृदय में भी यह काँटा जन्म भर खटकता रहेगा।'

यह कहकर लेटे रहे।

रामनाथ इसी प्रकार की बातें सोच रहे थे। हठात् पत्नी को खाँसी आने से उनकी मग्नता भंग हुई। उन्होंने चौंककर कुछ क्षणों तक उसकी ओर देखा, तत्पश्चात् मुँह बनाकर बोले—"आज मेरे सिर में पीड़ा हो रही है?"

इधर जस्सो अपनी चारपाई पर पड़ी थी। उसके पास ही दूसरी चारपाई पर चम्पा लेटी हुई थी। जस्सो सोच रही थी—'रामनाथ बाबू का क्या दोष है!—सारा दोष मेरे भाग्य का है। उन्होंने तो अपनी तरफ से सब कुछ किया। ब्याह का सन्देश तक भेजा; परन्तु जिस प्रकार से वह चाहते थे, उस प्रकार से ब्याह कैसे हो सकता था और कोई युक्ति भी तो नहीं थी। उनके माता-पिता ब्याह करने को कभी राजी न होते। मेरे बाबा भी राजी न होते। हाय, मैं किस बुरी घड़ी में इनके द्वार पर आई थी। खैर यह भी अच्छा ही है कि जो कुछ दुःख है वह मुझे है। रामनाथ बाबू को भगवान सुखी रक्खे, उन्हें सुखी देखकर मुझे एक प्रकार से सुख ही रहेगा।'

हठात् चम्पा ने करवट लेकर कहा—"जस्सो तेरा ब्याह कब होगा!"

जस्सो ने एक दीर्घ निश्श्वास छोड़कर कहा—"मेरा ब्याह तो इस जन्म में हो चुका।"

"क्यों चम्पा ने विस्मित होकर पूछा।"

"भिखारिणी से कौन विवाह करेगा?"

"भिखारिणी जब थी, तब थी, अब तो नहीं है।"

"भिखारिणी तो अब भी हूँ।"

"भिखारिणी नहीं है—व्यर्थ बातें बनाती है।"

"कलङ्क तो सदा के लिए लग गया।"

"इसमें कलङ्क की कौन बात है?"

"तुम क्या जानो, चम्पा बीबी—यह संसार बड़ा विलक्षण है।"

"तेरा सिर विलक्षण है। पगली, समझती है कि जन्म भर कुँआरी रहेगी।"

"देख लेना।"

"देखा है। तेरे बाप-दादा तुझे कुँआरी रहने देंगे तब न?"

"जब कोई ब्याह करेगा ही नहीं तो क्या करेंगे ।"

"तेरी जैसी-से कोई ब्याह न करेगा ?"

"क्यों, मुझ में कोई विशेषता है क्या ?"

"क्यों, है क्यों नहीं । तेरे में कौन सी बात नहीं है । सुन्दर तू है, अच्छे खानदान की तू है,पैसे वाली तू है—उससे अधिक और क्या होता है ।"

"इससे अधिक भाग्य होता है चम्पा बीबी, भाग्य खोटा होता है तो कोई बात काम नहीं देती ।"

"भाग्य खोटा है तेरे बैरी का ।"

जस्सो केवल एक लम्बी साँस लेकर रह गई । थोड़ी देर तक दोनों मौन रहीं । हठात् जस्सो ने पूछा—"तुम्हारा ब्याह कब होगा ? अपनी तो कहो ।"

"मेरा ब्याह जब माता-पिता करेंगे तब होगा ।"

अपने ब्याह में मुझे बुलाओगी ?"

"पहले तो तेरा होगा, तू बुलायेगी तो मैं भी बुलाऊँगी ।"

"हाँ मेरा ब्याह होगा तो जरूर बुलाऊंगी ।"

"तू बुलायेगी तो मैं भी बुलाऊँगी, तू न बुलायेगी तो मैं भी न बुलाऊँगी ।"

कुछ देर तक दोनों इसी प्रकार की बात करती रहीं । इसके पश्चात् चम्पा सो गई; परन्तु जस्सो को नींद नहीं आई—वह पड़ी करवटें बदलती रही ।

30

बारात लौटने के एक सप्ताह पश्चात् नन्दरामसिंह ने घर जाने की अनुमति चाही । इस बीच में रामनाथ तथा जस्सो से एक क्षण के लिए भी स्वतन्त्रता-पूर्वक साक्षात् नहीं हुआ । रामनाथ तो विवाह करने के कारण इतने भीरु हो गये थे कि जस्सो के सम्मुख जाते हुए उन्हें भय मालूम होता था । इधर जस्सो यह समझती थी कि उसने रामनाथ के विवाह का प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया, इससे रामनाथ उस पर रुष्ट हैं अतएव उसका साहस भी नहीं होता था कि वह उनसे कुछ वार्त्तालाप करने का प्रयत्न करे ।

नन्दरामसिंह के अनुमति माँगने पर रामनाथ के पिता ने कहा—

"अभी कौन जल्दी पड़ी है, चार-छह दिन रहो ।"

नन्दराम ने कहा—"चार-छह दिन क्या, मैं चार-छह महीने रहूँ, पर वहाँ पिताजी चिन्तित होंगे।"

"चिन्तित क्यों होंगे, वह जानते ही हैं कि यहाँ आये हो" बाबू श्यामनाथ ने कहा।

"जानते अवश्य हैं; परन्तु आजकल वहाँ के काम-काज का सारा भार मुझ पर है, घर का काम-काज जस्सो देखती है—माताजी को सूझता ही नहीं उन्हें भी बड़ी असुविधा हो रही होगी।"

बाबू श्यामनाथ ने रामनाथ को बुलाकर कहा—"अरे भाई रामनाथ, यह नन्दराम जाने के लिए कह रहा है।"

रामनाथ ने पूछा—"क्यों भई, क्या जाना चाहते हो ?"

"मैं क्या जाना चाहता हूँ। वहाँ घर पर प्रतीक्षा हो रही होगी ? इसलिए जाना पड़ रहा है।"

"दो चार दिन और रहते।"

"नहीं अब जाने ही दीजिए।"

रामनाथ ने पिता से कहा—"जाने दीजिए, मजबूरी है।"

"बाबू श्यामनाथ बोले—' अच्छी बात है, कल चले जाना। कम से कम आज तो रहो।"

"अच्छी बात है, कल सही।"

नन्दराम के जाने की बात जानकर बाबू रामनाथ को प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता इसलिए हुई कि नन्दराम के साथ जस्सो भी चली जायगी। जस्सो के रहने से उन्हें कष्ट था। एक कष्ट तो यह था कि जस्सो की उपस्थिति के कारण उनका चित्त उदास रहता था। वह जस्सो को भूलने की चेष्टा करते थे; परन्तु जहाँ उसका नाम सुनते अथवा उसकी झलक देखते तो उनके हृदय में टीस होने लगती थी। दूसरा कष्ट यह था कि वह घर में स्वच्छन्दतापूर्वक आ-जा नहीं सकते थे, जस्सो के सामने जाते हुए उन्हें भय तथा लज्जा मालूम होती थी; इसलिए उन्हें अधिकतर मकान के बाहरी भाग में पड़े रहना पड़ता था। जस्सो के चले जाने से इन दोनों कष्टों से छुटकारा मिल जायगा; अतएव वह प्रसन्न थे।

कितना विकट परिवर्तन ! एक दिन वह था जब जस्सो को अपने यहाँ रखने के लिए उन्होंने कितना प्रयत्न किया था और उसमें असफल होने पर उन्हें कितनी हार्दिक पीड़ा हुई थी। परन्तु आज वह प्रसन्न हैं और इसलिए प्रसन्न हैं कि जस्सो चली जायगी, उनकी आँखों के सामने से टल जायगी। रामनाथ ने भी अपने इस परिवर्तन को महसूस किया और एकान्त में बैठकर इस पर मनन भी किया। बहुत देर तक सोच-विचार करने के पश्चात् उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि आरम्भ से लेकर अब तक वह परिस्थिति के दास रहे। परिस्थिति उन्हें जैसा नाच नचाती रही वैसा नाच वह नाचते रहे।

दूसरे दिन दोपहर के समय जबकि जस्सो के चलने की तैयारी हो रही थी तो चम्पा ने पूछा—"अब कब आवेगी ?

जस्सो ने विषादपूर्ण मन्द मुस्कान के साथ कहा—"जो जीवित रही तो तुम्हारे ब्याह में आऊँगी।"

चम्पा किंचित् लज्जायुक्त मुस्कराहट के साथ बोली—"तब तो आवेगी ही, बीच में नहीं आवेगी ?"

"बीच में ? बीच में आकर क्या करूँगी ?"

"ऐसे ही घूम फिर जाना।"

जस्सो दीर्घ निश्वास छोड़कर बोली—"अब आना कहाँ होगा ! इस बेर तुम हमारे यहाँ आओ।"

"मैं तो तेरे ब्याह में आऊँगी।"

"नहीं पहले एक बेर आओ।"

"पहले तो आना कठिन है।"

"क्यों ?"

"यहाँ से कोई काहे को जाने देगा।"

"मैं लिखूँगी तब भी नहीं जाने देगा।"

"हाँ तुम लिखो तो चाहे जाने देंगे ?"

"हाँ मैं लिखूँगी, अपनी भाभी को भी साथ लाना।"

"भाभी को ?"

"हाँ क्यों ? कोई हर्ज है क्या !"

"नहीं, हर्ज तो नहीं—भाभी को भेजेंगे तो उन्हें भी लेती आऊँगी।"

"मेरी बड़ी इच्छा है कि एक बेर तुम और तुम्हारी भाभी वहाँ आओ।"

"देखो, बदा होगा तो आवेंगे ही।"

जस्सो म्लान मुख होकर बोली—"हाँ, बदे की तो सारी बात ही है।"

इधर तो जस्सो चम्पा से बातें कर रही थी, उधर नन्दरामसिंह बाबू श्यामनाथ तथा रामनाथ से विदा हो रहा था। नन्दराम कह रहा था—"अब देखिए कब आप लोगों के दर्शन हों। अपना कुशल समाचार देते रहियेगा, ऐसा न हो भूल जायें।"

रामनाथ मौन रहे। वकील साहब बोल उठे—"नहीं भूल कैसे सकते हैं। तुम भी चिट्ठी-पत्री लिखते रहना। हाँ यह तो बताओ, लड़की का विवाह कब करोगे? कहीं बात-चीत लगी?"

नन्दराम बोला—"बात-चीत पक्की नहीं हुई; परन्तु ऐसी आशा है कि जल्दी पक्की हो जायगी।"

"हमारे योग्य जो काम हो बताना।"

"आप लोगों का तो भरोसा ही है।"

"और अब कभी वहाँ से ऊबे तो यहाँ आ जाया करना—दस-पाँच दिन रह कर चले जाना।"

"हाँ, आ जाऊँगा।"

इसी समय पालकी गाड़ी आ गई और असबाब लादा जाने लगा।

बाबू श्यामनाथ ने रामनाथ से पूछा—"स्टेशन तो जाओगे न?"

रामनाथ इस प्रश्न पर पहले ही से विचार कर रहे थे। यद्यपि उनकी बहुत इच्छा थी कि स्टेशन तक जायँ; परन्तु साहस न होता था।

इस समय बाबू श्यामनाथ के प्रश्न करने पर वह सोचने लगे कि क्या कहूँ; परन्तु उनके कुछ कहने के पूर्व ही नन्दराम बोल उठा "क्या करेंगे व्यर्थ कष्ट होगा।"

"नहीं कष्ट की कौन-सी बात है।" रामनाथ ने कहा।

नन्दराम बोला—"तो कोई आवश्यकता भी तो नहीं।"

वकील साहब बोल उठे—"तो हर्ज क्या है?"

"नहीं दोपहर का समय है। आराम करने दीजिए।"

रामनाथ चुप रह गये। वह इस समय किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। नन्दराम के मना करने पर उन्होंने अपने चित्त को संतोष देने के लिए

सोचा—"मैं तो जाने को तैयार हूँ; पर यह आवश्यकता नहीं समझता तो न सही।"

जस्सो सबसे गले मिलकर विदा हुयी। रामनाथ की पत्नी से वह विशेष रूप से बड़े प्रेमपूर्वक गले मिली और नेत्रों में आँसू भरकर बोली—"इस गरीबनी को भूल न जाना।"

उसने मुस्कराकर जस्सो के कान में कहा "तुझे कैसे भूलूँगी, उस दिन (अर्थात्—सोहागरात-वाले दिन) मुझे कितना हैरान किया था—याद है ?"

"याद है; और जन्म भर याद रहेगा। वही दिन तो मेरे जीवन का एक दिन था।" जस्सो ने हर्षपूर्ण विषाद के साथ कहा।

जस्सो आकर गाड़ी में बैठी। चम्पा उसे बाहर तक पहुँचाने आई।

रामनाथ—ठीक गाड़ी के सामने बरामदे में खड़े थे। चम्पा ने रामनाथ से पूछा—"भइया स्टेशन नहीं जाओगे क्या ?"

रामनाथ ने मानो प्राण पाये। मन ही मन चम्पा के इस प्रश्न पर प्रसन्न होकर उच्च स्वर से, जिससे जस्सो सुन सके बोले—"मैं तो तैयार था परन्तु नन्दराम ने मना कर दिया।"

चम्पा बोली—"वह लाख मना करे, तुम्हारी इच्छा होती तो जरूर जाते।"

रामनाथ की सारी प्रसन्नता मिट्टी में मिल गई। ठीक इसी समय जस्सो ने थोड़ा-सा मुँह निकालकर उनकी ओर देखा। एक क्षण के लिए रामनाथ की और उसकी दृष्टि मिल गई। जस्सो के मुख पर हलकी सी विषादपूर्ण मुस्कराहट थी। रामनाथ उस दृष्टि को सहन न कर सके, उनका हृदय डूबने लगा। उन्होंने अपराधियों की भाँति सिर झुका लिया।

गाड़ी चल दी।

× × ×

जस्सो-ट्रेन में बैठी हुई प्लेटफार्म के उस स्थान को स्थिर दृष्टि से देख रही थी जहाँ रामनाथ उस दफा खड़े थे जबकि वह उसे पहली बेर पहुँचाने आये थे। आज वह स्थान, यात्रियों की भीड़ के रहते हुए भी, जस्सो के लिए सूना था। यह जानते हुए भी कि रामनाथ नहीं आये उसकी दृष्टि उन्हें ढूँढ़ रही थी।

गाड़ी सीटी देकर चली । जस्सो की दृष्टि उसी स्थान पर लगी रही । प्लेटफार्म अदृश्य हो गया, परन्तु वह उसी ओर ताकती रही। पिछली घटनाएँ उसके मस्तिष्क में एक-एक करके आतीं थीं और रेलवे लाइन के किनारे पर लगे हुए तार के खम्भों के साथ विलीन हो जाती थीं । अपना पिछला जीवन उसे एक स्वप्न-सा प्रतीत हो रहा था। परन्तु आह ! वह स्वप्न कितना मधुर था, कितना सुख-दायक था और यह जाग्रति ? कुछ नहीं ! संसार असार है ! उतना ही असार और परिवर्तनशील जितना कि दौड़ती हुई ट्रेन के भीतर से दिखाई देने वाला बाहर का दृश्य। कानपुर प्रत्येक क्षण दूर हटता चला जा रहा था। उसके साथ ही जस्सो के हृदय की अभिलाषाएँ और शाखाएँ भी हटती चली जा रही थीं और हटता चला जा रहा था संसार का मोह, जीवन का मोह अपने अस्तित्व का मोह ! कानपुर के मिलों की गगन चुम्बी चिमनियाँ भी अदृश्य हो गयी थीं—केवल आकाश के कुछ भाग में तैयार हुआ धुँआ इस बात की सूचना दे रहा था कि इसी के नीचे कहीं कानपुर विद्यमान है। 'यह थोड़ा-सा धुआँ क्या उतने बड़े नगर का धुँआ है ? उसी धुँए के नीचे क्या कानपुर नगर है ? वह कानपुर जिसमें कि मेरे हृदय-देवता रामनाथ रहते हैं ? होगा ! अपने से क्या ? और रामनाथ मेरे हृदय-देवता क्यों, अपनी पत्नी के हृदय-देवता होंगे। वह उसे मुबारक रहें, उन्हें वह मुबारक रहे। एँ अब तो धुँआ भी नहीं दिखाई पड़ता ! वह भी अदृश्य हो गया। गया वह भी गया ? जाने दो। सब भ्रम था; न कहीं कानपुर है और न कहीं रामनाथ ; वह न सही—उनकी मूर्ति तो हृदय में विराजमान है और सदा रहेगी। कानपुर को मैं भूल सकती हूँ, संसार को भूल सकती हूँ परन्तु रामनाथ को भूलना मेरे वस की बात नहीं ! आह ! यदि मैं उन्हें भी भूल सकती तो—गाड़ी में बैठकर जब मैंने उन्हें देखा था—वह बरामदे में खड़े थे। मुझसे दृष्टि मिलते ही उन्होंने सिर नीचा कर लिया था। स्टेशन तक पहुँचाने तक न आये। हाँ अब क्यों आते। मैं उनकी कौन हूँ जो आते। वह मुझे भूलने की चेष्टा कर रहे हैं—अच्छा है ! भूल जाएँ तो अच्छा ही है यदि वह मुझे भूलकर सुखी हो सकते हैं तो उन्हें अवश्य भूल जाना चाहिए। मुझे इस बात पर सन्तोष है।

जस्सो की आँखों में आँसू भर आये। 'एँ यह क्या ! फिर वही हृदय की

दुर्बलता। मैं उनका ध्यान ही क्यों करती हूँ? कोई दूसरी बात सोचनी चाहिए। हाँ, दादीजी प्रतीक्षा करती होंगी। मेरे पहुँचने पर वह कितनी प्रसन्न होंगी। विवाह की सब बातें पूछेंगी। सब बताऊँगी। हाँ बताऊँगी पर संक्षेप में। विस्तार में तो मुझसे न बताया जायगा! फिर वही बातें याद आवेंगी और याद क्यों न आवें! वे बातें भुलाई थोड़े ही जा सकती हैं। विशेष करके सोहाग वाला दिन! वह तो जन्म भर याद रहेगा। उस दिन मैंने बहू का शृंगार कैसा किया था! रामनाथ बाबू देखकर चकित रह गये होंगे; उन्हें क्या पता कि किसने शृंगार किया था; बहू ने बताया थोड़ा ही होगा। बहू बेचारी है तो बड़ी नेक, मुझसे बड़ा स्नेह का व्यवहार किया। अच्छा है, बेचारी फूले-फले, जीवन का सुख देखे। रामनाथ बाबू उसके प्रेम में पड़कर सब भूल जायेंगे।

एक झटके के साथ ट्रेन रुक गई। जस्सो चौंक पड़ी। नन्दराम बोल उठा—"एक स्टेशन निकल आये।"

"जस्सो ने पूछा—यहाँ से कानपुर कितनी दूर है?"

"यही कोई तीन-चार कोस होगा।" नन्दराम ने उत्तर दिया।

जस्सो ने सोचा—'बस, तीन-चार कोस। मुझे तो ऐसा जान पड़ा कि सैकड़ों कोस पीछे छूट गया।' दो मिनट पश्चात् गाड़ी पुनः चली; जस्सो भी पूर्ववत् ध्यान मग्न हो गई।

31

उपर्युक्त घटना हुए तीन वर्ष व्यतीत हो गये। रामनाथ आजकल वकालत करते हैं। उनके एक दो वर्ष का पुत्र है। चम्पा का विवाह भी रामनाथ के विवाह के एक वर्ष पश्चात् हो गया था। चम्पा आजकल अपनी ससुराल में है। चम्पा के विवाह में नन्दराम के यहाँ से कोई नहीं आया था, क्योंकि उसे कोई सूचना नहीं दी गई थी। रामनाथ के विवाह के पश्चात् नन्दरामसिंह तथा रामनाथ में दो-तीन बार परस्पर पत्र-व्यवहार हुआ—तत्पश्चात् बन्द हो गया। बन्द होने का कारण यह था कि रामनाथ ने नन्दराम के दो-तीन पत्रों का उत्तर नहीं दिया था, अतएव नन्दराम ने भी पत्र लिखना बन्द कर दिया।

इधर नन्दराम का परिवार भी बड़ा उथल पुथल हो गया। रामनाथ के विवाह के एक वर्ष पश्चात् अर्जुनसिंह की मृत्यु हो गई। अर्जुनसिंह की मृत्यु जस्सो का विवाह न हो सकने के कारण हुई। जस्सो का विवाह नहीं हुआ। जिस-जिस जगह अर्जुनसिंह ने जस्सो का विवाह सम्बन्ध करना चाहा वहीं-वहीं उनके शत्रुओं ने नन्दरामसिंह के पिछले जीवन की पोल खोलकर उन्हें भड़का दिया। इस अपमान से उन्हें और नन्दरामसिंह को घोर मानसिक क्लेश हुआ। परन्तु जस्सो इससे प्रसन्न थी। उसने निश्चय कर लिया था कि वह आजन्म कुमारी रहेगी। इस कारण उसके इस निश्चय की पूर्ति बड़ी सरलतापूर्वक हो रही थी। जिसे उसके पिता तथा बाबा अपना घोर अपमान समझते थे उसे जस्सो अपने निश्चय के प्रति ईश्वर के प्रति ईश्वरीय समझती थी। इससे आत्माभिमानी अर्जुनसिंह के हृदय पर बड़ा सदमा पहुँचा। वह बीमार पड़ गये और एक मास तक रोग-शय्या का सेवन करके इस संसार से विदा हो गये।

पिता की मृत्यु के पश्चात् नन्दराम ने एक कुलीन परन्तु दरिद्र ठाकुर को दहेज में एक गाँव देने का प्रलोभन देकर, अपने पुत्र के साथ जस्सो का विवाह करने के लिए राजी कर लिया; परन्तु जस्सो ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया। उसने अपने पिता से स्पष्ट कहा कि—"यदि तुम मेरा शेष जीवन दुःखमय नहीं बनाना चाहते हो तो मेरा विवाह करने का विचार त्याग दो।" नन्दराम ने जस्सो को बहुत समझाया-बुझाया; परन्तु वह किसी प्रकार राजी न हुई। उसने यहाँ तक कह दिया कि—"यदि तुम मुझे विवाह के लिए अधिक दबाओगे तो मैं कुछ खाकर सो रहूँगी।" विवश होकर नन्दरामसिंह ने जस्सो के विवाह का विचार छोड़ दिया। परन्तु इससे नन्दराम को बहुत दुख था। पति की मृत्यु के दो वर्ष पश्चात् नन्दरामसिंह की माता का भी देहान्त हो गया। वह भी अन्त समय तक जस्सो के विवाह का स्वप्न देखती रहीं। नन्दरामसिंह माता की अन्त्येष्टि क्रिया से छुट्टी पा चुका है। आजकल दोनों का जीवन बड़ा अशान्तिमय है। नन्दरामसिंह दिनभर बाहरी कमरे में पड़ा रहता है—जस्सो घर के भीतर पड़ी रहती है। नन्दरामसिंह के पास जमींदारी सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त वैसे लोग कम आते-जाते हैं। केवल दो-तीन व्यक्ति, जो नन्दराम के सच्चे शुभचिन्तक हैं और दो-चार ऐसे व्यक्ति जो खुशामद तथा चापलूसी द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध किया करते हैं, उसके पास आते-जाते हैं।

दिन में इन लोगों के आते-जाते रहने से उसका मन बहला रहता है। परन्तु रात में उसका समस्त दुःख—उसके हृदय की सारी अशान्ति जाग्रत हो उठती है। परन्तु जस्सो बिचारी को दिन में भी मन बहलाव का कोई साधन प्राप्त नहीं होता। जस्सो के पास दो-एक टहलनियों के अतिरिक्त गाँव की और कोई स्त्री नहीं आती। कैसे आवे ? सोना से नन्दरामसिंह का विवाह विधिपूर्वक हुआ था या नहीं ? यदि बिना विवाह हुए ही जस्सो का जन्म हुआ है तो ? जस्सो से कोई भला मानस अपने लड़के का विवाह करने को तैयार क्यों नहीं होता ? ये तीन-चार प्रश्न ऐसे थे जो गाँव वालों के मन में उठा करते थे। उन्हें इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता था, यद्यपि नन्दरामसिंह ने गाँव में आने पर यह भली-भाँति प्रकट कर दिया था कि उसने सोना से विधिपूर्वक विवाह कर लिया था और जिस गाँव में और जिसके घर में से विवाह किया था; उसका नाम और पता सब कुछ बता दिया था परन्तु फिर भी लोगों का सन्देह दूर नहीं हुआ था। जो व्यक्ति इतना बदचलन निकला कि गाँव के एक भले आदमी की लड़की को भगा ले गया, जिसने माता-पिता को इतना दुःख दिया कि अन्त में वे उसी दुःख से मर गये ऐसे आदमी की बात का क्या विश्वास ? यद्यपि नन्दराम के सामने उससे कोई व्यक्ति ये बातें न कहता था; परन्तु परोक्ष में सब कहते थे। ऐसी दशा में जस्सो के पास गाँव की कुछ ललनायें कैसे आतीं ? अतएव जस्सो बेचारी दिन में भी अकेले ही पड़ी रहती थी।

जस्सो बेचारी कभी अपनी मृत अभिलाषाओं पर आँसू बहाया करती, कभी संसार की अस्थिरता तथा असारता पर हँसा करती थी—यही उसकी दिनचर्या थी। इधर नन्दराम भी जब अकेला होता तो अपने पिछले जीवन पर विचार करके दुःखी हुआ करता था। एक बात का उसे बड़ा ही पश्चाताप था और वह बात यही थी कि उसने मित्र का कहना न माना। यदि वह मित्र का कहना मानकर उसके गाँव में स्थायीरूप से स्थित हो जाता तो उसे भीख न माँगनी पड़ती। माता-पिता से शीघ्र मेल भी हो जाता। बाबू रामनाथ के यहाँ आश्रय लेने का अवसर न आता। रामनाथ से जस्सो का प्रेम न होता, अतएव यह विवाह कर लेती। इतना हो जाने से उसका जीवन दुःखपूर्ण न होता। समय रूपी जर्राह ने सोना का विरह घाव भर ही दिया था—अब केवल चिन्ह मात्र रह गया। अतएव उसका जीवन सुख से नहीं तो सन्तोष के

साथ व्यतीत हो सकता था। परन्तु केवल एक भूल के परिणामस्वरूप उसका जीवन घोर दुःखपूर्ण हो गया। आज वह इस बात को पूर्णतया महसूस करता है कि सोना को भगा ले जाकर उसने पाप किया था। यदि वह पाप नहीं था तो उसे इतना दुःख क्यों मिला और मिल रहा है? दुःख पाप से ही मिलता है, पुण्य से नहीं। परन्तु यदि उसने पाप किया भी तो संसार की दृष्टि में। ईश्वर की दृष्टि में तो उसने कोई पाप नहीं किया। परन्तु समाज के प्रचलित नियमों तथा कानूनों का उल्लंघन करना भी पाप ही है। यदि पाप नहीं तो उसका दण्ड क्यों मिलता है? निस्सन्देह सोना को भगा ले जाना पाप था। उसके जीवन के बहुत थोड़े दिन सुख में बीते। और वे दिन वह थे जब सोना के साथ कलकत्ता में था; परन्तु अब तो उस समय की स्मृति भी हृदय को उत्फुल्लित करने के बदले पीड़ित करती है। दुःख तथा अशान्ति के समय सुख और शान्ति की स्मृति सुख नहीं पहुँचाती। आह! यदि वह अपने जीवन को फिर नये सिरे से आरम्भ कर सकता तो!

नन्दरामसिंह का एकान्त समय इन्हीं विचारों में व्यतीत होता था। जस्सो को देखकर उसका दुःख और भी बढ़ जाता था। जस्सो पूर्ण वयस्क थी, यौवन का विकास पूर्णतया हो चुका था। यह वह समय था जब उसे जीवन का सुख उठाना चाहिए था। परन्तु जब उसे घर के एक कोने में तिरस्कृत, अनादृता, कलङ्किता की भाँति पड़े देखता था तो उसका हृदय विदीर्ण होने लगता था। उस समय नन्दराम को जस्सो अपने पापों का मूर्तिमान प्रायश्चित दिखाई पड़ती थी।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। अन्त में जब दोनों अपने इस जीवन से ऊब उठे, तो एक दिन नन्दरामसिंह ने जस्सो से कहा—"बेटी, क्या तू अपना सारा जीवन इस तरह बितायेगी? मुझसे तो अब तेरी यह दशा नहीं देखी जाती। यदि तू रामनाथ से ही विवाह करके सुखी हो सकती है तो मैं तेरा विवाह उनसे करने को तैयार हूँ। मैं उनके पास जाऊँगा और उनसे प्रार्थना करूँगा कि वह विवाह कर लें। जस्सो ने विषादपूर्ण मन्द मुस्कान के साथ कहा—"परन्तु वह तुम्हारी बात क्यों मानने लगे।"

"मैं उन्हें मनाऊँगा—जैसे मानेंगे वैसे मनाऊँगा।"

"परन्तु उनका तो विवाह हो गया है।"

"तो क्या हुआ । एक आदमी के क्या दो विवाह नहीं होते ?"

"वह मान भी लें; परन्तु मैं तो नहीं मानूँगी ।"

नन्दराम चौंक पड़ा । उसने आश्चर्य भरे नेत्रों से जस्सो को देखकर कहा– "क्या, तू नहीं मानेगी ?"

"नहीं ।"

"क्यों ?"

"उनका विवाह तो हो चुका ।"

"हो चुका तो क्या हुआ, एक और हो सकता है ।"

"परन्तु उस विवाह से मैं क्या सुखी हो सकूँगी ? पिताजी यदि आप ऐसी आशा करते हैं तो भूल करते हैं । स्वयम् तो सुखी हो ही न सकूँगी, उनके भी सुखमय जीवन के नाश का कारण हो जाऊँगी । मैं ऐसा काम नहीं करूँगी । अपने साथ उनका सुख नष्ट-भ्रष्ट नहीं करूँगी । भगवान ने उन्हें संसार का सुख लूटने के लिए बनाया है ।"

"और तुझे ?" नन्दराम ने उत्तेजित होकर पूछा ।

"मुझे ? यह तो अभी स्वयं नहीं जान सकी कि भगवान ने मुझे किस-लिए पैदा किया । कदाचित दुःख भोगने के लिए ही पैदा किया होगा ।"

"नहीं, यह झूठी बात है । भगवान् मुझे दुःख दे सकते हैं, मैं उनका अप-राधी हूँ, परन्तु तुझे दुःख देने का उन्हें कोई अधिकार नहीं । तूने उनका कौनसा अपराध किया है ?"

"एक अपराध अवश्य किया है ।"

"वह कौनसा ?" नन्दराम ने उत्सुकतापूर्वक पूछा ।

"जिस सुख की मैं अधिकारिणी नहीं थी उसको पाने की आशा करके । बावन होकर चाँद को पकड़ने की चेष्टा करना भी अपराध ही है पिताजी ।"

नन्दराम चुप होकर जस्सो का मुँह ताकने लगा । वह नहीं समझ सका कि जस्सो की बात का क्या उत्तर दे । थोड़ी देर पश्चात् वह बोला—"तो फिर अब तू करेगी क्या ? रामनाथ से भी विवाह न करेगी और किसी से विवाह न करेगी, तो शेष जीवन कैसे व्यतीत करेगी ? मैं तो इस जीवन से ऊब गया—अपने जीवन से ऊब गया—तेरे जीवन से ऊब गया । मैं यदि मर जाता तो अच्छा था, अपनी आँखों से तेरी यह दशा तो न देखता ।"

इतना कहकर नन्दराम रोने लगा। परन्तु जस्सो की आँखों में आँसू की बूँद भी न आई। जस्सो उसी प्रकार विषादयुक्त मन्द मुस्कान के साथ बोली—"रोने से यह दुःख दूर नहीं होगा। चाहे जितना रोओ, आँसुओं में डूब जाओ, पर कुछ लाभ न होगा। यदि इस दुःख से छुटकारा पाना चाहते हो तो हँसो पिताजी, खूब हँसो ! अपने ऊपर हँसो। संसार पर हँसो। अपनी भूलों पर हँसो, अपनी लालसाओं पर हँसो। अपने प्रेमियों पर हँसो, अपने द्रोहियों पर हँसो। हँसने से ही कल्याण है। मैं जब रोती हूँ तो दुःख मिलता है, हँसती हूँ तो शान्ति मिलती है। इसलिए तुम से कहती हूँ, तुम भी हँसो—तुम्हें भी शान्ति मिलेगी।"

"परन्तु हँसने का कौन-सा कारण है बेटी ?"

"अपने ऊपर इसलिए हँसो कि तुमने संसार को नहीं समझा। संसार पर इसलिए हँसो कि संसार ने तुमको नहीं समझा। अपनी भूलों पर इसलिए हँसो कि उनका सुधार असम्भव है। अपनी लालसाओं पर इस वास्ते हँसो कि वे अनधिकार चेष्टायें थीं। अपने प्रेमियों पर इस कारण हँसो कि उनका प्रेम मिथ्या था, अपने द्रोहियों पर इसलिए हँसो कि उनका द्रोह झूठा है। इससे अधिक हँसने के और कौन कारण हो सकते हैं ?"

"परन्तु हँसना अपने वश की बात थोड़े ही है।"

"अपने वश की बात हो सकती है; यदि तुम उसके कारणों में विश्वास करो और हँसने का अभ्यास करो। मैंने अभ्यास किया है। रोते-रोते थक गई हूँ, तब हँसने का अभ्यास किया है। मुझे सफलता मिली है। तुम अभ्यास करो, तुम्हें भी सफलता मिलेगी।"

"परन्तु इस दशा में यहाँ रहने से तो मुझे हँसी नहीं आ सकती।"

"तो चलो, छोड़ो इस घर को और इसके मोह को। बाहर चलकर संसार को देखो और उस पर हँसो। तुम्हें याद होगा पिताजी, हम-तुम जब तक घूमते-फिरते रहे और भिक्षावृत्ति करते रहे, तब तक इतने दुःखी कभी नहीं रहे ! जब से हमने उसे छोड़ा और सुख को प्राप्त करने की चेष्टा की, तभी से दुःख ने हमारा पल्ला पकड़ा।"

नन्दराम कुछ क्षणों तक विचार करके बोला—"बात तो तू ठीक कहती है, परन्तु इस सम्पत्ति का क्या होगा।"

"सम्पत्ति को भी छोड़ो। जो वस्तु सुख और शान्ति नहीं दे सकती

उसका मोह क्यों करते हो ! वह तुम्हारे काम की नहीं। जिनको उसकी आवश्यकता है, जिन्हें वह सुख और शान्ति दे सकती है—उन्हें दान कर दो। यही उसका सदुपयोग है। मनुष्य अपने-आप उसका दुरुपयोग करता है।"

"अच्छा सोचूँगा, तेरी बात पर विचार करूँगा। यदि इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न सूझेगा, तो यही करूँगा।"

३२

सायंकाल के छह बजे हैं, बाबू रामनाथ अपनी कोठी के बरामदे में एक आराम-कुर्सी पर लेटे हुए एक पुस्तक पढ़ रहे हैं। उनसे थोड़ी दूर पर एक दासी उनके पुत्र को खिला रही है। सहसा टेलीफोन की घंटी बजी। रामनाथ पुस्तक पर से दृष्टि हटाकर टेलीफोन की घंटी सुनने लगे। इसी समय हरद्वारी टेलीफोन पर पहुँच गया ! रामनाथ पुनः पुस्तक पढ़ने लगे। एक मिनट पश्चात् हरद्वारी आकर बोला, "आपको बाबू ब्रजकिशोर टेलीफोन पर बुला रहे हैं।" रामनाथ पुस्तक को कुर्सी पर रखकर टेलीफोन पर पहुँचे और रिसीवर उठाकर बोले—"हलो, ब्रजकिशोर ! हाँ—कहाँ चलोगे। रॉंग, डोण्ट बी सिली (वाहियात, बेवकूफ मत बनो) अच्छा, यह बात है ! आलराइट, एज यू लाइक (अच्छा, जैसी तुम्हारी इच्छा) तो यहीं आ जाओ, खाना यहीं खा लेना—घंटे-दो-घंटे गपशप रहेगी, फिर एक साथ चले चलेंगे। नहीं, खाना तो यहीं खाना पड़ेगा—अरे भई, मैं घर में कह चुका हूँ। नो, नो, कम एटवंस लाइक ए गुड बॉय (नहीं-नहीं, भले आदमी की तरह तुरन्त चले आओ) यस दैट्स राइट (हाँ, यह ठीक है।)"

रामनाथ पुनः कुर्सी पर आ बैठे और हरद्वारी को बुलाकर बोले—"देखो, घर में कह दो बाबू ब्रजकिशोर भी खाना खायेंगे !" यह कहकर वह पुनः पुस्तक पढ़ने लगे।

बीस मिनट पश्चात् बाबू ब्रजकिशोर अपनी कार पर आ पहुँचे। मोटर से उतर कर उन्होंने शोफर से मोटर वापस ले जाने को कहा। तत्पश्चात् खटपट करते हुए रामनाथ के पास आये। रामनाथ पहले ही से सँभल कर बैठ गये थे। रामनाथ की कुर्सी के बराबर ही दूसरी कुर्सी पड़ी हुई थी। उस पर बैठते हुए ब्रजकिशोर बोले—"क्या हो रहा है ?"

रामनाथ बोले—"एक नावेल पढ़ रहा था। हाँ आज आपको यह थियेटर देखने की क्या सूझी ?"

"अरे भई, मुझे क्या सूझी। कम्पनी वालों ने दो कम्पलीमेन्टरी टिकट भेज दिए—मैंने सोचा, चलो देख आवें।

"हाँ भई, डिप्टी-कलेक्टर ठहरे कि दिल्लगी ! तुम्हें न भेजेंगे तो क्या हमें भेजेंगे।"

"डिप्टी-कलेक्टरी की बात नहीं। मैनेजर मुझे पहले से जानता है। जब पिताजी यहाँ डिप्टी-कलेक्टर थे तो उन्होंने कम्पनी का काम करा दिया था। तभी से मैनेजर मानता है।"

"तुमने भी कोई काम निकाला कि नहीं, या मौरूसी खाता चल रहा है।"

"अभी तक कोई काम नहीं पड़ा।"

"चलो, सस्ते छूटे।"

हठात् ब्रजकिशोर की दृष्टि रामनाथ के पुत्र पर पड़ी। वह बोले—"क्यों वे बदमाश, क्या कर रहा है ? चल, इधर आ।"

बालक ब्रजकिशोर को देखकर हँसा और हाथ फैलाकर डगमगाते हुए पैरों से ब्रजकिशोर की ओर चला। ब्रजकिशोर ने लपक कर उसे गोद में उठा लिया और मुँह चूमते हुए रामनाथ की ओर संकेत करके बोले—"यह कौन है ? इसे जानता है।"

बालक बोला—"बाबू !"

"यह बाबू नहीं भंगी है।"

बालक बोला—"बंगी।"

"हाँ, यह ठीक है !" ब्रजकिशोर मुस्कराकर बोले।

"और यह लालवेगी।" रामनाथ ने बालक की ओर देखते हुए ब्रजकिशोर की ओर उँगली उठाकर कहा।

इस प्रकार कुछ देर तक ब्रजकिशोर बालक को खिलाते रहे। तत्पश्चात् उसे दासी के पास छोड़कर पुनः रामनाथ के पास आ बैठे और बोले—"और क्या समाचार है—आपके घर में अब तबियत कैसी है ?"

"अब तो बिलकुल ठीक है।"

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। हठात् ब्रजकिशोर बोले—"हाँ, यह तो बताओ—कुछ चन्द्रपुर का समाचार भी मिला ?"

रामनाथ का मुख मलीन हो गया। वह बोले—"फिर तुमने शैतानी की।"

ब्रजकिशोर मुस्कराकर बोले—"यार, तुम्हें इतनी निष्ठुरता तो न करनी चाहिए। कम-से-कम उनका कुशल समाचार तो लेते रहा करो।"

"क्यों दिल दुखाते हो यार ? तुम्हें क्या इसमें कुछ आनन्द आता है ? यह सब काँटे तुम्हारे ही बोये हुए हैं।"

"क्यों, मेरे क्यों बोये हुए हैं ?"

"तुम्हीं ने तो पट्टी पढ़ा-पढ़ा कर निष्ठुर बना दिया।"

"जी हाँ, बजा फर्माते हैं आप। मैंने आपसे यह कब कहा कि आप पत्र-व्यवहार भी न रक्खें।"

"उससे फायदा क्या ? उलटा तबियत को रंज होता है।"

"रंज होने का क्या कारण ? अब तो वह घाव अच्छा हो चुका।"

"हाँ, परन्तु दाग तो बाकी है।"

"हुआ करे। दाग से कुछ कष्ट थोड़ा ही पहुँचता है।"

"हाँ ! परन्तु उस दाग पर नख-प्रहार करते से वह फिर घाव बन सकता है।"

"अजी बस, रहने भी दो, अब यह घाव बन चुका। मगर उस्ताद न कहोगे ? मेरी भविष्यवाणी अक्षरशः पूरी उतरी। कम-से-कम यह तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि जितना मैं तुम्हें समझता हूँ, उतना तुम स्वयं अपने को नहीं समझते। मैं आरम्भ से जानता था कि यह खेल तुम्हारे खेलने का नहीं है

"खै जी, होगा भी ! इस प्रसंग को हटाओ, तकलीफ होती है !"

"पता नहीं जस्सो तुम्हारे बाबत क्या सोचती होगी।"

"जब मैं उसके प्रेम के अयोग्य सिद्ध हुआ तो जो कुछ भी सोचे ठीक है।"

"परन्तु भाई मैं तो यही कहूँगा कि जो कुछ हुआ ठीक हुआ—कम-से-कम तुम्हारे लिए।"

"हाँ, ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है। इसमें भी कुछ अच्छाई थी—तभी ऐसा हुआ।"

"अच्छाई तो प्रत्यक्ष है—आनन्द कर रहे हो।"

रामनाथ ने प्रसंग बदलने के अभिप्राय से पूछा—"थियेटर साढ़े नौ बजे से आरम्भ होगा न ?"

"हाँ !"

"तो यहाँ से नौ बजें चलना चाहिए।"

"सवा नौ पर, दस मिनट का तो रास्ता ही है।"

"इस समय क्या बजा होगा ?"

ब्रजकिशोर अपनी रिस्टवाच देखकर बोले—"सवा सात बजा है।"

"भूख लगी हो तो खाना खालो।"

"नहीं जी, इतनी जल्दी भूख क्या लगेगी। कोर्ट (कचहरी) से आकर जलपान किया ही था, हाँ, कल इतवार है; कल बेशक सवा सात बजे भूख लग आयेगी, क्योंकि दिन भर घर में रहने से शाम को जलपान की आवश्यकता नहीं पड़ती।"

"तो फिर आठ बजे भोजन करेंगे—क्यों ?"

"हाँ, वही तो समय है।"

"अच्छा चलो, कमरे में बैठें।"

दोनों उठकर कमरे में पहुँचे।

पन्द्रह मिनट पश्चात् हरद्वारी ने शाम की डाक लाकर रामनाथ के सम्मुख मेज पर रख दी। रामनाथ अपने पत्र पढ़ने लगे। ब्रजकिशोर ने 'लीडर' का अङ्क उठा लिया और देखना आरम्भ किया। सहसा उनके मुख से निकला—"अरे !"

रामनाथ एक कार्ड पढ़ रहे थे। कार्ड पर से दृष्टि उठाकर उन्होंने पूछा—"क्यों, क्या कोई खास बात है ?

"बेशक !"

"क्या है, सुनाओ।"

ब्रजकिशोर ने पढ़ना आरम्भ किया। समाचार इस प्रकार था।

"अभूतपूर्व दान !"

एक जमींदार और उनकी कन्या का अनुपम त्याग !

अपनी समस्त जमींदारी किसानों को दान कर दी !

"इलाहाबाद जिले में चन्द्रपुर ग्राम के प्रसिद्ध जमींदार ठाकुर अर्जुनसिंह के पुत्र ठाकुर नन्दरामसिंह और उनकी अविवाहिता कन्या कुमारी यशोदा

कुँवरि ने अपनी समस्त जमींदारी, जिसका मूल्य डेढ़ लाख रुपये के लगभग और वार्षिक आमदनी छह सहस्र के लगभग है, गरीब किसानों को दान कर दी और अपनी गृहस्थी का समस्त जेवर तथा कपड़ा इत्यादि गरीब कन्याओं के विवाह के लिए दान कर दिया। इसके अतिरिक्त पचास सहस्र रुपये नकद अपने गाँव चन्द्रपुर में एक पाठशाला तथा एक धर्मशाला बनवाने के लिए दान किये।"

रामनाथ ने चकित हो पत्र ब्रजकिशोर के हाथ से छीन लिया और उक्त समाचार को तीन-चार दफा पढ़ा। ब्रजकिशोर चुपचाप बैठे रामनाथ का मुँह ताक रहे थे। रामनाथ ने पत्र मेज पर रख दिया और ब्रजकिशोर की ओर देखकर बोले "यहाँ तक नौबत पहुँच गई, कमाल है !"

"वाकई कमाल है !"

"इससे तो यह प्रकट होता है कि जस्सो ने विवाह नहीं किया।"

"यह भी कमाल का काम किया।"

"बेशक !"

"एक साधारण देहाती लड़की ने तुम्हें परास्त कर दिया।"

"क्यों न करे, जब कि आप जैसे हमारे मित्र हों, जो सदैव हतोत्साहित ही करते रहें—प्रोत्साहन का कभी एक शब्द भी न कहा"—रामनाथ ने किंचित् रोष के साथ कहा।

"मेरा जो कर्त्तव्य था वह मैंने किया—उसमें आप हतोत्साहित हुए या प्रोत्साहित—यह आप जानें।"

रामनाथ ब्रजकिशोर की बात पर ध्यान न देकर अपने-ही-आप बोले—

"अब तो असम्भव हो गया।"

"क्या असम्भव हो गया ?"

"जीवन की इस घटना को भूलना। यदि जस्सो विवाह कर लेती, तब तो सम्भव था, परन्तु अब असम्भव हो गया। जस्सो ने इस कार्य से हमारे हृदय पर अपनी छाप अमिट कर दी है।"

ब्रजकिशोर ने अविश्वास और सन्देहपूर्ण स्वर में कहा—"ऐसी बात है। कम से कम उसका यह सर्वस्व त्याग तो मुझे जन्म भर याद रहेगा। यदि आपका तात्पर्य भी यही है तो मैं आपकी बात मानता हूँ।"

ब्रजकिशोर की बात पर कुछ न कहकर रामनाथ स्वतः बोले—

"आरम्भ में भी भिखारिणी थी और अन्त में भी भिखारिणी ही रही।"

"जन्म भर ही समझिये—अन्त अभी से कहाँ हो गया, कुछ बुढ़िया थोड़े ही है?" ब्रजकिशोर ने बड़ी गम्भीरतापूर्वक कहा।

"हाँ यह भी ठीक है।"

दोनों थोड़ी देर तक मौन बैठे रहे। रामनाथ के मुख पर गहरी गम्भीरता थी।

सहसा घड़ी ने टनाटन आठ बजाये। ब्रजकिशोर घड़ी की ओर देख कर बोले—"आठ बजा!"

रामनाथ भी चौंक पड़े। उन्होंने उदासीनतापूर्वक कहा—"खाना खालो।"

"चलो।"

"मैं तो न खाऊँगा, मुझे भूख नहीं है। तुम खालो।"

"तो मुझे भी भूख नहीं है।"

"नहीं, तुम खालो।"

"मैं खाऊँगा तो आपको भी खाना पड़ेगा।"

"मेरी तो इच्छा नहीं।"

"तो जाने दो, मैं भी नहीं खाऊँगा।"

"तुम क्यों न खाओगे।"

"आप क्यों न खायेंगे।"

रामनाथ मौन रहे।

ब्रजकिशोर ने कहा—"तुम बड़े भावुक हो रामनाथ। मानलो तुमने इस समय खाना न खाया तो इससे क्या होगा।"

"होना हुवाना क्या है?"

"तो फिर?"

"इस समय तबीयत जरा रंजीदा हो गई।"

"बेवकूफ हो! चलो उठो। इन बातों में क्या धरा है।"

"भगवान जाने तुम्हारा हृदय काहे का बना है।",

"मेरा हृदय उस वस्तु का बना है जो व्यर्थ की भावुकता से प्रभावित नहीं होता। चलो उठो!"

ब्रजकिशोर रामनाथ को उठाकर खाना खाने के लिए ले गये ।

× × ×

तीन मास पश्चात् ।

मन्सूरी जाते हुए ब्रजकिशोर तथा रामनाथ दो दिन के लिए हरिद्वार में में ठहरे ।

सबेरे गंगा स्नान करके जिस समय ये दोनों प्लेटफार्म पर टहलते हुए लौट रहे थे—उसी समय रामनाथ हठात् सामने से आती हुई एक स्त्री को देखकर ठिठक गये । उस स्त्री ने पास आकर रामनाथ की ओर देखा । रामनाथ के मुख से निकला—"जस्सो ! तुम यहाँ ?"

जस्सो खड़ी हो गई । उसने मृदु मुस्कान के साथ कहा—"बाबू रामनाथ यहाँ कैसे !

"मन्सूरी जा रहा हूँ दो दिन के लिए यहाँ ठहर गया ।"

"घर में सब आनन्द मंगल ?"

"हाँ सब अच्छी तरह हैं । मैंने तुम्हारा हाल अखबार में पढ़ा था । यह तुम्हें क्या सूझा ?"

जस्सो हँसी । उसने कहा—"जो सूझना चाहिए था वही सूझा ।"

"तुमने वह काम किया जो कोई नहीं कर सकता ।"

जस्सो पुनः हँसी और बोली—"मैंने वह काम किया जो मेरी-सी परिस्थिति में होने वाले प्रत्येक आदमी को करना चाहिए ।"

रायनाथ निरुत्तर होकर जस्सो का मुँह ताकने लगे ।

ब्रजकिशोर भी गम्भीर बने खड़े थे ।

"नन्दराम कहाँ हैं ?"

"धर्मशाला में हैं ।"

"किस धर्मशाला में हैं ?"

जस्सो ने एक धर्मशाला का नाम लिया ।

"दोपहर मैं उनसे भेंट करने जाऊँगा ।"

"अच्छी बात हैं ।"

"यहाँ कितने दिनों रहने का विचार है ?"

"भिखारियों का विचार ही क्या—क्या जाने कब किस ओर चल दें ।"

"रानी होकर तुमने भिखारिणी बनना पसन्द किया—बड़े दुःख की बात है।"

"मैं रानी थी कब ? जब होश सँभाला तब भिखारिणी ही थी। बीच में कुछ समय के लिए अचेत सी हो गई थी—उस समय क्या रही, मैं स्वयं नहीं जानती। अब जब चेत हुआ तो वही भिखारिणी की भिखारिणी। जिसके भाग्य में भिखारिणी ही रहना बदा है वह रानी कैसे हो सकती है ?"

रामनाथ हत्-बुद्धि होकर मौन खड़े रहे।

जस्सो ने आगे पग बढ़ाते हुए कहा—"घर में सबसे मेरी राम-राम कह देना।"

रामनाथ बोले—"जस्सो तुम स्त्री नहीं देवी हो।"

जस्सो हँसी और बोली—"देवी ! देवी होती तो मेरा कोई पुजारी भी होता।"

',मेरा हृदय सदैव तुम्हारी पूजा करता रहेगा।"

"विश्वास और श्रद्धा-हीन हृदय की पूजा से कोई मनुष्य देवता नहीं बन जाता।"

इतना कहकर जस्सो हँसती हुई चली गई।

रामनाथ म्लान मुख होकर खड़े ताकते रह गये। ब्रजकिशोर ने उनके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"चलो अब क्या देखते हो !"

रामनाथ एक दीर्घ निश्वास छोड़कर आगे बढ़े।

ब्रजकिशोर ने पूछा—"नन्दरामसिंह से मिलने चलोगे।"

रामनाथ ने उत्तर दिया—"अब मैं कहीं नहीं चलूँगा—अब सीधे मंसूरी चलो।"

"क्या आज ही ?"

"हाँ आज ही, बल्कि इसी गाड़ी से।"

"तो शीघ्र चलो। ट्रेन का समय आ रहा है।"

दोनों शीघ्रतापूर्वक अपने निवास-स्थान पर पहुँचे और असबाब लेकर स्टेशन की ओर चल दिये।